इकाई-1 अर्थव्यवस्था में राज्य की आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण

(Analysis of Economic Activities of the State in the Economy)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.2 उद्देश्य(Objectives)

1.3 अर्थव्यवस्था में राज्यों की आर्थिक क्रियाएं (Economic activities of states in the economy)

1.4 राज्य की आर्थिक गतिविधियों की बढ़ोत्तरी के कारण (Reasons of Increasing State's Economic Activities)

1.5 राज्य की आर्थिक गतिविधियों की सीमाएं(Limitations of State's Economic Activities)

1.6 राज्य की आर्थिक विकास में भूमिका भूमिका (Role of The State in Economic Development)

1.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1.8 सारांश (Summary)

1.9 शब्दावली(Glossary)

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

1.12 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री (Useful / Helpful text)

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

शासन को सामान्य बनाए रखने के लिए राज्य ने लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में किसी न किसी रूप में हस्तक्षेप किया है। प्राचीन एकतंत्रीय शासन व्यवस्था में राज्य का कार्य क्षेत्र सीमित था और उसका कार्य केवल वाह्य आक्रमण से देश की सुरक्षा करना तथा आंतरिक शांति व्यवस्था को बनाए रखना था। यही कारण था कि न्याय, पुलिस और सेना राज्य का कार्यक्षेत्र थे। पर 19वीं शताब्दी के बाद इस दिशा में बदलाव हुआ। राज्य को सार्वजनिक जीवन में शामिल होना महत्वपूर्ण हो गया। परम्परावादी व्यवस्था जो व्यक्तिवाद पर आधारित और स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की समर्थक थी, को कुछ प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों जैसे- **वैगनर, फैड्रिकलिस्ट, कार्लमार्क्स, प्रो0 लास्की, जी.वी.से तथा जे.एम. कीन्स** ने अनुपयुक्त बताते हुए सरकारी हस्तक्षेप एवं सरकारी व्यय की वकालत की।

आर्थिक विकास के अध्ययन में रुचि रखने वाले चिंतकों का मानना है कि तीसरी दुनिया के गरीब देशों की सरकारें आर्थिक विकास में सक्रिय भूमिका नहीं निभाएँ तो वे अपने आर्थिक स्तर को ऊँचा नहीं उठा सकते। यदि अर्धविकसित देशों के आर्थिक विकास के लिए आर्थिक प्रणाली की स्वतंत्र क्रियाशीलता को मान्यता दी गई होती तो एशिया के अधिकांश देश आज भी भोजन, कपड़े और रोजगार के लिए परेशान नहीं होते। इस संदर्भ में **लिस्ट** लिखते है कि ***"अनुभव इस सत्य को उजागर करता है कि हवाएँ बीजों को उड़ाकर दूर-दूर ले जाती है और उन बीजों के कारण ही बंजर भूमि पर सघन वन उग आए है। परन्तु इस रूपांतरण हेतु हवाओं की प्रतीक्षा करना क्या बुद्धिमानी की बात होगी?"***

इसके अतिरिक्त अर्धविकसित देशों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में कई तरह की कठिनाईयों का समाना करना पड़ता है। ऐसी दशा मे सरकार के सहयोग के बिना इन देशों में सुधार आना कठिन होगा। इसके साथ ही सम्पूर्ण देश के प्रत्येक क्षेत्र का विकास करना सरकार का दायित्व होता है। सरकार यह देखती है कि देश का कौन सा हिस्सा अभी भी विकास की दृष्टि से पिछड़ा है और किस प्रकार इस क्षेत्र के पिछड़ेपन को दूर किया जा सकता है| राज्य इस बात की भी व्यवस्था करता है कि देश का तीव्र गति से विकास करने के लिए संसाधनों का संग्रह तथा आवंटन किस प्रकार किया जाए| इसके साथ ही अर्थव्यवस्था को कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित होने से बचाने तथा उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए सरकारी हस्तक्षेप उचित समझा जाने लगा। इस संदर्भ में **आर्थर लुइस** का कथन है कि, ***"कोई देश अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय सहयोग के बिना आर्थिक विकास नहीं कर सकता।"***

पहले अत्यंत सीमित राज्य हस्तक्षेप धीरे-धीरे बढ़ने लगा। लोकतंत्रीय व्यवस्था ने समाजवादी विचारधारा को राज्य के कार्यक्षेत्र में प्रोत्साहित किया। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में तीव्र आर्थिक विकास की इच्छा और व्यापक आर्थिक नियोजन ने सरकारी हस्तक्षेप को प्रगतिशील सरकार का आवश्यक लक्षण बना दिया। आज, राज्य ने मानव जीवन के हर हिस्से में प्रवेश कर लिया है और अपना क्षेत्रफल बढ़ा रहा है। वर्तमान में राज्य लगभग सभी राजनीतिक, अर्थिक और सामाजिक कार्यों को संभालता है।

आज समाज बहुत कुछ ऐसा करने की उम्मीद करने लगा है। सामजिक सुरक्षा, मूल्य नियंत्रण और धन का समान वितरण,जैसे विचारों को पहले कोई नहीं सोचता था। राजनैतिक सुरक्षा एवं शांति व्यवस्था के अलावा, राज्य का काम हर नागरिक के हित में कार्य करना भी है। वास्तव में, राज्य अब "गर्भ से शमशान भूमि तक मनुष्य की देखभाल करता है। "प्रो. लास्की ने कहा कि राज्य "समाज के महराब की आधारशिला है जो उन हजारों मानव जीवनों के रूप और प्रकृति को साँचे में ढालता है जिनके भाग्य की सुरक्षा का दायित्व उस पर है।" इस तरह

वर्तमान युग की जनतंत्रीय शासन प्रणाली में सरकार के कार्यकलापों में पर्याप्त वृद्धि हो चुकी है। कल्याणकारी राज्यों की स्थापना के बाद आर्थिक नियोजन एवं नियोजित आर्थिक विकास के प्रयासों से राज्यों के क्रियाकलापों में पर्याप्त बदलाव आ गया है।

1.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगें

- ✓ देश की अर्थव्यवस्था में राज्य की आर्थिक गतिविधियों का अध्ययन करना।
- ✓ किस सीमा तक राज्य को आर्थिक क्रियाओं में भाग लेना चाहिए, इसकी जानकारी प्राप्त करना ।
- ✓ आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका |
- ✓ अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए सरकार के उत्तरदायित्व ।

1.3 अर्थव्यवस्था में राज्यों की आर्थिक क्रियाएं (Economic activities of states in the economy)

लोक वित्त के निरंतर विकास से पता चलता है कि देशकाल और परिस्थितियों में बदलाव के साथ-साथ सरकारी हस्तक्षेप भी बदल गया है। वर्तमान प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था में नागरिकों के जन्म से लेकर मृत्यु तक के समस्त क्रियाकलापों और आर्थिक क्रियाओं में सरकार का स्पष्ट हस्तक्षेप दिखाई देता है, जबकि प्राचीन काल में राज्य का कार्य वाह्य आक्रमणों से देश की सुरक्षा करना मात्र था। जनहितकारी कार्यों से लाभ नहीं मिलने से निजी साहसी इस क्षेत्र में विकास नहीं करते, इसलिए सरकार इन क्षेत्रों को नियंत्रित कर सरकारी क्षेत्र को बढ़ाती है। आर्थिक अस्थिरता,एकाधिकर, प्राकृतिक सम्पदा का अपव्यय, दुर्लभ एवं बहुमूल्य खनिजों का अकुशल प्रबंध, विदेशों को मेधा का पलयान,तस्करी, बेरोजगारी, व्यापार एवं भुगतान असंतुलन, अशिक्षा, मुद्रा-प्रसार एवं संकुचन आदि अनेक प्रकार की आर्थिक बुराइयों को रोकने हेतु राज्य की प्रतिनिधि सरकार ही उपयुक्त समझी जाती है। इन समस्याओं के समाधान हेतु सरकारी हस्ताक्षेप का अधिकार क्षेत्र बढ़ाया ही जा रहा है। **डॉ0 डी. ब्राइट सिंह** के अनुसार, ***"प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं में सरकारी हस्तक्षेप पूँजीवादी संकट के निदान के रूप में पनपा है, परन्तु अल्पविकसित देशों में राज्य ने अपनी आर्थिक शक्ति प्रचलित पिछड़ेपन के कारण ही बढ़ाई है।"*** इस तरह, वर्तमान समय में राज्य एक नहीं अपितु अनेक कार्यों का प्रतिपादन करता है। राज्य के कार्यों को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. रक्षात्मक कार्य (Protective Functions)
2. व्यापार–वाणिज्य सम्बन्धी कार्य (Commercial Function)
3. राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी कार्य (Nation Building Functions)

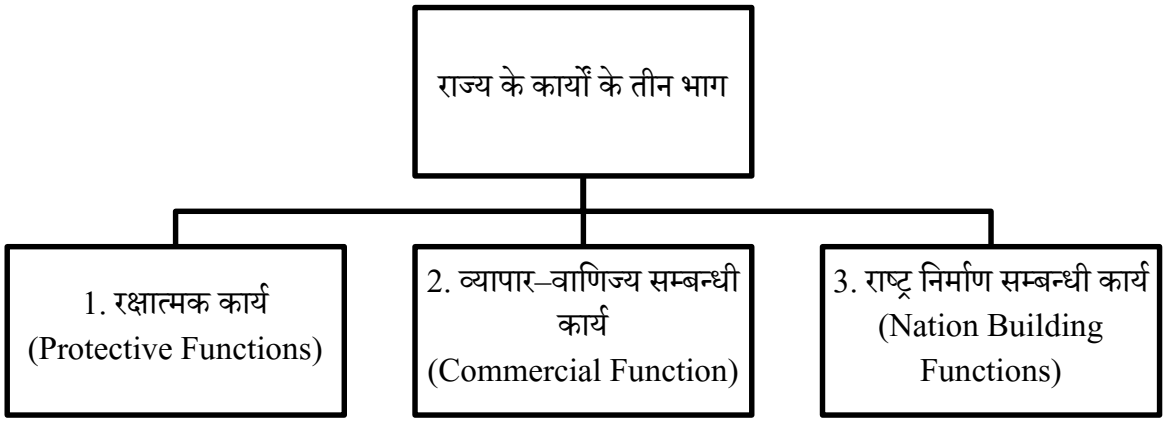

1. **रक्षात्मक कार्य (Protective Functions):-** रक्षा राज्य का सबसे पुराना काम है। राज्य की पहली जिम्मेदारी आंतरिक शान्ति और बाह्य आक्रमण से देश को बचाना है। राज्य यह काम पहले से ही करता आया है। राज्यों के ऊपर सुरक्षा संबंधी जिम्मेदारियों का बोझ बढ़ता जा रहा है| वर्तमान में देश अपने मित्र देशों की सुरक्षा पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से धन खर्च करते हैं। युद्ध में काम अपने वाले अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करना, युद्ध कला की गोपनीयता बनाए रखना तथा शत्रु देशों की युद्धकला एवं सुरक्षा सम्बन्धी जानकारी हेतु गुप्तचरों की व्यवस्था करना भी सरकारों का ही कार्य होता है। आज सरकारें युद्ध की नवीन तकनीकों को विकसित करने, नवीन युद्धकला तथा नवीन हथियारों के अविष्कार पर भारी मात्रा में व्यय कर रही है। इस तरह रक्षा उपकारणों एवं तकनीको के उत्पादनों एवं आविष्कार पर व्यय करना आधुनिक सरकारों का एक प्रमुख कार्य है।
2. **व्यापार-वाणिज्य सम्बन्धी कार्य (Commercial Function):-** देश में व्याप्त आर्थिक असमानता को दूर करने, वितरण व्यवस्था को न्यायोचित बनाने तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से आधुनिक राज्यों ने व्यापार एवं वाणिज्य सम्बन्धी कार्यों को अपने हाथ में ले लिया है। आंतरिक एवं अंतराष्ट्रीय व्यापार एवं प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन पर नियंत्रण तथा जनहित में राष्ट्रीय महत्व के उद्योग-धन्धों का नियमन एवं संचालन करना आधुनिक सरकारों का प्रमुख कार्य है। समाजवादी देशों में तो वाणिज्य एवं व्यापार सम्बन्धी समस्त कार्य सरकारों द्वारा ही किए जाते है। पूँजीवादी देशो में भी सुरक्षा एवं राष्ट्रीय महत्व के उद्योग-धन्धों का संचालन सरकार द्वारा ही किया जाता है।
3. **राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी कार्य (Nation Building Functions):-** प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक, सरकारें राष्ट्र निर्माण के कार्यों में सक्रिय रही हैं। प्राचीन शासक सड़कों, छायादार वृक्षों, धर्मशालाओं, और अन्य सुविधाओं का निर्माण करते थे ताकि व्यापार और सेना की गतिशीलता बढ़ सके। अशोक महान और शेरशाह सूरी के प्रयास इसके उदाहरण हैं। आजकल, सरकारें यातायात, दूरसंचार, मानव संसाधन, पर्यावरण सुधार, और कृषि के क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं। आर्थिक विकास, आधारभूत उद्योग, और रोजगार सृजन पर भी ध्यान दिया जा रहा है। राष्ट्र निर्माण के इन कार्यों की विस्तृत सीमा को पहचानना मुश्किल है, लेकिन इसमें देश और जनहित के लिए किए गए सभी प्रमुख कार्य शामिल हैं।

1.4 राज्य की आर्थिक गतिविधियों की बढ़ोत्तरी के कारण (Reasons of Increasing State's Economic Activities)

आज देश की अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका लगातार बढ़ती जा रही है। इसका मुख्य कारण निम्नलिखित है:

1. **आर्थिक वृद्धि में प्रत्यक्ष भागीदारी (Direct participation in economic growth):-** विकासशील देशों में तीव्र आर्थिक विकास के लिए अतिरिक्त साधनों की व्यवस्था और संसाधनों का सही उपयोग आवश्यक होता है। पूंजी और साहसी वर्ग की कमी के कारण, सरकारें पूंजी निर्माण, आधारभूत उद्योगों की स्थापना, और सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं के निर्माण की जिम्मेदारी लेती हैं। जहाँ निजी निवेश कम होता है, वहाँ सरकार स्वयं निवेश शुरू करती है। कुछ उद्योग जैसे सामरिक महत्व और विदेशी विनिमय नियंत्रण के लिए, सरकार का संरक्षण आवश्यक होता है।
2. **जनहित सम्बन्धित कार्य (Works related to Public Welfare):-** आज हर देश में जनकल्याणकारी सरकारें काम करती हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य देश की जनता को बेहतर बनाना है। इसके लिए सरकार सामूहिक योजनाओं को लागू करती है। सामाजिक बीमा, शिक्षा, चिकित्सा, यातायात और संचार आदि इसके अलावा, सरकारें आर्थिक शोषण से बचने के लिए यह व्यवस्था करती हैं कि लोगों को अपनी आवश्यकता की वस्तुएं आसानी से मिल सकें।
3. **गरीबी एवं बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम (Eradication of Poverty and Unemployment Program):-** विश्व भर की सरकारें, खासकर विकासशील देशों की सरकारें, गरीबी और बेरोजगारी को दूर करने के लिए लगातार प्रयासरत हैं, इसके लिए कई योजनाओं को लागू करना पड़ता है। बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने में निजी क्षेत्र का योगदान कम रहा है, इसलिए सरकार सार्वजनिक क्षेत्र में निर्माण कार्यों को बढ़ाकर लोगों को रोजगार देती है। इसके अलावा, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से गरीबों को आवश्यक सामान मुफ्त या निःशुल्क देती है और उनके लिए कई विकास कार्यक्रम चलाती है।
4. **संतुलित आर्थिक विकास का कार्य (Task of Balanced Economic Development):-** संतुलित आर्थिक विकास ज्यादातर देशों में नहीं हुआ है, खासकर कम विकसित देशों में। इन देशों में कुछ हिस्से विकसित हो चुके हैं, जबकि कुछ अभी भी नहीं हैं; इसलिए, समाजिक समानता और संतुलन बनाए रखने के लिए देश के विकसित हिस्सों को विकसित करना महत्वपूर्ण है। निजी उद्यमी उन क्षेत्रों में धन खर्च करते हैं जिनसे उन्होंने लाभ प्राप्त किया है। इससे एक विशेष क्षेत्र में मानव और प्राकृतिक संसाधनों का सही विदोहन नहीं हो पाता। यही कारण है कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्रमों के माध्यम से ऐसे क्षेत्रों में विकास करती है जहां अधिक सरकारी धन खर्च होता है।
5. **आर्थिक विषमता को कम करना तथा पूँजी की संचय करना (Removal of Economic Disparity and Capital Formation**):- विकासशील देशों में पूँजी निर्माण की दर कम है और आर्थिक विषमता कायम है। यहाँ निर्धनता का दुष्चक्र देखने में आता है। प्रति व्यक्ति आय घटने से घरेलू बचत कम होती है। आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप चाहिए। इसी तरह, सरकार पूँजी की कमी को दूर करने के लिए कई प्रयास करती है। इससे आर्थिक गतिविधियों में सरकार की

भागीदारी बढ़ती जा रही है।

6. **नियमन एवं नियंत्रण (Regulation and Control):-** सरकार देश की अर्थव्यवस्था भी नियंत्रित करती है। सरकार व्यापार चक्र, मुद्रास्फीति, मुद्रा-संकुचन, मूल्य स्तर में होने वाले उतार-चढ़ाव और उपभोक्ताओं और उत्पादकों के हितों को बचाने की कोशिश करती है। इसके साथ ही सरकार पूर्ति और गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए कानून बनाती है, हानिकारक और नशीली वस्तुओं के उत्पादन और विक्रय पर नियंत्रण लगाती है तथा उस कानून को तोड़ने वाले को दण्ड भी देती है। सरकार श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के लिए श्रमिकों और मालिकों के संबंधों को नियमित करती है और राष्ट्रहित में संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग सुनिश्चित करती है। तस्करी को रोकने और आर्थिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सरकार सख्त उपाय करती है और इस व्यवस्था को विफल करने वालों को दंडित करती है।

7. **देश की अर्थव्यवस्था की रक्षा करना (Protection of the Economic Framework of the Nation):-** राज्य देश के आर्थिक जीवन के स्वरूपा एवं स्वभव को निर्धारित करता है। राज्य देश की पारिस्थितियों को ध्यान में रखकर यह निश्चित करता है कि देश के आर्थिक जीवन का ढाँचा कैसा हो तथा उसको किस प्रकार स्थायी बनाए रखा जाए। राज्य आर्थिक ढाँचे को सुरक्षित रखने के लिए कानून बनाता है तथा कार्यरूप में परिणत करता है।

8. **आर्थिक स्थिरता (Economic Stability):-** देश की आर्थिक स्थिरता भी सरकार की जिम्मेदारी है। सरकार मूल्यों पर भी काम करती है, जिसमें स्थिरता शामिल है, साथ ही उत्पादन और रोजगार के स्तरों को ऊँचा और स्थायी बनाए रखना शामिल है। इसके लिए वह कराधान, सार्वजनिक ऋण और सार्वजनिक व्यय का सहारा लेती है।

9. **जनोपयोगी सेवाएँ (Public Utility Services):-** मानवीय आवश्यकताओं में वृद्धि होने के साथ-साथ आज उत्पादन एवं वितरण की प्रणालियाँ भी बहुत जटिल हो गयी है अतः यह आवश्यक हो गया है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति में राज्य पर्याप्त सहायता करें। इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य ने बहुत सी जनोपयोगी सेवाओं का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया है। जैसे– यातायात एवं संचार, पानी एवं बिजली की व्यवस्था आदि।

10. **जोखिमों का न्यूनतमकरण (Minimization of Risks):-** सरकार विभिन्न प्रकार के जोखिमों के दुष्परिणामों से समाज को बचाने का प्रयास करती है। औद्योगीकरण ने आर्थिक जीवन को बहुत अनिश्चित बना दिया है। औद्योगिकरण की वृद्धि से दुर्घटना, बीमारी, बेरोजगारी तथा व्यापार चक्रों के बुरे परिणाम सामने आने लगे हैं। समाज को इन समस्याओं के बचाने का कार्य भी सरकार का है।

11. **आर्थिक सहायता (Economic Assistance**):- सरकार लोगों को उनकी आर्थिक क्रियाओं के संचालन में मदद करती है। सरकार समय-समय पर कृषकों को ऋण देती है। उपदान, कर छूट और तकनीकी सहायता प्रदान करती है। बाजारों को उचित मूल्य पर वस्तुओं की बिक्री के लिए नियंत्रित करती है तथा भंडारण प्रबंधित करती है। सरकार लोगों को व्यवसाय, मूल्य और विपणन की जानकारी देकर आर्थिक जीवन में अनिश्चितता और बाधाओं को दूर करती है।

12. **मानव संसाधन विकास कार्यक्रम (Human Resource Development Program):-** - देश में आर्थिक विकास को गतिशील बनाने के लिए सरकार मानव संसाधन विकास पर पर्याप्त ध्यान देती है।

योग्य श्रम और स्वास्थ्य के बिना देश की प्रगति संभव नहीं होगी। साधनों की कमी से कोई व्यक्ति अपनी शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और स्वस्थ भोजन की व्यवस्था नहीं कर सकता। अतः यह कार्य सरकार को करना पड़ता है।

13. **युद्ध एवं अतंर्राष्ट्रीय मामले (War and International Affairs):-** सरकार भी देश की सुरक्षा करने और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सौहाद्रपूर्ण बनाए रखने का जिम्मेदार है। देश की सुरक्षा करने के लिए वर्तमान सरकारों को अधिक धन मिलना चाहिए। वर्तमान युद्ध बहुत खर्चीले होते हैं क्योंकि वे देश की अर्थव्यवस्था और स्थिरता को खराब करते हैं। सरकार को सैनिकों की व्यवस्था, युद्ध तकनीक, उपकरण और हथियारों के आयात के लिए भारी धन की आवश्यकता होती है। युद्ध में हुई हानि की भरपाई करनी होती है। इसलिए आज की सरकारें मैत्रीपूर्ण संबंधों को बनाए रखने और आर्थिक सहयोग और व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कूटनीतिक प्रयास करती हैं। इसके लिए, एक देश दूसरे देश में दूतावास खोलता है तथा उसमें कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। एक देश से दूसरे देश में शिष्टमण्डल आते-जाते रहते है, नागरिकों की शिक्षा एवं संस्कृति का आदान-प्रदान होता रहता है। इससे सरकार के आर्थिक कार्यों में पर्याप्त वृद्धि हो गयी है।
14. **आर्थिक नियोजन (Economic Planning)**:- वर्तमान समय में आर्थिक नियोजन राष्ट्रों की आर्थिक नीति का प्रमुख अंग बन गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार को भारी मात्रा में धन व्यय करना पड़ता है। जिसकी पूर्ति हेतु सरकार कर लगाती है, ऋण लेती है तथा घाटे का बजट बनाती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन भले ही कुछ कम महत्वपूर्ण हो परन्तु समाजवादी एवं अल्पविकसित देशों में आर्थिक नियोजन अत्यधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है।

इस तरह स्पष्ट है कि देश के आर्थिक जीवन में सरकार की सहभागिता तथा हस्तक्षेप दिन प्रतिदिन निरंतर बढ़ता जा रहा है। यदि यही प्रवृति विद्यमान रही तो वह दिन दूर नही जब मनुष्य हर कार्य के लिए राज्य पर निर्भर हो जाएगा।

1.5 राज्य की आर्थिक गतिविधियों की सीमाएं (Limitations of State's Economic Activities)

आर्थिक विकास को गति देने और सामाजिक कल्याण को बढ़ाने के लिए देश की आर्थिक क्रियाओं में सरकार की भागीदारी उचित और आवश्यक है। परन्तु राज्य को किस सीमा तक आर्थिक गतिविधियों में भाग लेना चाहिए, इस बारे में दो मत हैं।

1. **सरकारी नियंत्रण (Government Regulation):-** इस विचारधारा के समर्थकों का मत है कि विकास कार्यों को सरकार द्वारा अपने नियंत्रण में रखना चाहिए। निजी क्षेत्र में कार्यों को छोड़ने से अधिकतम सामाजिक लाभ नहीं मिलेगा। इन समाजवादी विचारकों का मानना है कि सरकार को सार्वजनिक कार्यों को शुरू करना चाहिए और सभी संसाधनों पर स्पष्ट नियंत्रण रखना चाहिए। सरकार को आर्थिक नियोजन का उपयोग करके देश को तेजी से विकसित करना चाहिए। विकास को निजी क्षेत्र पर छोड़कर प्रतीक्षा करने से देश तेजी से आर्थिक विकास नहीं कर सकेगा।
2. **क्रमिक हस्तक्षेप का महत्व (Importance of Gradual Intervention):-** इस विचारधारा के समर्थकों का मत है कि सरकार को आर्थिक क्षेत्र में तुरंत हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, बल्कि धीरे-धीरे

और जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ हस्तक्षेप करना चाहिए। कभी-कभी अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यकता से अधिक सरकारी हस्तक्षेप घातक हो सकता है। आर्थिक मामलों में सरकारी हस्तक्षेप देश की हालात के अनुरूप ही होना चाहिए। परन्तु अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप के बगैर तेज नही किया जा सकता है। समाजावादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रणाली को अपनाया गया है जहाँ निजी क्षेत्र के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र में भी उद्योगो की स्थापना की गयी है। सरकार की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से ही निजी क्षेत्र फलता-फूलता है। इसलिए सरकार भी निजी उद्यमियों के सक्रिय सहयोग के बिना अधिक समय तक सफल नहीं हो सकती। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनो की अपनी-अपनी कमियाँ तथा सीमाएँ है फिर भी देश के आर्थिक विकास में दोनो की भूमिका महत्वपूर्ण है। अतः सरकारी हस्तक्षेप को मध्यमार्गी होना चाहिए।

1.6 राज्य की आर्थिक विकास में भूमिका (Role of The State in Economic Development)

आर्थिक विकास हेतु किए जाने वाले सरकारी उपायों की निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(क) प्रत्यक्ष उपाय (Direct measures)

(ख) परोक्ष उपाय (Indirect Measures)

(क) प्रत्यक्ष उपाय (Direct measures):- प्रत्यक्ष उपायों के अन्तर्गत निम्न बातों को सम्मिलित किया जाता है-

1. **औद्योगीकरण में प्रत्यक्ष भागीदारी (Direct Participation in Industrialization):-** सरकार सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना करती है, जो देश में औद्योगिक एकाधिकार को नियंत्रित करने, निजी निवेश को कम करने और सामाजिक न्याय की रक्षा करते हैं।
2. **उत्पत्ति के साधनों को गतिशील बनाना (Mobilize the Factors of Production):-** अल्पविकसित देश में उत्पादन से साधन गतिहीन अवस्था में सुप्त पड़े रहते हैं जिससे उनके विकास की गति बहुत धीमी रहती है। अतः सरकार साधनों की गतिशीलता तथा उनके उचित उपयोग हेतु प्रयास करती है। अल्पविकसित देशो में कृषि की प्रधानता, तकनीकी ज्ञान की कमी, पूँजी का अभाव तथा कुशल साहसियों की कमी रहती है। जिससे इन देशों के विकास की प्रक्रिया स्वस्फूर्त नहीं होती है। सरकार साहसियो को प्रोत्साहित कर उन्हे आर्थिक संरक्षण प्रदान कर नवीन प्राकृतिक साधनों की खोज कर तकनीकी शिक्षा तथा कुशल श्रमिकों की व्यवस्था कर पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को बढ़ावा देकर आर्थिक विकास के कार्यों को आगे बढ़ा सकती है।
3. **संस्थागत तथा संगठनात्मक परिवर्तन (Institutional and Organizational Changes):-** आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति देने में संस्थागत और संगठनात्मक बदलाव महत्वपूर्ण हैं। राज्य भूमि सुधार, उत्तराधिकार और भूस्वामित्व कानूनों में सुधार करके संस्थागत बदलाव कर सकता है। सरकार इन सुधारों के माध्यम से कृषकों की हालत सुधार सकती है। यह उत्पादकों और उपभोक्ताओं के हितों को बचाने के लिए एकाधिकार पर भी नियंत्रण रख सकता है। अल्पविकसित देशों में सुधार लाने के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रमों और सहकारी समितियों की शिक्षा जैसे अन्य कार्यक्रमों को लागू किया जा सकता है। सरकार सेवायोजक और कर्मचारियों के बीच परस्पर सद्भावना बनाए रखने के लिए

श्रम कानूनों को पारित करने का प्रयास करती है। इस तरह, विभिन्न नियमों में सुधार करके पुरानी व परम्परागत प्रवृत्तियों को समाप्त कर सरकार द्वारा विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है।

4. **आर्थिक बुनियादी ढांचे और सामाजिक सेवाओं का नियंत्रण (Control of economic infrastructure and social services)-** सरकार विभिन्न समाजिक और आर्थिक योजनाओं का संचालन करता है, जिससे आर्थिक विकास होता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और अन्य कल्याणकारी कार्यक्रम इन सेवाओं में शामिल हैं। जिनसे आर्थिक विकास के कार्यक्रम प्रभावित होते हैं। आधारभूत उद्योगों की स्थापना सहित आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले आर्थिक कार्यक्रमों में शामिल हैं। सरकार आर्थिक वृद्धि को तेज करने के लिए यातायात, परिवहन और संचार, शक्ति, सिंचाई, खाद्य पदार्थ, सीमेन्ट और स्टील जैसे आधारभूत उद्योगों को मिलाकर काम करती है। सरकार बड़े पैमाने पर निवेश करके सामाजिक और आर्थिक सेवाओं का विस्तार करके आर्थिक विकास को तेज कर सकती है।

(ख) परोक्ष उपाय (Indirect Measures):- सरकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में निम्न परोक्ष उपाय को सहारा ले सकती है।

1. **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy):-** आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राजकोषीय नीति निम्नवत सहायक हो सकती है

   i) सरकार द्वारा इस तरह की कर प्रणाली लागू की जानी चाहिए ताकि सरकारी आय में वृद्धि हो और उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े।

   ii) सरकार द्वारा सार्वजनिक धनराशि को उत्पादक क्षेत्रों में लगाया जाना चाहिए, ऋण से प्राप्त धनराशि को ऐसे निर्माण कार्यों में लगाया जाना चाहिए जिनमें उत्पादन शीघ्र किया जा सकता है, और ऋणों का विनयोग विदेशी उत्पादों के उत्पादन में किया जाना चाहिए जिनकी माँग विदेशों में है।

   iii) आर्थिक विकास हेतु धन जुटाने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था का सीमित एवं नियंत्रित प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके अनियंत्रित प्रयोग से मुद्रास्फीति एवं अन्य आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ सकता है।

   iv) करो में छूट एवं उपदान आदि के माध्यम से सरकार उद्यमियों को नए उद्योगों को स्थापित करने हेतु प्रोत्साहित कर सकती है।

इस तरह राजकोषीय नीति के माध्यम से सरकार राष्ट्रीय आय, उत्पादन एवं रोजगार पर वांछित प्रभाव डालने तथा अवांछित प्रभावों को रोकने का प्रयास करती है।

2. **मौद्रिक नीति (Monetary Policy):-** मौद्रिक प्राधिकरण आर्थिक विकास के उद्देश्य से मुद्रा और साख की मात्रा को नियंत्रित करता है। इसका मुख्य उद्देश्य मुद्रास्फीति और मुद्रा संकुचन को नियंत्रित करना और विदेशी मुद्रा व्यापार को संतुलित करना है। मंदी के प्रभावों को कम करने और आर्थिक विकास व रोजगार के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए लचीली मौद्रिक नीति लागू की जाती है। साख नियमन के उपकरण दो प्रकार के होते हैं।

(i) परिणामत्मक साख नियंत्रण- इसके अनतर्गत बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएँ तथा निधि अनुपात में परिवर्तन सम्मिलित रहे है।

(ii) चयनात्मक साख नियंत्रण- इसके अंतर्गत नैतिक दबाव, साख की राशनिंग, मार्जिन आवश्यकताओं में परिवर्तन, उपभोक्ता साख का नियमन तथा प्रत्यक्ष कार्यवाही आदि आते है।

ये उपकरण साख को वांछित दिशा में ले जाकर आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होते है।

3. **मूल्य नीति (Price Policy):-** विकासशील देशों में आर्थिक विकास के दौरान परियोजनाओं पर भारी खर्च से रोजगार और आय बढ़ती है, जिससे लोगों की क्रयशक्ति और मांग में वृद्धि होती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण वस्तुओं और सेवाओं की मांग और कीमतों में भी वृद्धि होती है, जिससे उपभोक्ताओं और उत्पादकों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कुछ हद तक स्फीति आर्थिक विकास में सहायक हो सकती है, लेकिन तेजी से बढ़ती स्फीति आर्थिक विकास को बाधित कर सकती है। इसलिए, सरकार मौद्रिक और वित्तीय नीतियों के माध्यम से बढ़ती कीमतों पर नियंत्रण रखती है और उचित मूल्य नीति अपनाकर राहत प्रदान करती है।
4. **कार्यात्मक वित्त प्रबंधन (Functional Finance Management):-** वर्तमान समय में कार्यात्मक वित्त प्रबंधक प्रणाली का उपयोग आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है। इसमें करारोपण, सार्वजनिक व्यय, और सार्वजनिक ऋण का उचित ढंग से उपयोग कर बजट का निर्माण किया जाता है। कार्यात्मक वित्त की मदद से आर्थिक उतार-चढ़ाव, कीमत, उत्पादन, आय, और रोजगार में गिरावट को दूर कर आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है।
5. **तटकर नीति (Tariff Policy):-** घरेलू उद्योगों के संरक्षण और रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए तटकर नीति के तहत आयात को हतोत्साहित और निर्यात को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके साथ ही, विदेशी व्यापार नीति में परिवर्तन करके भी आर्थिक विकास किया जा सकता है।

1.7 अभ्यास प्रश्न(Practice Questions)

प्रश्न लघुउत्तरीय प्रश्न

1. मौद्रिक नीति किसे कहते हैं ?
2. राजकोषीय नीति क्या है ?
3. तटकर नीति को स्पष्ट कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. निम्नलिखित में से कौन परिमाणात्मक साख नियन्त्रण की विधि नही है।

(क) रेपोदर (ख) बैंक दर

(ग) साख का अनुभाजन (घ) वैधानिक तरलतानुपात

2. निम्न में से कौन आधारभूत संरचना के अन्तर्गत नही आता है ?

(क) बिजली (ख) बैंक

(ग) सड़क (घ) जल

सत्य/असत्य

1. कीन्स के अनुसार सरकार का आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप नही होना चाहिए।
2. आयात को नियंत्रित करने के लिए तटकर लगाया जाता है।
3. बैंक आर्थिक विकास का संस्थागत स्रोत है।

1.8 सांराश (Summary)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास में तेजी लाने के लिए सरकार को निम्नलिखित कार्यों को करना आवश्यक समझा जाता है।

1. आधारभूत संरचना का निर्माण
2. उद्योगों का विकास
3. विदेशी पूँजी को आकृष्ट करना
4. कृषि के विकास के लिए सहायता उपलब्ध कराना
5. भूमि व्यवस्था में सुधार करना।
6. मानव संसाधन विकास (स्वास्थ्य, शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण) हेतु प्रयास करना,
7. विकास की दृष्टि से हानिकारक सामजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने का प्रयास।
8. सरकारी सेवाओं को सशक्त बनाना।
9. राजनीतिक स्थिरता के लिए अनुकूल स्थिति का निर्माण करना।

उपरोक्त सभी कार्यों के संचालन हेतु भारी पूँजी की आवश्यकता होती है तथा इनके निर्माण में काफी लम्बा समय भी लगता है। इनके निर्माण कार्य के पूरा होने पर इनसे जो लाभ मिलता है, वह पूँजी निवेश की तुलना में बहुत कम होता है। अथवा लाभ नहीं भी मिल सकता है। अतः इनक कार्यों को करने हेतु निजी क्षेत्र कोई रूचि नहीं लेता। इसलिए विकास के इनक कार्यक्रमों के संचालन में सरकार की सक्रिय भूमिका आवश्यक समझी जाती है।

1.9 शब्दावली (Glossary)

- **कार्यात्मक वित्त (Functional Finance)-** राजकोषीय उपकरणों सन्तुलन ।
- **चयनात्मक साख विधि (Selective Credit Method)-** साथ में गुणात्मक नियन्त्रण करना।
- **अहस्तक्षेप की नीति (Policy of laissez faire)-** सरकार हस्तक्षेप नहीं।
- **मुद्रा स्फीति (Inflation)-** कीमत में वृद्धि ।
- **मुद्रा संकुचन (Deflation)-** मुद्रा की मात्रा में कमी।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1 (ग) साख का अनुभाजन 2 (ख) बैंक

सत्य/असत्य

(1.) असत्य (2.) सत्य (3.) सत्य

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- आर.ए.मसग्रेव, पब्लिक फिनान्स इन ए डेमोक्रेटिक सोसाइटी वाल्यूम-II
- आर.ए. मसग्रेव, द थियरी ऑफ पब्लिक फिनान्स, मैग्राहिल 1984।
- जे. सी. पन्त राजस्व, लक्ष्मी नरायण अग्रवाल पब्लिकेशन 1979।
- अमरेश बागेची ,रीडिंग इन पब्लिक फिनान्स, आक्सफोर्ड 1980।
- ए. प्रेमचन्द्र गवर्नमेन्ट बजटिंग एण्ड एक्सपेन्डीचर कन्ट्रोल, IMF 1983।
- एस. के. सिंह लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2008।
- Peet, "Speeches"; quoted in Mc Gregor, Public Aspects of Finance, p. 71
- H. Parnell, "On Financial Reform"; quoted by G. Findaly shirrras in the science of Public Financle, p. 31

1.12 सहायक पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

- भाटिया एच. एल. (2006), लोकवित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.,जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे. सी. (2005), राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे. सी. (1997), राजस्व (Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, हॉस्पिटल रोड,आगरा।
- डॉ. जे.पी. मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

प्रश्न 1. आधुनिक राज्यों के आर्थिक क्रियाओं की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 2. राज्य के आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3. समझाइए कि लोक वित्त किस तरह आर्थिक विकास एवं मूल्य स्थिरता में सहायता प्रदान करता है?

प्रश्न4. आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

इकाई 2 लोकवित्त का क्षेत्र, प्रकृति एवं महत्व (Definition, Scope, Nature And Importance of Public Finance)

2.1प्रस्तावना (Introduction)

2.2 उद्देश्य (Objectives)

2.3 लोकवित्त का अर्थ (Meaning of Public Finance)

2.4 लोकवित्त की परिभाषाएँ (Definition of Public Finance)

2.5 लोक वित्त की विषय-वस्तु एवं क्षेत्र (Subject matter and scope of public finance)

2.6 लोकवित्त की प्रकृति (Nature of Public Finance)

2.7 लोक वित्त का महत्व (Importance of Public Finance)

2.8 लोकवित्त एवं निजी वित्त में अन्तर (Distinction between Public and Private Finance)

2.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

2.10 सारांश (Summary)

2.11 शब्दावली (Glossary)

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

2.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

2.14 सहायक /उपयोगी पाठय सामग्री(Useful / Helpful text)

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह "प्रस्तावना" खण्ड की दूसरी इकाई है जो लोकवित्त का क्षेत्र, प्रकृति एवं महत्व पर आधारित हैं। इससे पूर्व की प्रथम इकाई में राज्यों की आर्थिक क्रियाओं को स्पष्ट किया गया है जो राज्यों की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि के कारण आर्थिक क्रियाओं की सीमा तथा आर्थिक विकास में सरकार की भूमिका के विभिन्न पक्षों को समायोजित करती है। आप इस इकाई में दर्शाये गये उद्देश्यों को भली भांति समझ गये होंगे। प्रस्तुत इकाई में लोकवित्त का अर्थ,परिभाषाएँ एवं लोक वित्त की विषय वस्तु एवं क्षेत्र-, प्रकृति और महत्व को बताया गया है। साथ ही लोकवित्त एवं निजी वित्त में अन्तर को समझाया गया है ।अन्त में लोक वित के अधिकतम सामाजिक लाभ या कल्याण का सिद्धान्त को व्यक्त किया गया है।

2.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे

- ✓ लोकवित्त का अर्थ एवं परिभाषाएँ को समझ सकेगें ।
- ✓ लोक वित्त की विषयवस्तु एवं क्षेत्र-प्रकृति और महत्व को बता सकेगें।
- ✓ लोकवित्त एवं निजी वित्त में अन्तर को समझ सकेगें ।

2.3 लोकवित्त का अर्थ (Meaning of Public Finance)

राजस्व अर्थशास्त्र की शाखा, लोकवित्त, सरकारी आयका अध्ययन करती है। लोकवित्त को राजस्व कहते व्यय-हैं। राजस्व, एक संस्कृत शब्द है जो दो अक्षरों से बना है"स्व + राजन" :, जिसका अर्थ है। "राजा का धन" राजनैतिक दृष्टि से, राजा एक समाज या क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। इस तरह, राजस्व का अर्थ सरल शब्दों में से "मुखिया के धन" या राजनैतिक दृष्टिकोण से "धन राजा के" होता है, जो यह देखता है कि राजा धन को कहाँ से, कैसे प्राप्त करता है और इसे किस प्रकार खर्च करता है।

अंग्रेजी में शब्द दो शब्दों "पब्लिक फंडिंग", "पब्लिक से बना है। इसका अर्थ है "फंडिंग" और "'सार्वजनिक वित्त' या 'जनता का वित्त'। हम जनता का वित्त नहीं देखते, बल्कि या सरकार की वित्तीय व्यवस्थाओं को देखते "राज्य" हैं, लोक वित्त या राजस्व के अंतर्गत।

लोक वित्त को प्रत्येक देश में अलगअलग नामों से पुकारा जाता है। जैसे-, जर्मनी में इसे "Finanzwissenschaft" (वित्त का विज्ञान) कहते हैं, जबकि फ्रांस में इसे "Science des finances" कहते हैं।

2.4 लोक वित्त की परिभाषाएँ (Definition of Public Finance)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने लोकवित्त की व्याख्या की है। **लुट्ज (Lutz) के अनुसार,** '' लोकवित्त उन साधनों की व्यवस्था, सुरक्षा तथा वितरण का अध्ययन करता है जिनकी सार्वजनिक अथवा सरकारी कार्यों को चलाने के लिए आवश्यकता पड़ती है''

कार्ल **प्लेहन (Plehan) के अनुसार**, '' लोकवित्त वह विज्ञान है जो राजनितिज्ञों की उन क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनके द्वारा वे राज्य के कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक भौतिक साधनों को प्राप्त करते है तथा उन साधनों का प्रयोग करते है।''

आर्मिटेज स्मिथ (Armitage Smith) के अनुसार, ''राजकीय व्यय तथा राजकीय आय की प्रकृति एवं सिद्धान्तों की व्याख्या को लोक वित्त कहा जाता है।''

श्रीमती उर्सुला के.हिक्स (U.K. Hicks) के अनुसार, ''लोक वित्त का मुख्य विषय उन विधियों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करना है जिनके द्वारा सरकारी संस्थाएँ आवश्यकताअें की सामूहिक संतुष्टि करने का निरक्षण करती है और अपने उद्येश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कोश प्राप्त करती है।''

प्रो0 मसग्रेव (Musgrave) के अनुसार, "वे जटिल समस्याएँ जो सरकार की आय-व्यय प्रक्रिया के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहती है, उन्हें परम्परागत दृष्टि से लोक वित्त कहा जा सकता है।"

प्रो. डी. मार्को (D. Marco) के अनुसार, "लोक वित्त राज्य की उन उत्पादक क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनका उद्येश्य सामूहिक आवश्यकताओं को पूरा करना होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन से इस निषकर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि लोक वित्त मूल रूप से सरकारों के आय-व्यय से सम्बन्धित है तथा सरकारों का अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सत्ताओं से है। वर्तमान समय में लोक वित्त का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है, अतः अब इसके अंतर्गत सरकारी आय-व्यय के अतिरिक्त वित्तीय प्रशासन, लेखा निरीक्षण एवं वित्तीय नियंत्रण आदि कार्यों को भी सम्मिलित किया जात है।

2.5 लोक वित्त की विषय-वस्तु एवं क्षेत्र (Subject matter and scope of public finance)

लोक वित्त के अध्ययन का इतिहास काफी पुराना है और इसके विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है। एडम स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Wealth of Nations (1776) के खंड 5 में लोक वित्त के प्रमुख अंगों का विश्लेषण किया। इस खंड में सरकार के व्यय, सरकार के राजस्व, और लोक ऋण पर ध्यान केंद्रित किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि लोक वित्त तीन मुख्य विषयों तक सीमित है: लोक व्यय, लोक राजस्व, और लोक ऋण।

रिकार्डो की पुस्तक The Principles of Political Economy and Taxation (1819) में करारोपण की समस्याओं पर गहराई से चर्चा की गई, हालांकि लोक व्यय पर कोई विशेष अध्याय नहीं है। लोक ऋण पर विस्तृत विवेचना उनके अन्य प्रकाशन Essay on the Funding System में की गई। इस प्रकार, रिकार्डो ने लोक वित्त का अध्ययन मुख्यतः कर और लोक ऋण पर केंद्रित किया।

जे.एस. मिल ने अपनी पुस्तक The Principles of Political Economy (1848) में लोक वित्त के विभिन्न पहलुओं की चर्चा की, लेकिन इसमें भी करों और राष्ट्रीय ऋण पर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया। एडम स्मिथ ने लोक व्यय पर प्राथमिक ध्यान दिया, जबकि रिकार्डो और मिल ने करारोपण और लोक ऋण को प्रमुख माना।

उन्नीसवीं सदी के अंत में लोक वित्त पर ध्यान देने का तरीका बदल गया। 1892 में सी.एफ. बैस्टेबल की पुस्तक Public Finance और 1922 में प्रकाशित ह्यूग डाल्टन की पुस्तक Public Finance ने लोक वित्त के अध्ययन को नया दृष्टिकोण दिया। डाल्टन ने लोक वित्त को सरकार की आय और व्यय के समायोजन के रूप में परिभाषित किया और लोक वित्त की विषय-वस्तु को विस्तार से समझाया।

डाल्टन ने करों और लोक व्यय के बीच के संबंधों पर ध्यान दिया और करारोपण, लोक व्यय, और लोक ऋण के आपसी संबंधों पर विचार किया। इस तरह, लोक वित्त को व्यापक रूप में समझा गया।

पिगू की पुस्तक A Study of Public Finance (1928) ने करों के सिद्धांतों और विशेष करों की गुण और दोषों की विवेचना की। इसके तृतीय संस्करण (1947) में 'लोक-वित्त और रोजगार' शीर्षक के अंतर्गत राजकोषीय उपायों की चर्चा की गई, जिससे लोक वित्त के आधुनिक दृष्टिकोण को नया रूप मिला।

1959 में रिचर्ड ए. मुसग्रेव की पुस्तक The Theory of Public Finance ने लोक वित्त के अध्ययन को मैक्रोआर्थशास्त्र में शामिल किया और तीन प्रमुख राजकोषीय कार्य: आवंटन कार्य, वितरण कार्य, और स्थिरीकरण कार्य को परिभाषित किया। मुसग्रेव ने यह स्पष्ट किया कि लोक वित्त का अध्ययन केवल अल्पकालीन स्थिरीकरण तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसमें दीर्घकालीन आर्थिक विकास पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

1960 और 1970 के दशकों में, मैक्रोआर्थशास्त्र की महत्ता बढ़ी और लोक वित्त के पारंपरिक क्षेत्रों के अलावा, नए विषय जैसे कि लोक व्यय, बहुस्तरीय वित्त (Fiscal Federalism), और लागत-लाभ विश्लेषण पर भी ध्यान दिया जाने लगा।इस प्रकार, लोक वित्त के अध्ययन को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:

1. **सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure):** इसमें सरकारी व्यय और उसकी श्रेणियों की चर्चा होती है।
2. **सार्वजनिक आय (Public Revenue):** इसमें सरकार की आय के स्रोत और करों की विवेचना की जाती है।

3. **सार्वजनिक ऋण (Public Debt):** इसमें सरकार के ऋण और उसके प्रबंधन पर ध्यान दिया जाता है।
4. **वित्तीय प्रशासन (Financial Administration):** इसमें वित्तीय नीतियों और प्रशासन की प्रक्रिया की समीक्षा की जाती है।
5. **राजकोषीय नीति (Fiscal Policy):** इसमें बजट नीतियों और उनके आर्थिक स्थिरता पर प्रभाव की चर्चा होती है।

1. **सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure):-** लोक वित्त के इस भाग में जांच की जाती है कि सार्वजनिक खर्च किनकिन क्षेत्रों पर होना चाहिए-? व्यय का आकार और मात्रा क्या है? व्यय करते समय किनकिन मूल्यों का पालन किया जाए-? इन खर्चों का देश की अर्थव्यवस्था पर क्या असर होता है और इससे जुड़े मुद्दे क्या हैं? तथा उनसे कैसे छुटकारा पाया जा सकता है? राजकीय या सार्वजनिक व्यय का महत्व हर दिन बढ़ा है। सार्वजनिक खर्च केवल जनकल्याण पर निर्भर करता है। उस देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक नीतियों और परिस्थितियों की समीक्षा करने के लिए सार्वजनिक खर्चों और उन पर खर्च की जाने वाली रकम का विश्लेषण किया जा सकता है।

2. **सार्वजनिक आय (Public Revenue):-** इस भाग में यह अध्ययन किया जाता है कि सरकार कितने पैसे प्राप्त करती है। इसमें आय के विभिन्न स्त्रोतों का विश्लेषण वर्गीकरण, साधनों की गतिशीलता, उनके सिद्धान्त और सापेक्ष महत्व का विश्लेषण किया जाता है। इसके अलावा, देश के उपभोग, उत्पादन वितरण, बचत और विनियोग पर इन आय के इन स्त्रोतों का क्या प्रभाव पड़ा है, इसका भी अध्ययन किया जाता है।

3. **सार्वजनिक ऋण (Public Debt):-** इस भाग में सरकारी ऋण क्यों लिया जाता है किस उद्देश्य से लिया जाता है और किस सिद्धांत पर राज्य ऋण प्राप्त करता है तथा इन ऋणों को कैसे भुगतान किया जाता है, ऋणों का क्या असर होता है, सार्वजनिक ऋणों से जुड़े विभिन्न मुद्दे क्या हैं, दीर्घकालीन ऋणों का सापेक्ष महत्व क्या है? इत्यादि |

4. **वित्तीय प्रशासन (Financial Administration):-** इस विभाग के अंतर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि सरकार वित्तीय क्रियाओं का प्रबंध किस प्रकार करती है? इसके अन्तर्गत विशेष रूप से यह अध्ययन किया जाता है। कि बजट किस प्रकार बनाया जाता है, बजट बनाने के क्या उद्देश्य होते है, घाटे के बजट तथा आधिक्य के बजट का क्या महत्व है, इसके अतिरिक्त लेखों का अंकेक्षण करना भी इसके अतर्गत आता है। वित्तीय प्रशासन लोक वित्त का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभाग है। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् इसका महत्व काफी बढ़ गया है। प्रो. बैस्टेबल, लोक वित्त के इस भाग के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि 'लोकवित्त की कोई पुस्तक तब तक पूर्ण नही कही जा सकती जब तक कि वह वित्तीय प्रशासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नही करती'|

5. **राजकोषीय या वित्तीय नीति (Fiscal Policy):-** लोक वित्त के एक भाग के रूप में राजकोषीय अथवा वित्तीय नीति के महत्व को आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार किया है। स्थिरता के साथ आर्थिक

विकास, को गति प्रदान करने के लिए आज वित्तीय नीति का सहारा लिया जाता है। वित्तीय नीति के द्वारा देश में उत्पादन क्रियाओं को नियमित करके, राष्ट्रीय आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाकर तथा कीमतों में स्थिरता लेकर आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह, नियोजित आर्थिक विकास हेतु राजकोषीय नीति का प्रयोग एवं अध्ययन लोक वित्त की विषय वस्तु का एक प्रमुख अंग है।

2.6 लोकवित्त की प्रकृति (Nature of Public Finance)

लोक वित्त की प्रकृति के विवेचन हेतु यह जानने का प्रयास किया जाता है कि लोक वित्त विज्ञान है अथवा कला? विज्ञान ज्ञान का वह शास्त्र है जिसमें किसी विषय का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन निरीक्षण, प्रयोग एवं विश्लेषण पर आधारित होता है। इस तरह के अध्ययन के आधार पर जो नियम बनाए जाते है या निष्कर्ष निकाले जाता है, उनका स्वभाव वैज्ञानिक होता है। इस आधार पर लोक वित्त को विज्ञान कहना अनुचित नहीं होगा। परन्त यह ध्यान देने योग्य है कि लोक वित्त एक स्वतंत्र विज्ञान नहीं है बल्कि एक आश्रित विज्ञान है क्योंकि इसका अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र से घनिष्ट सम्बन्ध है और यह उन पर आश्रित है।

विज्ञान भी दो प्रकार के होते है- प्राकृतिक विज्ञान (Positive Science) तथा आदर्श विज्ञान (Normative Scienc) प्राकतिक विज्ञान में हम वास्तविक एवं वस्तु स्थिति का अध्ययन करते है। वह क्या है? का उत्तर देता है परन्तु क्या होना चाहिए?, से इसका सम्बन्ध नहीं है। वास्तविक विज्ञान उस दीप स्तंभ की तरह है जो जहाज को रोशनी दिखाता है और इंगित करता है कि यहाँ चट्टान है परन्तु यह नहीं बताया कि जहाज हमारा ध्यान आकर्षित करता है। इस तरह, आदर्श विज्ञान ज्ञान का वह पुंज होत है जिसका सम्बन्ध आदर्शों को स्थापित करना होता है। इस दृष्टि से दोनो विज्ञानों में 'वस्तु स्थिति' तथा 'आर्दश' का अंतर है| लोक वित्त क्या है, इसे समझने का प्रयास किया जाता है विज्ञान या कला? विज्ञान ज्ञान का वह क्षेत्र है जो क्रमबद्ध अध्ययन करता है। यह अध्ययन देखभाल, उपयोग और विश्लेषण पर आधारित है। इस तरह के अध्ययन से नियम बनाए जाते हैं या निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे वैज्ञानिक हैं। यही कारण है कि लोक वित्त को विज्ञान कहना अनुचित नहीं होगा। यह महत्वपूर्ण है कि लोक वित्त एक स्वतंत्र विज्ञान नहीं है, बल्कि एक आश्रित विज्ञान है क्योंकि यह अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र से घनिष्ठ है और उन पर निर्भर है।

2.7 लोक वित्त का महत्व (Importance of Public Finance)

लोक वित्त का महत्व भी प्राचीन काल में कम था क्योंकि राज्य के काम बहुत सीमित थे। राज्यों की आर्थिक गतिविधियों से लोक वित्त का महत्व निर्भर है। प्रारंभ में सरकार का काम केवल वाह्य आक्रमण से सुरक्षा तथा न्याय तक था, सरकार का बजट भी सीमित था। क्लासिकल अर्थशास्त्री भी अहस्तक्षेप)Laissez-faire) नीति का पक्षधर थे और चाहते थे कि सरकार को आर्थिक गतिविधियों में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इस तरह की सरकार का कम योगदान था। जैसेजैसे समय बीतता गया-, हालात भी बदल गए। राज्य के कार्यों और योगदान में बदलाव हुआ, जिससे राज्य की अहस्तक्षेप नीति के गंभीर दोष सामने आने लगे। इस नीति को इग्लैंड

के राबर्ट ओवन, फ्रांस के सिसमांडी और जर्मनी के फेडरिक लिस्ट ने कटु आलोचना करते हुए राज्य को आगे आने का आह्वान किया। कार्ल मार्क्स, लास्की, वेब्स और जे० एम० कीन्स ने अहस्तक्षेप नीति पर सबसे प्रभावी प्रहार किया।

वास्तव में, 19वीं शताब्दी के अंत से ही राज्य का क्षेत्र और महत्व बढ़ना शुरू हो गया था, जिसका श्रेय जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर को जाता है, जिन्होंने प्रस्तावित किया था। लोक वित्त "राज्य की बढ़ती हुई क्रियाओं का नियम" का क्षेत्र और महत्व राज्य के कार्यों में वृद्धि के साथ बढ़ता जा रहा है। अब राज्य केवल देशवासियों की रक्षा और सुरक्षा करता है, बल्कि एक कल्याणकारी राज्य के रूप में नागरिकों के जीवन के हर पहलू पर नियंत्रण रखता है। वर्तमान परिस्थितियों में, राज्य ने मानव के सभी आर्थिक क्षेत्रों- उत्पादन, उपयोग, विनिमय और वितरण को नियंत्रित कर लिया है। कीन्स के के प्रकाशन के बाद "सामान्य सिद्धान्त", देश की आर्थिक क्रियाओं में राज्य का हस्तक्षेप और लोक वित्त का महत्व पूरी तरह से बदल गया। Kinsey ने कहा कि सरकारी हस्तक्षेप देश की आर्थिक स्थिरता और रोजगार में वृद्धि में योगदान दे सकता है। राजकोषीय और मौद्रिक नीति का उपयोग करके सरकार अर्थव्यवस्था को उचित दिशा में ले जा सकती है। आज विकसित देशों का लक्ष्य आर्थिक स्थायित्व है, जबकि विकासशील देश स्थिरता के साथ तीव्र आर्थिक विकास चाहते हैं। इसलिए इन देशों में राज्य और लोकवित्त का महत्व उम्मीद से बढ़ता जा रहा है।

सरकार स्थिरता के साथ विकास और राष्ट्रीय आय के न्यायोचित वितरण जैसे लक्ष्यों को अपनी राजकोषीय नीति से सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकती है। आज राज्य आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है, सामाजिक सुरक्षा और जनकल्याणकारी कार्यक्रमों को लागू करता है, सामाजिक बुराइयों को दूर करता है, शिशु उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाता है, आर्थिक विषमता को दूर करता है, दुर्लभ साधनों को सर्वोत्तम ढंग से बाँटता है, बेरोजगारी को दूर करता है और राष्ट्रीय उपक्रमों को विकसित करता है। राजकोषीय नीति से सरकार ये महत्वपूर्ण काम आसानी से कर सकती है। जब तक एक राज्य सुसंगठित लोकवित्त नहीं रखता, वह अपने उक्त उद्देश्यों को कुशलतापूर्वक पूरा नहीं कर सकता। राज्य के कार्यों और महत्व में वृद्धि से लोकवित्त का महत्व बढ़ा है।

लोकवित्त की सीमाएँ -:लोक वित्त से संबंधित नीतियाँ देश की आय, उत्पादन और रोजगार पर वांछित और अवांछित प्रभावों को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और इस तरह देश के आर्थिक जीवन को बहुत प्रभावित करती हैं। लोक वित्त की नीतियों को देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने के बावजूद कुछ सीमाएँ भी हैं, जैसे -

- कर प्रणाली में मनचाहा परिवर्तन करना सुगम नहीं होता। सामान्यतया लोग नए करों का विरोध करते है।
- कभीकभी सरकारी व्यय में वृद्धि से निजी निवेश में गिरावट आने लगती है। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास - से निजीक्षेत्र का संकुचन होने लगता है।

- सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम तभी सफल हो सकते है जब उन्हे उचित समय पर क्रियान्वित किया जाए परन्तु इस उचित समय अर्थात् मंदी का पुर्वानुमान लगाना कठिन होता है।

- सार्वजनिक निर्माण कार्यों को तुरंत लागू करना सदैव संभव नहीं हो पाता। सरकारी मशीनरी अपने ढंग से कार्य करती है, अतः निर्माण कार्यों को प्रारम्भ करने में कुछ न कुछ देरी तो हो ही जाती है।

इसलिए, सिर्फ लोकवित्तीय नीति ही अर्थव्यवस्था को स्थिरता के साथ विकास की ओर ले जा सकती है। इसलिए सरकार स्थिरता के तीव्र आर्थिक विकास और मंदी और बेरोजगारी का प्रभावी ढंग से सामना करने के लिए राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति दोनों का उपयोग करती है। अर्थव्यवस्था में लक्ष्य प्राप्त करने का एकमात्र उपाय समन्वित राजकोषीय और मौद्रिक नीति की क्रियान्वयन है।

2.8 लोक-वित्त एवं निजी-वित्त में भेद (Distinction between Public and Private Finance)

ऊपरी तौर पर, निजी वित्त और लोक वित्त में आम तौर पर कोई खास अंतर नहीं दिखाई देता क्योंकि दोनों का लक्ष्य आय और खर्च को संतुलित करना होता है। दोनों की समस्याएँ एक सी हैं और दोनों का लक्ष्य अपनी आय और खर्च से अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। निजी खर्चों का उद्देश्य प्राप्त करना है "अधिकतम संतुष्टि", जबकि सार्वजनिक खर्चों का उद्देश्य प्राप्त करना है। "अधिकतम सामाजिक लाभ" इसलिए, किसी भी देश की आर्थिक स्थिति में किसी भी महत्वपूर्ण बदलाव व्यक्तिगत और सरकारी वित्तीय स्थिति पर पड़ता है। फिर भी, निजी और लोक वित्त की प्रकृति, उद्येश्य,सिद्धान्त व्यवस्था, प्रशासन आदि में आधारभूत और मौलिक अंतर हैं, जो निम्नलिखित क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं।

1. **आय तथा व्यय के समायोजन में भेद (Difference In the Adjustment of Income And Expenditure):** ज्यादातर लोग अपनी आय के अनुसार खर्च करते हैं। वह पहले अपनी आय देखता है और फिर उसी अनुसार खर्च करता है। इसके बजाय, सरकार पहले व्यय निर्धारित करती है और फिर आय के साधन जुटाने की व्यवस्था करती है। लेकिन दोनों की वित्त व्यवस्थाएँ अक्सर उपरोक्त सिद्धान्तों के अनुरूप काम नहीं करती हैं क्योंकि उनमें व्यावहारिक समस्याएं हैं। विशेष अवसरों पर, लोगों को अपनी कमाई से अधिक खर्च करना पड़ता है। जब एक व्यक्ति विवाह, त्यौहारों और अन्य सामाजिक उत्सवों पर अधिक खर्च करता है, तो वह अधिक काम करने, और कठिन परिश्रम करके अपनी आय को बढ़ाने की कोशिश करता है। इसी तरह, सरकारें कभीकभी अपनी आय के अनुसार व्यय को समायोजित करती हैं।- इसके अलावा, सरकार सदैव अपने खर्चों के अनुरूप आय प्राप्त करने में सफल होती है। कभी-कभी सरकार को खर्च कम करना भी पड़ता है। यह मुद्दा उठाते हुए प्रो. फिण्डले शिराज ने कहा कि 'निजी वित्त और लोक वित्त में अंतर केवल प्रकृति का है, न कि मात्रा का'।

2. उददेश्यों में भिन्नता (Difference In Aims) : (क) व्यक्ति सदैव अपने हित की भावना से प्रेरित होकर कार्य करता है जबकि सरकार के कार्यों का उद्येश्य सामाजिक कल्याण को अधिकतम् करना होता है। इस सम्बन्ध

में डी0 मार्को का कथन है कि "निजी–वित्त व्यवस्था में व्यक्तियों की, उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने सम्बन्धी क्रियाओं का ही अध्ययन किया जाता है जबकि लोक-वित्त में सकरार की उत्पादन क्रियाओं का जो सामूहित इच्छाओं की पूर्ति के लिए की जाती है, का अध्ययन किया जाता है।" (ख) व्यक्ति व्यय करते समय प्रायः सम-सीमांत उपयोगिता नियम को पालन करने का प्यास करता है ताकि वह अपनी निश्चित आय से अधिकतम् संतुष्टि प्राप्त कर सकें। परन्तु सरकार के लि ऐसा पाना संभव नहीं हो पाता क्योकि सरकार को अधिकांशतः अपना व्यय राजनीतिक आधार पर करना पड़ता है भले ही उससे मिलने वाली उपयोगिता कितनी ही कम क्यों न हो। इस तरह, सरकार के सामाने व्यय के चुनाव की स्वत्रंता बहुत सीमित होती है। जबकि व्यक्ति अपना व्यय अपनी इच्छा एवं अभिरूचि के अनुरूप निरिचित कर सकता है। (ग) सामान्यता व्यक्ति अपने वर्तमान एवं तत्कालीन आवश्यकताओं को संतुष्ट करने का प्रयास करता है और उसी के अनुरूप व्यय करता है जबकि सरकार वर्तमान एवं भविष्य के हितों को ध्यान में रखकर अपने व्यय को निर्धारित करती है। डाल्टन ने इस सम्बन्ध में कहा है कि राज्य ने केवल वर्तमान के लिए बल्कि भावी पीढ़ियों के लिए भी एक प्रन्यासी (Trustee) होता है, राज्य अमर है जबकि व्यक्ति मरणशील है। इसलिए व्यक्ति प्रायः शीघ्र लाभ प्राप्त करने को उत्सुक रहता है

3. आय के साधनों में लोच-सम्बन्धी अन्तर (Difference In the Sources of Income and Its Elasticity) सरकारी आय और उसके साधन निजी आय और साधनों से अधिक लोचपूर्ण हैं। सरकार पुराने करों की दरों में वृद्धि करके, नए कर लगाकर, नोट छापकर, आंतरिक और वाह्या ऋण लेकर तथा लाभदायक उद्योगों का राष्ट्रीकरण करके अपनी आय को बढ़ा सकती है। उपरोक्त साधनों का प्रयोग कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। कुछ विद्वानों का मानना है कि सरकार अपनी आय को सीमा से अधिक नहीं बढ़ा सकती। वह एक सीमा के बाद बाह्य ऋण प्राप्त कर सकती है, नोट छाप सकती है या कर को मनमाने ढंग से बढ़ा सकती है। युद्ध या आपातकालीन हालात ही सरकारी वित्त व्यवस्था को अधिक मजबूत बना सकते हैं। जैसे-जैसे सरकारी आय बढ़ती जाती है वैसे-वैसे व्यक्तिगत आय घटती जाती है। श्रीमती हिक्स का विचार है कि'सरकार उस अनुपात को बदलने के बजाय अपनी आय को बढ़ा सकती है। जिसमें देश की पूरी आय सरकार और आम लोगों के बीच बाँटी रहती है'।

4.बजट की प्रकृति में अंतर (Difference in the Nature of Budget): बजट में अतिरेक होना एक व्यक्ति की कुशलता और दूरदर्शिता का संकेत है, जबकि सरकारी बजट में अतिरेक वित्त मंत्री की अकुशलता का संकेत है। सरकार का अतिरेक बजट उच्च स्तरीय कराधान और निम्न स्तरीय व्यय का संकेत है। यह परिस्थितियां एक लोकप्रिय सरकार के लिए अनुचित हैं। सरकार द्वारा सार्वजनिक सेवाओं पर कम खर्च करना असंतोष पैदा करता है, जहाँ अधिक कर देना देश की जनता के लिए बुरा होता है। बजट को सार्वजनिक वित्त में संतुलित रखना ही उचित मानते हैं। घाटे का बजट कभी कभी उपयुक्त होता है।-फिण्डले शिराज ने कहा, "यदि किसी सरकार का बजट अतिरेक दिखाता है तो इससे देश के वित्त मंत्री की अकुशलता दिखाई देती है।सरकारी बजट " को संतुलित रखना ही सही समझा जाता है, और कभी"कभी घाटे का बजट बनाना भी फायदेमंद होता है।-

5. गोपनीयता का अंतर (Difference in Secrecy): प्रत्येक व्यक्ति अपनी आय और खर्चों के विवरण को दूसरों से नहीं बताना चाहता और इसे गुप्त रखने की कोशिश करता है। इसके विपरीत, सरकारी बजट पूरी तरह से पारदर्शी रहता है। सरकार अपने बजट को समाचार पत्रों और अन्य प्रचार माध्यमों के माध्यम से प्रसारित करती है ताकि लोग उसके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें और उसके बारे में टिका -टिप्पणी कर सकें।

6. अवधि में अंतर (Difference in the Period of Time): सरकार एक निश्चित अवधि ,सामान्यता एक वर्ष की अवधि के लिए आय व्यय का बजट तैयार–करती है परन्तु व्यक्तिगत अर्थ प्रबंधन में कोई व्यक्ति अथवा परिवार ऐसी किसी निश्चित अवधि के लिए अपने आय- व्यय का लेखा तैयार नहीं करता। सरकार की योजनाएँ अत्यधिक विस्तृत होती है जबकि व्यक्ति की योजनाएँ बहुत लघु स्तर की होती है।

2.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरी प्रश्न-

प्रश्न .1 लोकवित्त किसे कहते हैं?

प्रश्न .2 प्रश्न सार्वजनिक व्यय को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न .3 सार्वजनिक आय किसे कहते हैं?

प्रश्न .4 वित्तीय प्रशासन किसे कहते हैं ?

वस्तु निष्ठ प्रश्न(Multiple Choice Questions)

1. निम्न में से लोक वित्त किसका अध्ययन नही करता

   A. मूल्य नीति

   B. सार्वजनिक ऋण

   C. रिकार्डो

   D. बजट

   E. सार्वजनिक आय

2. " वेल्थ ऑफ नेशन" किसकी पुस्तक है?

   A. कीन्स

   B. एडम स्मिथ

   C. जे से .बी.

3. निम्न में से कौन राजकोषीय नीति का उद्देश्य नही है?

   A. विनिमय नियन्त्रण

B. आर्थिक विकास

C. रोजगार में वृद्धि

D. कीमत स्थिरता

सत्य/असत्य(True/False)

1. वित्तीय प्रशासन का उद्देश्य सरकार के आय तथा व्यय को नियन्त्रित करना है।
2. लोक वित्त का अर्थ सरकार के आय तथा व्यय का विश्लेषण करना है।

लघु उत्तरीय प्रश्न(Short Answer Type Question)

1. प्रो0 डाल्टन द्वारा राजस्व की दी गयी परिभाषा को संक्षेप में समझाइए।
2. सार्वजनिक वित्त और निजी वित्त में अन्तर के किन्ही दो कारणों को लिखिए।

2.10 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि लोक वित्त मूल रूप से सरकारों के आय–व्यय से सम्बन्धितहै तथा सरकारों का अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सत्ताओं से है। वर्तमान समय में लोक वित्त का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है, लोक वित्त के अध्ययन क्रम को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है सार्वजनिक व्यय-,सार्वजनिक आय,सार्वजनिक ऋण वित्तीय प्रशासन और राजकोषीय या वित्तीयनीति। राज्य आज आर्थिक विकास को बढ़ावा देने-, बाहयआक्रमण से - रखने सुरक्षा तथा आंतरिक शान्ति बनाए, सामाजिक सुरक्षा तथा जनकल्याणकारी कार्यों के कार्यान्वयन करने, सामाजिक बराइयों को दर करने शिश उद्योगों को संरक्षण प्रदान कर विदेशी प्रतियोगिता से बचाने के लिए आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए, दुर्लभ साधनों के सर्वोत्तम ढंग से आवंटन के लिए, राष्ट्रीय उपक्रमों का विकास करने तथा बेरोजगारी दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये महत्वपूर्ण कार्य सरकार राजकोषीय नीति के द्वारा सुगमतापूर्वक कर सकती है। कोई भी राज्य कुशलतापूर्वक अपने उक्त कार्यों का सम्पादन तब तक नहीं कर सकती जब तक कि उसके पास सुसंगठित लोकवित्त नहीं होगा। इस तरह, राज्य के कार्यों एवं महत्व में वृद्धि होने से लोकवित्त के महत्व में अधिक वृद्धि हो चुकी है। लोक वित्त तथा निजी वित्त में सामान्यतया ऊपरी तौर पर कोई विशेष भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती क्योकि दोनो का उद्येश्य आय तथा व्ययय के बीज सामंजस्य अथवा संतुलन स्थापित करना होता है। दोनो की समस्याएँ एक सी है तथा दोनो का उददेश्य अपनी आय तथा व्यय से अधिकतम् सतोष प्राप्त करना होता है। निजी व्यय इसलिए होता है ताकि 'अधिकतम संतुष्टि' की प्राप्ति हो सके और सार्वजनिक व्यय इसलिए किया जाता है ताकि उससे 'अधिकतम् सामाजिक लाभ' उपलब्ध हो सके। फिर भी लोक वित्त तथा निजी वित्त की प्रकृति, उद्येश्य, सिद्धान्त व्यवस्था तथा प्रशासन आदि में आधारभूत एवं मौलिक भेद हैं। राजस्व का न्यायोचित

सिद्धान्त वह होगा जिनकी अनुसार राजकीय आय व व्यय से अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त हो सके। डाल्टन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए इसको अधिकतम सामाजिक लाभ का नियम कहा है।इसके विभिन्न दृष्टिकोण का आप ने अध्ययन किया।

2.11 शब्दावली (Glossary)

- **बजट-** सरकार का वार्षिक वित्तीय विवरण।
- **आर्थिक सर्वेक्षण-** एक वित्तीय वर्ष में भारतीय अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों की स्थिति एवं मूल्यांकन का सरकारी प्रकाशन।
- **वित्त आयोग-** राज्यों को संसाधनों के बंटवारे हेतु संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत स्थापित आयोग अन्तरण हस्तान्तरण। -
- **कर प्रयास-** किसी भी राज्य के प्रति व्यक्ति कर राजस्व से प्रति व्यक्ति आय का अनुपात

2.12 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर (Answers of Practice Questions)

वस्तु निष्ठ प्रश्न(Multiple Choice Questions)

1. (A) मूल्य नीति

2. (B) एडम स्मिथ

3. (A) विनियम नियन्त्रण

सत्य/असत्य(True/False)

उत्तर -1. सत्य एवं 2. सत्य

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References /Bibliography)

- आर. एमसग्रेव, पब्लिक फाइनेंस इन ए डेमोक्रेटिक सोसाइटी
- आर. ए. मसग्रेव, द थ्योरी ऑफ पब्लिक फाइनेंस, मैग्राहिल 1984
- जे. सी. पन्त राजस्व, लक्ष्मी नरायण अग्रवाल पब्लिकेशन 1979
- अमरेश बागेची रीडिंग इन पब्लिक फाइनेंस, आक्सफोर्ड 1980

- ए. प्रेमचन्द्र गवर्नमेन्ट बजटिंग एण्ड एक्सपेन्डीचर कन्ट्रोल, IMF 1983
- एस. के. सिंह लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2008
- H. Parnell, "On Financial Reform"; quoted by G. findlay shirras in the science of Public Financle, p. 31

2.14 सहायक पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- भाटिया एच०एल० (2006), लोकवित्त)Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि०,जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे०सी० (2005), राजस्व)Public Finance), लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे०सी० (1997), राजस्व)Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, हास्पीटल रोड,आगरा।
- डॉलोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स : मिश्र .पी.जे ., वाराणसी।

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

प्रश्न .1 "सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक आय का आधारभूत सिद्धान्त अधिकतम सामाजिक लाभ है ' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न .2 राजस्व की परिभाषा दीजिए तथा उसके क्षेत्र का वर्णन कीजिए।

प्रश्न .3 व्यक्तिगत व सार्वजनिक वित्त में मुख्य अन्तर क्या है?

इकाई 3- लोक वित्त की अवधारणायें और बाजार असफलता (Concepts of Public Finance and Market Failure)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 उद्देश्य (Objectives)

3.3 लोक वित्त की अवधारणा से तात्पर्य तात्पर्य (Meaning of the concept of Public Finance)

3.4 लोक वित्त की अवधारणा का महत्व (Importance of the concept of Public Finance)

3.5 लोक वित्त की विचारधारायें एवं अवधारणायें अवधारणायें (Ideologies and Concepts of Public Finance)

3.6 बाजार असफलता का तात्पर्य (Meaning of Market Failure)

3.7 बाजार असफलता के कारण (Reasons of Market Failure)

3.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

3.9 सारांश (Summary)

3.10 शब्दावली (Glossary)

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

3.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री/(Useful / Helpful text)

3.13 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

लोक सत्ताओं की आय और व्यय अक्सर लोक वित्त का विषय होते हैं। आधुनिक युग में, खासकर कल्याणकारी राज्य की स्थापना के कारण, लोकवित्त क्षेत्र में बड़ा विस्तार हुआ है। पूर्व की इकाईयों में लोकवित्त की प्रकृति और क्षेत्र का अध्ययन किया गया है।विभिन्न परिस्थितियों और समय के साथ, लोक वित्त की समझ बदलती रही है । अब राज्य का अधिकार सिर्फ सुरक्षा और कानून व्यवस्था तक नहीं है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, सामाजिक सुरक्षा, बैंकिंग, वित्त और अन्य सभी क्षेत्रों में फैल गया है। वैश्वीकरण और उदारीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों ने राज्य की भूमिका को नया रूप दिया है। लोक वित्त की अवधारणाओं में सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के आवंटन और मूल्य निर्धारण भी शामिल हैं। बाजार तंत्र आम तौर पर सार्वजनिक वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत निर्धारण से लेकर उनके कुशल आवंटन में असफल रहता है। वर्तमान इकाई में लोक वित्त की अवधारणाओं और बाजार असफलता का व्यापक अध्ययन किया जाएगा।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे-

- ✓ लोक वित्त की अवधारणायें
- ✓ लोक वित्त की परिभाषाओं व सिद्धान्तों के निर्माण तथा विकास में लोक वित्त की अवधारणाओं की भूमिका
- ✓ लोक वित्त की विषय वस्तु एवं अवधारणाओं के मध्य सम्बन्ध
- ✓ बाजार असफलता से तात्पर्य
- ✓ बाजार असफलता के कारण तथा परिणाम

3.3 लोक वित्त की अवधारणा से तात्पर्य (Meaning of the concept of Public Finance)

किसी वस्तु, घटना अथवा प्रक्रिया के वैज्ञानिक प्रेक्षण एवं बोध के आधार पर निर्मित सामान्य विचारों को अभिव्यक्त एवं बोध के आधार पर निर्मित सामान्य विचारों को अभिव्यक्त करने हेतु जिन विशिष्ट शब्द संकेतों, परिभाषाओं तथा सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है उसे वैज्ञानिक शब्दावली में अवधारणा कहते हैं । अतः सिद्धान्त स्थिर नहीं होते, बल्कि गतिशील होते हैं, और उनका अर्थ निरंतर बदलता रहता है। अवधारणा से किसी विषय के सिद्धान्तों, विचारधाराओं, वस्तुओं और समझ का विकास होता है । इसलिए लोक वित्त की परिभाषा, विचारधारा और सिद्धान्त आदि लोक वित्त की परिभाषा से जुड़े हुए हैं । लोक वित्त की अवधारणा को और अधिक समझने के लिए हमें पहले इसका अर्थ समझना होगा। लोक वित्त को अक्सर राजस्व भी कहते हैं, जिसका अर्थ है राजा का धन, और इसका मतलब है कि राजा अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए धन का उपयोग करता है। लोक या सार्वजनिक शब्द का मतलब आम लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था से है। लोक वित्त में केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों के वित्त की प्रक्रियाओं की जांच की जाती है ।

लोक वित्त की अवधारणाओं में समय के साथ-साथ परिवर्तन होता आया है । इसका कारण यह है कि लोक वित्त के विषय क्षेत्र में समय के अनुसार व्यापक परिवर्तन हुए हैं । प्राचीन समय में लोक वित्त का क्षेत्र अत्यधिक सीमित था परन्तु वर्तमान समय में विशेषकर कल्याणकारी राज्य की स्थापना के पश्चात् राज्य को मात्र सुरक्षा, कानून एवं व्यवस्था तक सीमित न रहते हुए स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, नागरिक सुविधायें जैसे जल, विद्युत आपूर्ति आदि कल्याणकारी कार्य करने होते हैं ।

भारत जैसे देशों में जहाँ कि आर्थिक नियोजन फलस्वरूप जन्य नियोजित विकास की प्रक्रिया में राज्य द्वारा प्रमुख रूप से विकास कार्यों में सक्रिय तथा प्रभावी भूमिका निभायी हैं एवं विभिन्न सरकारों द्वारा लोकवित्त के

सार्वजनिक निवेश, सार्वजनिक ऋण तथा राजकोषीय नीतियों से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं का प्रयोग नियोजन एवं विकास प्रक्रियाओं में किया गया है।

लोक वित्त की अवधारणाओं को शासन व्यवस्था के विभिन्न स्वरूपों जैसे एकीकृत शासन प्रणालियों ने भी प्रभावित किया है। भारत में विशेषकर विकेन्द्रीकृत शासन व्यवस्था हेतु एवं स्थानीय संस्थाओं को अधिक स्वायत्त बनाने के लिए संविधान में 73वाँ तथा 74वाँ संशोधन करने से लोक वित्त की अवधारणाओं में नया परिवर्तन आया है।

वैश्वीकरण तथा उदारीकरण के दौर में राज्य की भूमिका पुर्नपरिभाषित हुई है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में जहाँ बाजार प्रभावी भूमिका निभा रहा है वहीं राज्य की भूमिका में भी परिवर्तन आया है। राज्य अब नियन्त्रक की नहीं अपितु नियामक की भूमिका में आ गया है। उपरोक्त के कारण लोक वित्त की अवधारणाओं को एक नवीन दिशा मिली है।

3.3.1 लोक वित्त की परिभाषायें - लोक वित्त को विभिन्न विद्वानों ने अलगअलग प्रकार से परिभाषित किया -- है इन परिभाषाओं की सहायता से लोक वित्त की अवधारणा को निम्नवत् रुप से समझा जा सकता है

डॉल्टन के अनुसार,लोक वित्त का सम्बन्ध लोक सत्ताओं के आय और व्यय से तथा एक दूसरे के साथ " समायोजन से है।"

फिण्डले शिराज के अनुसार, लोक सत्ताओं द्वारा कोषों के व्यय करने एवं प्राप्त करने में निहित लोक वित्त" "सिद्धान्त का अध्ययन है।

बेस्टेबल के अनुसार, "लोक वित्त लोक सत्ताओं के आय और व्यय तथा उनके पारस्परिक संबंध और वित्तीय प्रशासन तथा नियन्त्रण से संबंधित है।"

विभिन्न विद्वानों द्वारा लोक वित्त की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि लोक वित्त का तात्पर्य सार्वजनिक सत्ताओं के आय व्यय सम्बन्धी विषयों से है। यद्यपि वर्तमान समय में लोक वित्त की अवधारणायें अधिक व्यापक हो गयी हैं तथा इसके अन्तर्गत अध्ययन सार्वजनिक सत्ताओं जैसे केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन सत्ताओं के आय व्यय से संबंधित ही नहीं किया जाता अपितु वित्तीय प्रशासन, राजकोषीय नीतियों एवं वित्तीय नियन्त्रण के सिद्धान्तों का अध्ययन भी किया जाता है। कुल मिलाकर लोकवित्त सरकारों की वित्त व्यवस्था से संबंधित सिद्धान्तों, समस्याओं, नीतियों प्रक्रियाओं एवं समायोजन व्यवस्था का अध्ययन करती है।

3.4 लोकवित्त की अवधारणा का महत्व (Importance of the concept of Public Finance)

वर्तमान समय में लोकवित्त की अवधारणा का तीव्र तथा व्यापक विकास हुआ है, जिससे लोकवित्त की भूमिका सभी देशों के लिए महत्वपूर्ण हो गई है, चाहे वे विकसित हों या विकासशील हों। पुराने अर्थशास्त्रियों ने लोकवित्त की महत्वपूर्ण अवधारणाओं को छोड़ दिया था, लेकिन 1930 की महामंदी और उसके बाद हुए आर्थिक मंदी ने लोकवित्त की भूमिका को आर्थिक समस्याओं का कारण बनाया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, लोकवित्त के नियमों और नीतियों का प्रभावी उपयोग किया गया है, खासकर नवोदित और अल्पविकसित देशों का विकास। वर्तमान में भारत जैसे विकासशील देशों में लोकवित्त का महत्व निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है:

- **राज्य की बढ़ती क्रियायें** – पुराने समय में सुरक्षा तथा कानून व्यवस्था राज्य की जिम्मेदारी थीं। पुराने अर्थशास्त्री ने राज्य को आर्थिक गतिविधियों में शामिल करना अनुचित समझा परन्तु आर्थिक विकास और कल्याणकारी राज्य की कल्पना ने राज्य की क्रियाओं में काफी वृद्धि की है। सरकार ने रेल, सड़क, परिवहन और ऊर्जा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निवेश किया है, साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य और साफ सफाई पर भी बहुत पैसा खर्च किया है।

- **आर्थिक नियोजन में महत्व** – आज, देश का संतुलित तथा सर्वांगीण विकास करने के लिए आर्थिक नियोजन महत्वपूर्ण है। लोक वित्त की सही व्यवस्था और अवधारणा आर्थिक नियोजन की सफलता पर निर्भर करती है। आर्थिक नियोजन करने के लिए सरकार को व्यापक, महत्वपूर्ण परियोजनाओं का कार्यान्वयन करना होगा, जिसके लिए बड़े पैमाने पर धन की आवश्यकता होती है। इसलिए, घाटे की वित्त व्यवस्था, सार्वजनिक ऋण आदि को प्रभावी ढंग से लागू करना होगा।

- **पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास हेतु** – पूंजी निर्माण आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है। लोकवित्त प्रक्रियाओं का मुख्य उद्देश्य संसाधनों को बचत तथा निवेश के लिए सक्रिय करना है और इससे पूंजी बनाना है। विकासशील और अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को गति देने के लिए पूँजी निर्माण के साथसाथ उद्योग धन्धों और कृषि क्षेत्र का विकास भी आवश्यक है-, जिसके लिए सरकार कर राहत, कर्ज, सब्सिडी और उपदान सहित विभिन्न उपायों से उद्योगपतियों और कृषकों को प्रोत्साहित करती है।

- **महत्वपूर्ण उद्योगों एवं सेवाओं का राष्ट्रीयकरण** – देश की सुरक्षा, सामाजिक एवं आर्थिक विकास के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सरकार द्वारा समयसमय पर बैंकिग-, वित्त, बीमा एवं महत्वपूर्ण उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण किया जाता रहा है।

- **आर्थिक स्थिरता -** 1929–1930 की विश्वव्यापी मंदी के बाद सरकारी हस्तक्षेप अर्थव्यवस्था की स्थिरता और उतार चढ़ावों पर नियंत्रण करने के लिए आवश्यक है। प्रभावी लोकवित्त नीति ही सरकारी दखल को पूरा कर सकती है। आर्थिक स्थिरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए करारोपण, लोकवित्त और लोकऋण की नीतियों में उचित समायोजन किया जा सकता है।

- **संसाधनों का इष्टतम उपयोग-** लोकवित्त की विभिन्न रणनीतियों और प्रक्रियाओं का उपयोग करके देश के निष्क्रिय और बेकार पड़े संसाधनों का अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है। बजट तथा

राजकोषीय नीतियों के माध्यम से सरकार उपयोग, उत्पादन, निवेश, बचत तथा वितरण को उचित दिशा में चालू कर सकती है।

- **आर्थिक असमानता कम करने में सहायक -** पूर्ण आर्थिक विकास, न्यायपूर्ण और समानता, आर्थिक विकास का एक प्रमुख लक्ष्य है, यह सिर्फ पूरी तरह से वितरण से संभव है। लोकवित्त रणनीतियों के माध्यम से संपन्न वर्ग से कर और अन्य साधनों के माध्यम से संसाधन जुटाकर उन्हें कमजोर वर्ग में सार्वजनिक खर्चों के माध्यम से भेजा जा सकता है।

- **सामाजिक कल्याण तथा विकास हेतु -** लोकवित्त से सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों, जैसे रोजगार संवर्धन कार्यक्रम, निर्धनों को आर्थिक सहायता और महिलाओं, दलितों और पिछड़े वर्गों को विकसित करने के लिए विशेष कार्यक्रमों को लागू किया जाता है।

- **राजनैतिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महत्व -** सरकारें अपनी राजनैतिक और अंतरराष्ट्रीय नीतियों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन और प्रभावी लोकवित्त रणनीति की आवश्यकता होती है। लोकवित्त की रणनीतियाँ देश की आंतरिक सुरक्षा, विदेशी आक्रमणों से बचाव और क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं में महत्व स्थापित करने के लिए आवश्यक हैं। पीकॉक वाइजमैन- ने सार्वजनिक व्यय के निर्धारण में राजनैतिक सिद्धान्तों और आधारों के महत्व को स्थापित किया, जो सार्वजनिक व्यय के निर्धारण में राजनैतिक आधारों पर निर्भर करता है।

3.5 लोक वित्त की विचारधारायें एवं अवधारणायें (Ideologies and Concepts of Public Finance)

लोक वित्त पर विभिन्न अवधारणाओं और सिद्धान्तों का विकास विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने किया। पुरानी आर्थिक अवधारणा ने लोक वित्त को बनाया था, लेकिन इसमें कई महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। अंतत, आधुनिक लोक वित्त की अवधारणा विकसित हुई। ये लोक वित्त की सबसे महत्वपूर्ण अवधारणायें हैं -:

3.5.1 प्राचीन या संस्थापक अवधारणा –प्राचीन या संस्थापक अवधारणा मूलतः पारंपरिक आर्थिक विचारधारा और सिद्धांतों पर आधारित है। इस अवधारणा के तहत, आर्थिक गतिविधियों में सरकारी हस्तक्षेप को अनुचित माना जाता है। इनके अनुसार, सरकार को न्यूनतम खर्च और न्यूनतम कर लगाने चाहिए। उनका मानना है कि सरकारी खर्च अनुत्पादक होता है और कर का बोझ बचत और निवेश पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जेके अनुसार .से .बी., "सर्वश्रेष्ठ वित्तीय योजना वह होती है जिसमें न्यूनतम खर्च किया जाए, और सबसे अच्छा कर वह है जिसकी धनराशि सबसे कम हो।एडम स्मिथ और रिकार्डो " का मानना था कि गैर-सरकारी खर्च उत्पादक होता है जबकि सरकारी खर्च अनुत्पादक होता है। इन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का कहना था, "हर कर एक बुराई है और हर सरकारी खर्च अनुत्पादक है।के मुख्य विचार निम्नलिखित संस्थापक अवधारणा " -:हैं

- बजट हमेशा संतुलित होना चाहिए, इसका आकार छोटा होना चाहिए, और बजट घाटा विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

- सरकारी निवेश को अनुत्पादक मानते हुए, यह सुझाव दिया जाता है कि सरकार को निवेश कम से कम करना चाहिए, जबकि निजी निवेश को पूर्ण रोजगार सुनिश्चित करने में सक्षम माना जाता है।

- बचत पर लगाए गए कर समाज के लिए हानिकारक होते हैं, जैसे कि आयकर और मृत्यु कर, जबकि उपभोग पर लगाए गए कर अपेक्षाकृत कम हानिकारक होते हैं।

3.5.2 आधुनिक वैचारिक अवधारणा एवं आधुनिक सिद्धान्त -कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तावित स्वचालित पूर्ण रोजगार की अवधारणा को न केवल चुनौती दी, बल्कि पूर्ण रोजगार, निवेश में वृद्धि और विकास दर को तेज करने के लिए सार्वजनिक वित्त की महत्ता को भी प्रमुखता से स्थापित किया। कीन्स के सिद्धांत में निम्नलिखित अवधारणात्मक विचार प्रमुखता से उभरते हैं:

- पूर्ण रोजगार की स्थापना और निवेशबचत प्रक्रिया में वृद्धि के लिए सार्वजनिक निवेश का महत्वपूर्ण - योगदान होता है।

- सार्वजनिक निवेश आय उत्पादन में गुणक प्रभाव के माध्यम से वृद्धि करता है।

- सरकार सड़कों, रेलवे, विद्युत, जनोपयोगी उद्यमों और उद्योगों में सरकारी धन खर्च करके समर्थ मांग को प्रोत्साहित कर सकती है।

- घाटे की वित्त व्यवस्था और जनता से उधार लेकर सार्वजनिक निवेश, आर्थिक मंदी को दूर करने का प्रभावी उपाय है।

कुल मिलाकर, कीन्स ने सार्वजनिक वित्त के महत्व को पूर्ण रोजगार, आर्थिक प्रगति, आर्थिक स्थिरता, और संसाधनों के बेहतर आवंटन के लिए स्थापित कर दिया। लर्नर ने कीन्स की सार्वजनिक वित्त की विचारधारा को की अवधारणा के रूप में प्रतिपादित किया है। क्रियाशील वित्त में सार्वजनिक वित्त की पद्धति "क्रियाशील वित्त" त्मक परिणामों के आधार परका मूल्यांकन उसके कार्याकिया जाता है।

3.5.3 सक्रियकारी वित्त की अवधारणा – सक्रियकारी वित्त की वैचारिक अवधारणा का प्रतिपादन प्रो . बलजीत सिंह ने किया है। इस अवधारणा के तहत, लोक वित्त के साधनों और उपकरणों का उनकी कार्यप्रणाली के आधार पर परीक्षण किया जाता है, और यह आकलन किया जाता है कि ये उपकरण अर्थव्यवस्था के लिए कितने उपयोगी हैं और किस प्रकार वित्त प्रबंधन की नीतियाँ अर्थव्यवस्था में प्रगति और गतिशीलता उत्पन्न करती हैं। सक्रियकारी वित्त की यह अवधारणा विशेष रूप से विकासशील और अर्द्धविकसित देशों के संदर्भ में विकसित

की गई है, जबकि लर्नर और कीन्स की कार्यशील वित्त की अवधारणा विकसित देशों की समस्याओं को ध्यान में रखकर स्थापित की गई थी।

3.5.4 समाजिक राजनैतिक अवधारणा -वैगनर और एजवर्थ इस विचार के प्रमुख समर्थक हैं। इस विचार को लोकतांत्रिक और कल्याणकारी राज्य के राजनैतिक सिद्धांतों से प्रेरित किया गया है । इस अवधारणा के अनुसार, लोक वित्त का मुख्य लक्ष्य यह होना चाहिए कि कमजोर लोगों को धन मिल सके, जिससे अधिकतम सामाजिक कल्याण का निर्माण हो सके।

3.5.5 लोक वित्त की विशुद्ध अवधारणा -सेलिगमैन ने यह विचारधारा विकसित की। इसके अनुसार आय, व्यय और ऋण सहित लोक वित्त की विभिन्न समस्याओं पर तटस्थ रूप से विचार किया जाना चाहिए। यह विचारधारा नहीं मानती कि लोक वित्त नीति का उद्देश्य धन की असमानताओं को दूर करना होना चाहिए।

3.5.6 लोक वित्त के नवीनतम् अवधारणा –मसग्रेव ने लोक वित्त की परिधि में नवीनतम विचार जोड़े। मसग्रेव ने कहा कि लोक वित्त के सिद्धान्तों का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक अर्थव्यवस्था को सक्षम बनाने के लिए नियम बनाना है। मसग्रेव ने कहा कि सरकारी उद्देश्यों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

- आर्थिक स्थिरीकरण
- आय का वितरण
- साधनों का आवंटन

अतः मसग्रेव के अनुसार लोक वित्त के अन्तर्गत ऐसी प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है जिससे उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति हो सके एवं इन उद्देश्यों की पूर्ति करने में बजट की विभिन्न क्रियाकलापों का अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन किया जा सके ।

3.6 बाजार असफलता का तात्पर्य (Meaning of Market Failure)

बाजार असफलता एक जटिल और रोचक अवधारणा है, जो उन परिस्थितियों का परिणाम है जहां बाजार प्रणाली अपनी पूर्ण क्षमता के साथ काम नहीं कर पाती। आर्थिक सिद्धांतों के अनुसार, बाजार असफलता वह स्थिति है जिसमें मुक्त बाजार के माध्यम से वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन और वितरण पूरी क्षमता से नहीं हो पाता। इस प्रक्रिया में संसाधनों का वितरण और उपयोग अनुकूलतम नहीं होता। सरल शब्दों में, इसका अर्थ यह है कि उत्पादन की सामाजिक लागत न्यूनतम नहीं होती। बाजार असफलता की स्थिति में, मुक्त बाजार में उपभोक्ताओं द्वारा किसी उत्पाद की मांग और आपूर्तिकर्ताओं द्वारा उस वस्तु की आपूर्ति में सामंजस्य नहीं होता, और आवश्यक आर्थिक तत्वों की कमी के कारण स्थायी संतुलन स्थापित नहीं हो पाता। इस स्थिति में उत्पादन पेरेटो इष्टतम की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता, यानी समाज कल्याण के दृष्टिकोण से बेहतर परिणाम संभव हैं। बाजार

असफलता के परिणामस्वरूप कीमत तंत्र समुचित रूप से कार्य नहीं कर पाता, और इसका प्रभाव उत्पादन, वितरण, और उपभोग के विभिन्न चरणों पर पड़ता है। इसका विश्लेषण निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से किया जा सकता है:

1. बाजार दुर्लभ संसाधनों का कुशलता से और पूर्ण क्षमता के साथ वितरण करने में विफल रहता है।
2. बाजार में कीमत तंत्र प्रभावी रूप से कार्य नहीं कर पाता।
3. बाजार पर्याप्त मात्रा में मेरिट वस्तुओं और सेवाओं (गुणकारी), जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं का उत्पादन करने में विफल रहता है, और साथ ही सामाजिक रूप से हानिकारक वस्तुओं, जैसे शराब और तंबाकू को नियंत्रित नहीं कर पाता।
4. बाजार असफलता के कारण सामान्य संसाधनों की त्रासदी जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जहां स्वहित की होड़ में सामान्य और सार्वजनिक संसाधनों का अतिशोषण होता है और इसके क्षरण का नुकसान पूरे समाज को उठाना पड़ता है।
5. बाजार असफलता के कारण पर्यावरण के मूल्यों का आर्थिक और बाजार मूल्य में समावेश नहीं हो पाता, जिससे औद्योगिक उत्पादन का लाभ उद्योगपतियों को होता है, लेकिन प्रदूषण की लागत पूरे समाज को भुगतनी पड़ती है।
6. बाजार असफलता के कारण संतुलन अस्थिर और असंतुलित हो जाता है, और यह संतुलन सामाजिक और आर्थिक कल्याण की दृष्टि से इष्टतम नहीं होता। पेरेटो इष्टतम की शर्तें भी पूरी नहीं हो पातीं।
7. बाजार असफलता के कारण उत्पादन के सीमांत सामाजिक लाभ और सीमांत सामाजिक लागत में अंतर आ जाता है, जिससे अधिकतम सामाजिक कल्याण का संतुलन स्थापित नहीं हो पाता, और सरकार के इष्टतम बजट के आकलन में समस्याएं आती हैं।
8. बाजार असफलता की वजह से संसाधनों का अक्षमतापूर्ण और अनुचित वितरण भी होता है। यह स्थिति वित्तीय नीतियों और निर्णयों में विवेक की कमी, अक्षमता, प्रतिकूल चयन, नैतिक संकट, और जोखिम की स्थिति उत्पन्न कर देती है, जिसका परिणाम व्यापक रूप से पूरी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है।
9. बाजार असफलता के कारण समष्टि आर्थिक चर जैसे प्रमुख संकेतकों का आकलन और परिकलन कठिन और दोषपूर्ण हो जाता है, जिससे महत्वपूर्ण आर्थिक नीतियों, जैसे राजकोषीय और वित्तीय नीतियों के क्रियान्वयन में बाधाएं उत्पन्न होती हैं।
10. बाजार असफलता के कारण सार्वजनिक संसाधनों के दोहन से संबंधित सरकारी नीतियों के क्रियान्वयन में अक्सर समस्याएं उत्पन्न होती हैं, जिससे नीलामी और निजीकरण की प्रक्रिया में अक्षमता, अपारदर्शिता, और भ्रष्टाचार जैसी समस्याएं सामने आती हैं।

11. बाजार की असफलता के कारण सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं की निरंतर आपूर्ति, उत्पादन, और विनिमय में खामियां उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे उपभोक्ताओं को असंतोषजनक सेवाएं मिलती हैं और उनकी संतुष्टि और कल्याण की पूर्ति नहीं हो पाती। यह स्थिति विशेष रूप से विकासशील देशों में सड़क, विद्युत, रेल परिवहन जैसी सार्वजनिक सेवाओं के क्षेत्र में देखी जा सकती है।

12. बाजार असफलता का सबसे गंभीर प्रभाव सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, प्रबंधन, और वितरण पर पड़ता है। बाजार और कीमत तंत्र के असक्षम होने के कारण, सरकार को इन क्षेत्रों में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करना पड़ता है।

13. बाजार की असफलता के कारण वित्तीय, बीमा, बैंकिंग, और पूंजी बाजारों में संकट की स्थिति उत्पन्न होती है।

14. बाजार असफलता का प्रभाव आर्थिक नियमों, अवधारणाओं, और सिद्धांतों के क्रियान्वयन पर भी पड़ता है। सामान्यतः आर्थिक नियम इस धारणा पर आधारित होते हैं कि बाजार मुक्त और पूर्ण क्षमता के साथ सक्रिय हैं।

15. निःशुल्क सवार समस्या)Free Rider Problem) एक ऐसी स्थिति है जो बाजार असफलता के कारण उत्पन्न होती है, जिसमें लोग सार्वजनिक वस्तुओं और संपदाओं, जैसे पर्यावरण, के संरक्षण के लाभ में भागीदारी तो करना चाहते हैं, लेकिन उनके संरक्षण और प्रबंधन के लिए आवश्यक योगदान देने से बचते हैं।

3.7 बाजार असफलता के कारण (Reasons of Market Failure)

बाजार असफलता हेतु अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं जोकि बाजार तथा वस्तु की प्रकृति पर निर्भर करते है । बाजार असफलता की अवधारणा का प्रतिपादन हेनरी सिजविक द्वारा किया गया है एवं समय के साथ अर्थशास्त्रियों ने इस अवधारणा का व्यापक विकास किया है । बाजार असफलता के कारणों का विश्लेषण निम्न है-

3.7.1 बाजार की प्रकृति -एकाधिकारी अधिक लाभ कमाने की लालसा में अक्सर अपनी एकाधिकार शक्ति का उपयोग करते हुए उत्पादन को सीमांत सामाजिक लाभ और सीमांत सामाजिक लागत के संतुलन द्वारा निर्धारित बिंदु से कम स्तर पर नियंत्रित कर देता है। यह स्थिति तब भी उत्पन्न हो सकती है जब एकाधिकारी अपनी शक्ति का उपयोग करके नए प्रतिस्पर्धियों के बाजार में प्रवेश पर रोक लगा देता है। इस प्रकार की एकाधिकार बाजार व्यवस्था में उत्पादन पेरेटो इष्टतम के अनुसार नहीं हो पाता।

एकाधिकार के अलावा, निम्नलिखित बाजार स्थितियों में भी बाजार असफलता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है:

- एकाधिकारिकी और द्वैध एकाधिकार की बाजार स्थितियों में भी बाजार असफलता की संभावना हो सकती है।

- अपूर्ण और अधूरे बाजार की स्थिति में, बाजार पर्याप्त मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने में असमर्थ होता है।

- अस्थिर बाजार स्थितियों, जैसे विदेशी विनिमय बाजार, में भी संतुलित साम्यावस्था स्थापित नहीं हो पाती, जिससे बाजार असफलता की संभावना बनी रहती है।

3.7.2 वस्तु की प्रकृति -बाजार की असफलता का एक प्रमुख कारण वस्तुओं और सेवाओं की प्रकृति पर भी निर्भर करता है। यदि उत्पादित वस्तुएं और सेवाएं सार्वजनिक या सामान्य वस्तुओं की श्रेणी में आती हैं, तो ऐसे में बाजार के नियम इन वस्तुओं की कीमत निर्धारण और वितरण में विफल और अक्षम हो जाते हैं। सार्वजनिक वस्तुएं उन विशिष्ट वस्तुओं को संदर्भित करती हैं जो उपभोग में गैरप्रतिस्पर्धी होत-ी हैं। इन वस्तुओं और सेवाओं का उपयोग करके समाज के सभी सदस्यों को समान लाभ प्राप्त होता है, और किसी भी व्यक्ति को इनसे उत्पन्न लाभों के उपयोग से वंचित नहीं किया जा सकता है।

सामान्यतः बाजार में क्रयउपभोक्ता को अलग किया जा सकता है विक्रय की प्रक्रियाओं से-, लेकिन सार्वजनिक वस्तुओं के उपभोग से उपभोक्ता को अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए, सार्वजनिक वस्तुओं की निम्नलिखित विशेषताओं के कारण बाजार इनकी व्यवस्था में विफल रहता है:

- **लाभ की अविभाज्यता:** सार्वजनिक वस्तुओं से उत्पन्न लाभ को विभाजित नहीं किया जा सकता है।

- **उपभोक्ता की अप्रथकता:** सार्वजनिक वस्तुओं के लाभों से उपभोक्ता को अलग नहीं किया जा सकता है।

- **गैर:प्रतिस्पर्धी उपभोग-** जब एक उपभोक्ता सार्वजनिक वस्तु का उपभोग करता है, तो यह दूसरे व्यक्ति के उपभोग पर कोई प्रभाव नहीं डालता।

इन सभी विशेषताओं को एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है, जैसे कि सुरक्षा पर किए गए व्यय से सभी व्यक्तियों को लाभ होता है। लेकिन इस प्रकार के लाभ को न तो विभाजित किया जा सकता है और न ही किसी को इससे वंचित किया जा सकता है। साथ ही, किसी व्यक्ति के सुरक्षा लाभ उठाने का दूसरे के लाभ पर कोई असर नहीं पड़ता। इन सभी कारणों से, सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में बाजार असफल रहता है।

3.7.3 विनिमय की प्रकृति एवं बाह्यता –बाजार असफलता में विनिमय प्रणाली की खामियाँ भी एक महत्वपूर्ण कारक होती हैं। जब बाजार में सूचनाओं की कमी या असमितता होती है, तो विनिमय प्रक्रिया में खामियाँ उत्पन्न होती हैं। इन खामियों और विखराव के कारण, कीमत तंत्र सामाजिक लाभ और लागत को सही ढंग से समाहित नहीं कर पाता। इस प्रक्रिया को बाहरीता या बाह्य प्रभाव)Externality) कहा जाता है।

जब वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से लेकर वितरण तक की प्रक्रिया में बाहरी प्रभाव उत्पन्न होते हैं, तो इसका असर तीसरे पक्ष पर पड़ता है, जिसे न तो लाभ होता है और न ही वह इसके लिए जिम्मेदार होता है। उदाहरण के

तौर पर, यदि सीमेंट के उत्पादन में पर्यावरण और समाज को होने वाले नुकसान का कीमत तंत्र में समावेश नहीं होता है, तो यह बाहरीता का उदाहरण होगा। बाहरी प्रभाव दो प्रकार के होते हैं:

- धनात्मक बाहरीताइससे समाज को लाभ होता है। :
- ऋणात्मक बाहरीताइससे समाज को हानि उठानी पड़ती है। :

बाहरी प्रभावों के कारण साम्यावस्था इष्टतम रूप से प्राप्त नहीं हो पाती, जिससे आर्थिक अक्षमता पैदा होती है। सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की प्रक्रिया में भी बाहरी प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं, जिसके कारण बाजार व्यवस्था और कीमत तंत्र सही तरीके से काम नहीं कर पाते।

3.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लोक वित्त की अवधारणा पर लेख लिखे।
2. लोक वित्त की अवधारणा के महत्व क्या है ?
3. बाजार असफलता के क्या कारण है ?
4. बाजार असफलता की दशा में कीमत तंत्र किस प्रकार से कार्य करता है?
5. परेटो इष्टतम् की दृष्टि से बाजार असफलता के परिणाम् किस प्रकार के होते हैं?
6. मसग्रेव के अनुसार बजट के अनुकूलतम् होने के लिए, सीमांत उपयोगिता तथा सीमांत अनुपयोगिता के मध्य क्या सम्बन्ध होता है?

3.9 सारांश (Summary)

लोकवित्त की अवधारणा विकास एक दीर्घकालिक प्रक्रिया रही है इसके विकास में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय कारकों का योगदान रहा है। यद्यपि आरम्भिक चरणों में लोकवित्त की अवधारणा का महत्व एवं क्षेत्र परामपरागत अर्थशास्त्रियों द्वारा सीमित ही रखा गया था परन्तु कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की स्थापना हेतु तथा आधुनिक विकासात्मक आवश्यकताओं को देखते हुए लोकवित्त का महत्व अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में मुखर हो चला है। लोकवित्त की अवधारणाओं का सैद्धान्तिक महत्व होने के साथसाथ व्यवहारिक - रूप से भी महत्वपूर्ण है। इन अवधारणाओं के माध्यम से जिन सिद्धान्तों, नियमों एवं परिकल्पनाओं का विकास हुआ है वह राज्य की बजट तथा राजकोषीय नीतियों के निर्माण तथा क्रियान्वयन हेतु महत्वपूर्ण दिशा निर्देश का कार्य करता है।

बाजार असफलता के कारण महत्वपूर्ण आर्थिक क्रियाओं तथा उनके वांछित सामाजिक परिणामों की प्राप्ति में बाधा आती है। सार्वजनिक सम्पदा का अतिदोहन पर्यावरण प्रदूषण एवं वित्तीय संकट आदि बाजार असफलता का ही परिणाम है बाजार असफलता के कारकों को दूर कर सामाजिक कल्याण हेतु आर्थिक संतुलन स्थापित करने में लोकवित्त की नीतियाँ एवं अवधारणायें कारगर हो सकती हैं।

3.10 शब्दावली (Glossary)

- **बेल आउट प्रोग्राम** – अर्थव्यवस्था के किसी क्षेत्र को आर्थिक तथा वित्तीय संकट से उबारने हेतु एक विशिश्ट कार्यक्रम लागू किया जाता है इसके कर राहत, राजकीय सहायता आदि को शामिल किया जाता है।
- **नैतिक खतरा** – यह एक ऐसी समस्या है जो कि अक्सर के कारण वित्तीय क्षेत्रों में अधिक देखी जाती है इसके अंतर्गत कोई व्यक्ति या संस्था विभिन्न जोखिमों के प्रति बीमा तथा सरकार से गारंटीकृत होने के कारण अविवेकपूर्ण एवं गैर जिम्मेदार व्यवहार तथा नीतियों को क्रियान्वित करता है।
- **पेरेटो इष्टतम्** – यह सामाजिक कल्याण की वह इष्टतम् दशा है जिसमें किसी एक व्यक्ति का कल्याण में वृद्धि दूसरे व्यक्ति के कल्याण में कमी करने के पश्चात् ही की जा सकती है।
- **बाह्यतायें या बहिर्भावितायें** – बाह्यतायें या बहिर्भावितायें किसी व्यक्ति या संस्था के कार्यों से तीसरे पक्ष पर पड़ने वाला प्रभाव है जिसका उस गतिविधि से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है।
- **समष्टि आर्थिक चर -** यह किसी अर्थव्यवस्था की परिपक्वता ज्ञात करने के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण तथा समग्र अर्थव्यवस्था हेतु चर होते हैं। इसके अंतर्गत सकल घरेलु उत्पाद, राष्ट्रीय बचत एवं निवेश दर, राजकोषीय एवं चालू खाते का घाटा आदि प्रमुख है।
- **निःशुल्क सवार समस्या** – निजी व्यक्ति तथा संस्था का वह व्यवहार है जोकि सार्वजनिक वस्तु तथा सेवाओं के लाभ में हिस्सेदारी चाहता है परन्तु लागत में भागीदारी नहीं करता है।
- **द्वैध एकाधिकार** – यह बाजार की ऐसी स्थिति होती है जहाँ एक ही क्रेता एवं एक ही विक्रेता होता है।
- **घाटे का बजट** – ऐसा बजट जिसमें आय से अधिक व्यय होता है तो ऐसा सरकार हेतु घाटे का बजट कहलाता है जिसकी पूर्ति सरकारें बाजार से उधार लेकर एवं नयी मुद्रा को जारी करके पूरा करती हैं।
- **उपकर -** सामान्य करों के विपरित उपकर किसी विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आरोपित किया जाता हैं।

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- सिंघई, जी. सी., मिश्रा, जे. पी., "अर्थशास्त्र' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स (2012), आगरा।

- त्यागी, बी. पी., "लोकवित्त" जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी (2004),मेरठ।
- Basu Kaushik. The Oxford companion to Economics in India,Oxford University press (2007), New Delhi.
- Ahuja, H. L., Advanced Economics Theory Microeconomic Analysis, S. Chand & Company Ltd. (2004), New Delhi.

3.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- भाटिया एच०एल० (2006), लोकवित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि०,जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे०सी० (2005), राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे०सी० (1997), राजस्व (Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, हास्पीटल रोड,आगरा।
- डॉलोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स : मिश्र .पी.जे ., वाराणसी।

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. बाजार असफलता को परिभाषित करते हुए इसके कारणों एवं परिणामों पर टिप्पणी कीजिए।
2. बाजार असफलता के कारणों पर चर्चा करते हुए इसके निवारण हेतु नीतियों का वर्णन कीजिए।
3. लोक वित्त की अवधारणा एवम महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई -4 निजी वस्तु, लोक वस्तु और मेरिट वस्तु एवं सिद्धान्त (Private Goods, Public Goods and Merit Goods and theories)

4.1 प्रस्तावना(Introduction)

4.2 उद्देश्य(Objectives)

4.3 वस्तुओं की प्रकृति एवं निर्धारण सिद्धान्त(Nature of goods and the theory of determination)

4.4 निजी वस्तुओं का अर्थ तथा सिद्धान्त(Meaning and significance of Private Goods)

4.5 सार्वजनिक वस्तुओं का अर्थ,तात्पर्य एवं सिद्धान्त (Meaning, Significance and Principles of Public Goods)

4.6 मेरिट वस्तुओं की अवधारणा(The concept of Merit goods)

4.7 निजी, सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन(Comparative study of Private, Public and Merit goods)

4.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

4.9 सारांश(Summary)

4.10 शब्दावली(Glossary)

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

4.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री/(Useful / Helpful text)

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

4.1 प्रस्तावना(Introduction)

लोक वित्त की अवधारणाएँ समय के साथ साथ-परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रही हैं। वैश्वीकरण और उदारीकरण के प्रभाव ने राज्य की भूमिकाओं को नए दृष्टिकोण से परिभाषित किया है, जिसके परिणामस्वरूप लोक वित्त की अवधारणाएँ भी प्रभावित हुई हैं। जहाँ निजी वस्तुओं का मूल्य निर्धारण और वितरण बाज़ार द्वारा सुचारू रूप से किया जाता है, वहीं लोक वस्तुएँ और मेरिट वस्तुओं के मामले में बाज़ार अक्सर असफल हो जाता है। इस कमी को पूरा करने के लिए लोक वित्त की नीतियाँ और अवधारणाएँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं। वर्तमान समय में, लोक वित्त की अवधारणाएँ पहले से अधिक व्यापक और प्रभावशाली हो गई हैं। हमने पहले की इकाई में लोक वित्त की अवधारणा और बाज़ार विफलता के संदर्भ में गहन अध्ययन किया है। लोक वित्त की नीतियों का मुख्य उद्देश्य समाज कल्याण को बढ़ावा देना है, जिसके लिए समाज में बुनियादी आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता और उनकी व्यापक पहुँच सुनिश्चित करना आवश्यक है। इसके लिए सड़क, बिजली, पेयजल, स्वच्छता, शिक्षा, और जनस्वास्थ्य जैसे सार्वजनिक क्षेत्रों का विकास करना अनिवार्य है।सरकार इन वस्तुओं और सेवाओं के वितरण और उत्पादन के लिए नीतियां बनाती है जो निजी क्षेत्र की नीतियों से भिन्न होती हैं। ये नीतियां इस बात को सुनिश्चित करती हैं कि समाज के सभी वर्गों को इन आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का लाभ मिले। उदाहरण के लिए, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मेरिट वस्तुओं का प्रावधान सरकार द्वारा किया जाता है क्योंकि इनका सामाजिक लाभ व्यक्तिगत लाभ से अधिक होता है। लोक वित्त की नीतियों का मुख्य उद्देश्य समाज कल्याण में निरंतर वृद्धि करना है, जिसमें बुनियादी आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना और उन्हें जनसाधारण तक पहुंचाना शामिल है। इसके लिए सरकार को सड़क, विद्युत, पेयजल, साफसफाई-, शिक्षा, और जनस्वास्थ्य जैसे सार्वजनिक महत्व के क्षेत्रों में निवेश करना पड़ता है। सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं का प्रावधान करना अक्सर बाजार और निजी क्षेत्र के लिए चुनौतीपूर्ण होता है, क्योंकि ये क्षेत्र लाभ कमाने पर केंद्रित होते हैं। इसलिए, इन वस्तुओं और सेवाओं के लिए सरकार को अलग सिद्धांत और नीतियां बनानी पड़ती हैं जो निजी वस्तुओं के लिए लागू होने वाले सिद्धांतों से अलग होती हैं।

इस प्रकार, लोक वित्त की नीतियां और अवधारणाएं समय और परिस्थितियों के अनुसार विकसित होती रहती हैं, और उनका मुख्य उद्देश्य समाज के कल्याण को बढ़ाना होता है। वर्तमान इकाई में, हम निजी, सार्वजनिक, और मेरिट वस्तुओं के संदर्भ में इन अवधारणाओं का व्यापक अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के निम्न उद्देश्य हैं -

- सार्वजनिक मेरिट एवं निजी वस्तुओं के अर्थ तथा तात्पर्य
- निजी वस्तुओं तथा सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं की अवधारणा में अन्तर
- सार्वजनिक, मेरिट एवं निजी वस्तुओं के सन्दर्भ में सिद्धान्त तथा इनकी
- बाजार तंत्र किस प्रकार से सार्वजनिक, निजी एवं मेरिट वस्तुओं के सन्दर्भ में कार्य करते हैं ?

4.3 वस्तुओं की प्रकृति एवं निर्धारण सिद्धान्त (Nature of goods and the theory of determination)

अधिकांश वस्तुएं और सेवाएं पूर्णतः निजी या सार्वजनिक नहीं होतीं, बल्कि उनमें दोनों तत्वों का मिश्रण होता है। वस्तुओं की प्रकृति उत्पादन, उपभोग और बाजार विनिमय के सिद्धांतों से निर्धारित होती है।

1. प्रतियोगी और गैर प्रतियोगी उपभोग:

- **प्रतियोगी उपभोग:** एक व्यक्ति द्वारा उपयोग से दूसरों के लिए वस्तु की उपलब्धता कम हो जाती है।
- **गैर प्रतियोगी उपभोग:** एक व्यक्ति के उपयोग से दूसरों की उपलब्धता पर असर नहीं पड़ता।

2. वर्जन सिद्धांत और उपभोक्ता की पृथकता:

- बाजार में वस्तु का उपभोग वही करता है, जो मूल्य चुकाने में सक्षम और इच्छुक हो; अन्य व्यक्ति वंचित रहते हैं।

3. प्रकट अधिमान:

- बाजार व्यवस्था में, उच्च अधिमान वाले उपभोक्ता अधिक कीमत चुकाते हैं, और उत्पादन मांगआपूर्ति - के आधार पर होता है।

निजी वस्तुएं प्रतियोगी और वर्जन सिद्धांतों के अनुसार काम करती हैं, जबकि सार्वजनिक वस्तुएं गैर प्रतियोगी होती हैं और इन पर उपभोक्ता की पृथकता और वर्जन का सिद्धांत लागू नहीं होता। तकनीकी प्रगति से वस्तुओं की प्रकृति में बदलाव आता है, जैसे कि टेलीविजन प्रसारण का उदाहरण।

सार्वजनिक वस्तुएं केवल सरकारी क्षेत्र द्वारा ही नहीं, बल्कि प्राकृतिक रूप से या निजी संस्थाओं द्वारा भी उत्पन्न की जा सकती हैं। ज्ञान, आविष्कार, पर्यावरण आदि को वैश्विक सार्वजनिक वस्तुएं माना जा सकता है। सरकार कॉपीराइट और पेटेंट के जरिए गैर प्रतियोगी वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करती है। अधिकांश वस्तुओं में सार्वजनिक और निजी गुणों का मिश्रण होता है।

सारणी 4 अ

उपभोग	वर्जन संम्भव	वर्जन सम्भव नहीं
प्रतियोगी	निजी वस्तु कार –, कपड़ें, रोटी	साझा संसाधन लकड़ी -, कोयला, मत्स्य भंडार
गैर प्रतियोगी	क्लब वस्तु -सिनेमा, पार्क, खेल मैदान, सैटेलाइट टी० वी०	सार्वजनिक वस्तु रक्षा –, प्रकाश स्तम्भ, निशुल्क टी० वी०प्रसारण

उपरोक्त सारणी से वस्तुओं की प्रकृति एवं प्रकारो को भली भॉति समझा जा सकता है। जहाँ पर सार्वजनिक तथा निजी वस्तुयें वर्जन तथा प्रतियोगी सिद्धान्त के अनुसार विपरीत छोरों पर हैं।

साझा संसाधनों जैसे लकड़ी, कोयला, मत्स्य भंडार, तेल, गैस जैसे प्राकृतिक संसाधनों सार्वजनिक वस्तु की तरह सामान्य उपयोग के है तथा इनमें वर्जन सिद्धान्त भी लागू नहीं होता हैं। उदाहरण के तौर पर समुद्र से मछलियों के उत्पादन से किसी को वंचित नहीं किया जा सकता है परन्तु इनका उपयोग प्रतियोगी होता है।

क्लब वस्तुयें भी सार्वजनिक वस्तुओं की भॉति सामान्य हितों की पूर्ति करता है तथा यह गैर प्रतियोगी होती है। परन्तु इनमें वर्जन का सिद्धान्त लागूनहीं होता है। उदाहरण के तौर पर सैटेलाईट टी0 वी0 पर प्रसारण का उपभोग भुगतान के बाद ही उढाया जा सकता है। कानून व्यवस्था, शिक्षा, पुस्तकालय आदि को सामान्यतया सार्वजनिक वस्तु समझा जाता है परन्तु तकनीकी रूप से यह अर्द्ध सार्वजनिक वस्तुयें है जिनमें सार्वजनिक वस्तुओं की काफी गुण है।

4.4 निजी वस्तुओं का अर्थ तथा सिद्धान्त (Meaning and significance of Private Goods)

निजी वस्तुएं वे होती हैं जिनका उत्पादन और उपभोग निजी तौर पर किया जाता है, और इनके लिए भुगतान आवश्यक होता है। निजी वस्तुओं की विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. **प्रतियोगी उपभोग:** एक व्यक्ति द्वारा उपभोग से अन्य लोगों के लिए वस्तु की उपलब्धता कम हो जाती है। उदाहरण के लिए, एक फ्लैट की खरीद से अन्य लोगों के लिए फ्लैट की उपलब्धता घट जाती है।
2. **वर्जन और उपभोक्ता की पृथकता:** केवल वही व्यक्ति निजी वस्तुओं का उपभोग कर सकते हैं, जिन्होंने उनका बाजार मूल्य चुकाया हो। भुगतान न करने वाले व्यक्ति उपभोग से वंचित रहते हैं।

3. **अधिमान और विभाज्यता:** निजी वस्तुओं का उपभोग व्यक्तिगत हितों तक सीमित होता है, और इनसे उत्पन्न लाभ भी केवल उपभोक्ता तक सीमित रहते हैं।
4. **बाजार तंत्र:** निजी वस्तुओं का उत्पादन और वितरण बाजार तंत्र के माध्यम से होता है, जो सामान्यतः निपुणता से कार्य करता है। हालाँकि, भारत जैसे विकासशील देशों में, सार्वजनिक क्षेत्र भी कुछ निजी वस्तुओं का उत्पादन करता है। लेकिन वैश्वीकरण के बाद, निजी क्षेत्र और बाजार की भूमिका बढ़ गई है।
5. **मांग वक्र:** निजी वस्तुओं की कुल मांग, विभिन्न उपभोक्ताओं की मांगों का क्षैतिज योग होती है।

निजी वस्तुओं की मॉग एक दिये गये मूल्य पर मॉग वक्रों के क्षैतिज योग द्वारा प्राप्त होती है यानि कुल बाजार मॉग विभिन्न उपभोक्ताओं की मांगों का योग होती है। चित्र संख्या '4अ' में तीन उपभोक्ताओं A, B तथा C के मॉग वक्र क्रमशः DA, DB तथा DC एवं OP कीमत पर उनके उपभोग क्रमशः OM, MN एवं NR हैं।

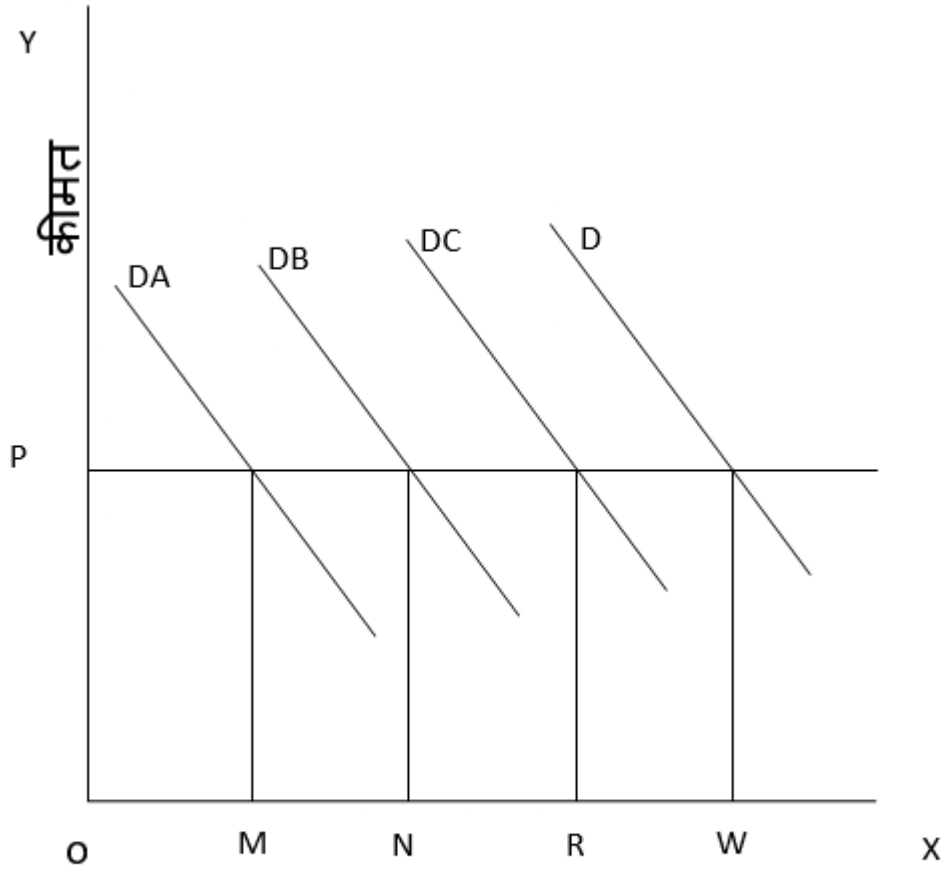

चित्र संख्या 4 -अ

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि कुल मॉग वक्र तीनों मॉग वक्रों के क्षैतिज योग से प्राप्त हुआ है। कुल वस्तु की मात्रा =A का उपभोग +B का उपभोग +C का उपभोग

$$OW = OM + MN + NR$$

अतः चित्र '4अ' से स्पष्ट है कि यदि A का उपभोग में वृद्धि होती है तो OW को स्थिर बनाने हेतु दूसरे उपभोक्ताओं के उपभोग में कमी आयेगी। इससे यह प्रमाणित होता है कि निजी वस्तुओं का उपभोग प्रतियोगी होता है।

कुल मिलाकर मुख्यतया निजी वस्तुयें वह होती है जिनका उपभोग प्रतियोगी होता है एवं जिनमें वर्जन का सिद्धान्त लागू हो सकता है।

4.5 सार्वजनिक वस्तुओं का अर्थ,तात्पर्य एवं सिद्धान्त (Meaning, Significance and Principles of Public Goods)

सार्वजनिक वस्तुयें वह होती हैं जिनका उत्पादन करने से वाह्य लाभ तथा बचतों का सृजन होता है तथा इनका उपयोग सामूहिक रूप से किया जाता है। यह वस्तुयें उपभोग में गैर प्रतियोगी होती है तथा इन वस्तुओं के सन्दर्भ में उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्णन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। सार्वजनिक वस्तुओं का आबंटन सामान्यतया राजकोषीय एवं बजट नीतियों के माध्यम से किया जाता है।

सैमुल्शन द्वारा सार्वजनिक वस्तुओं की अवधारणा का प्रतिपादन किया है। उनके द्वारा में प्रकाशित 1959 लेख में सार्वजनिक वस्तुओं की दो प्रमुख विशेषताय "य की अवधारणा के शुद्ध सिद्धान्तलोक व्य"ेंं उजागर की गयी, यह विशेषतायें उपयोग में गैर प्रतियोगी एवं गैर वर्जनीय होता है। जहाँ पर यह दोनों विशेषतायें पूर्ण होती हैं ऐसे वस्तु को शुद्ध सार्वजनिक वस्तु कहते हैं। सैमुल्शन द्वारा पुनः सार्वजनिक वस्तुओं को परिभाषित करते हुये इनको सामूहिक उपभोग की वस्त"ुके रूप में निर्धारित किया। "

सार्वजनिक वस्तुओं के सामान्य उदाहरणों में रक्षा, प्रकाश स्तम्भ, स्ट्रीट लाईटिंग, पुल, पार्क, स्वच्छ वायु, पर्यावरणीय वस्तु एवं सूचना वस्तु आती है। सूचना वस्तु के अन्तर्गत अविष्कार एवं नवप्रर्वतन, तकनीकी विकास, लेखन आदि आते है। सूचना वस्तु से लाभ प्राप्ति हेतु कोई भी भुगतान नहीं देना चाहता है क्योंकि इस पर वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है तथा इसकी पुनरोत्पादन की लागत लगभग शून्य होती है।

4.5.1 सार्वजनिक वस्तुओं पर आरोपित सिद्धान्त - सार्वजनिक वस्तुओं की परिभाषा निर्धारित करने में मुख्यतया जो सिद्धान्त आरोपित होते है उनका विश्लेषण निम्नवत् है -

गैर प्रतियोगी उपभोग - सार्वजनिक वस्तुओं के निर्धारण में उपभोग का गैर प्रतियोगी होना मुख्य लक्षण है। इसके अनुसार यदि सार्वजनिक वस्तु का उपभोग किसी एक व्यक्ति द्वारा किया जाता है तो इसका प्रभाव अन्य व्यक्ति के लाभों पर नहीं पड़ता है। उदाहरण के तौर पर सार्वजनिक पुल या पार्क किसी व्यक्ति के जाने न जाने से अन्य व्यक्तियों हेतु पुल या पार्क की सुविधा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्जन सिद्धान्त - बाजार में क्रय विक्रय की प्रक्रिया द्वारा उपभोक्ता को पृथक किया जा सकता है । सार्वजनिक वस्तुओं हेतु उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। एक व्यक्ति को सार्वजनिक वस्तु की आपूर्ति होते ही इसके लाभ तुरन्त एवं एक साथ समाज के सभी व्याक्तियों तक पहुंच जाते है। सार्वजनिक वस्तु के लाभों से किसी को वचिंत नहीं किया जा सकता है चाहे उसने उस वस्तु का भुगतान किया या नहीं किया हो। जैसे पर्यावरण एवं प्रदूषण सुधार कार्यक्रमों का लाभ समाज के सभी व्यक्तियों तक अपने आप पहुँच जाते है तथा किसी को भी इसके लाभों से वंचित नहीं किया जा सकता है।

बाह्य बचतों का निर्माण – सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन से समाज हेतु बाह्य बचतों का निर्माण होता है। बाह्य बचते समाज हेतु लाभों को उत्पन्न करती हैं। बाह्य बचतों के प्रभाव से सामाजिक लागतो एवं निजी लागतों में अन्तर आ जाता है। इस दशा में सीमांत सामाजिक लागत सीमांत निजी लागत से कम हो जाती है। बाह्य बचतें उत्पादन की प्रक्रिया में धनात्मक बहिर्भाविता के कारण से उत्पन्न होती सामाजिक लागतों को निम्न सूत्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है -

सामाजिक लागत बाह्य बचत – निजी लागत =

बाह्य बचतों का निर्माण जितना अधिक होगा सामाजिक लागत उतनी कम तथा सामजिक लाभ उतना ही अधिक हो जायेगा। बहिर्भाविता के कारण से बाह्य बचतों के प्रभावों के कारण से लागत तथा लाभ का ऑकलन कीमत तंत्र के माध्यम से नहीं हो पाता है जिससे बाजार तंत्र सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में हो जाता है।

- **प्रकट अधिमान** – उपभोक्ता की स्वतः अधिमान की अभिव्यक्ति पर बाजार में वस्तु की मॉग एवं कीमत निर्धारित होती है। सार्वजनिक वस्तुओं के सन्दर्भ में यह अधिमान की अभिव्यक्ति स्वतः नहीं होती है यह अभिव्यक्ति समाज द्वारा निर्धारित की जाती है।

- **अविभाज्य लाभ -** सार्वजनिक वस्तुओं द्वारा उत्पन्न लाभ सार्वजनिक एवं सामूहिक होते है इन लाभों का विभाजन तथा प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में ऑकलन नहीं किया जा सकता है। उदाहरण हेतु समाज में प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा में व्यय का लाभ मिलता हैं परन्तु यह निर्धारित करना असंभव है कि किसी व्यक्ति को सुरक्षा व्यवस्था का आधा लाभ मिले और किसी को तिहाई लाभ मिले । अतः लाभ के अविभाजित होने पर कीमत निर्धारण कर पाना संभव नहीं हो पाता है।

- **निशुल्क सवार समस्या** – सार्वजनिक वस्तुओं के लाभों से किसी भी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता है चाहे वह उसके लाभों के लिये भुगतान करें या न करें। अतः ऐसी दशा में सार्वजनिक वस्तुओ का यह गुण उपभोक्ताओं हेतु सार्वजनिक वस्तुओं के उनमुक्त विदोहन हेतु प्रेरित करता है। यानि प्रत्येक व्यक्ति लाभ में हिस्सेदारी तो उठने हेतु प्रेरित होता है परन्तु इसके लिये वह त्याग में भागीदारी नहीं करता है। उदाहरण के तौर पर पर्यावरण प्रदूषण पर नियन्त्रण से सभी को स्वतः लाभ प्राप्त हो जाते है।

अतः निशुल्क सवार प्रवृत्ति व्यक्ति को प्रेरित करती है कि वह सार्वजनिक वस्तु के लिये भुगतान में हिस्सेदारी न करें। इसी समस्या का परिणाम सार्वजनिक एवं प्राकृतिक संसाधनों के अति दोहन तथा प्रदूषण के रूप में सामने आ रहा है। जैसे भूमिगत जल का लाभ हर व्यक्ति को बगैर इसके संरक्षण में प्रयास किये बिना उपलब्ध है जिसके कारण इसका अति एवं कुदोहन हो रहा है।

बाजार असफलता – सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में कीमत तंत्र निपुणता से कार्य नहीं कर पाता है जिसके कारण बाजार सार्वजनिक वस्तुओं का समुचित तौर पर आंबटन नहीं कर पाता है। बाजार असफलता हेतु सार्वजनिक वस्तुओं की निम्न विशेषतायें उत्तरदायी होती है -

- ✓ सार्वजनिक वस्तुओं का गैर प्रतियोगी तथा इसके लाभों का अविभाज्य होना।
- ✓ बहिर्भाविता या बाह्य बचतों के कारण सीमांत सामाजिक लागत एवं सीमांत निजी लागत में अतंर होना।
- ✓ बाजार में उपभोक्ता के अधिमान की स्वतः अभिव्यक्ति न होना ।
- ✓ उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्णन के सिद्धान्त के लागू न हो पाने की दशा में यह होता है कि जो व्यक्ति सार्वजनिक वस्तु हेतु भुगतान नहीं करता है उसे उस वस्तु के लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता है।
- ✓ लम्बीय योग द्वारा सामूहिक मॉग वक्र का निर्धारण सार्वजनिक वस्तु उपभोग एवं लाभ –

हेतु प्रत्येक व्यक्ति के लिये समान रूप से उपलब्ध रहती है। अतः यदि दो उपभोक्ता A तथा B किसी सार्वजनिक वस्तु का उपभोग करते है तो

सार्वजनिक वस्तु की मात्रा =A का उपभोग =B का उपभोग चित्र संख्या 4ब में A तथा B उपभोक्ता हेतु सार्वजनिक वस्तुओं के मॉग वक्र क्रमशः Dada एवं Dodb हैं। दोनों उपभोक्ता के मांग वक्र उनके सीमांत लाभ वक्र के माध्यम से निर्धारित किये गये है। दोनों उपभोक्ता सार्वजनिक वस्तु से प्राप्त सीमांत लाभ के अनुरूप भुगतान करना चाहते है।

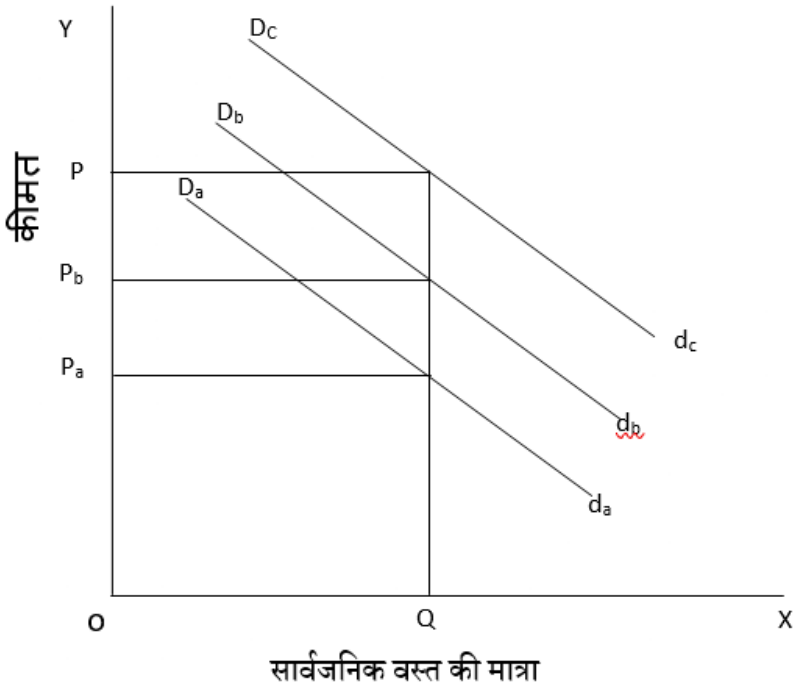

चित्र संख्या 4 -ब

उपरोक्त चित्र में जहाँ OQ मात्रा हेतु A द्वारा OPa का भुगतान किया जाता है व B द्वारा OP: का भुगतान किया जाता है। यानि कुल OQ मात्रा हेतु दोनों के द्वारा OP = OPa + OPb, का भुगतान किया जाता है जिसे दोनों के लम्बीय अथवा उर्ध्वाधर योग द्वारा ज्ञात किया गया है।

4.5.2 सार्वजनिक वस्तुओं की विशेषतायें - सार्वजनिक वस्तुओं हेतु उपरोक्त वर्णित नियम तथा सिद्धान्तों से सार्वजनिक वस्तुओं की निम्न विशेषतायें उभरकर सामने आती है

- सार्वजनिक वस्तुओं का प्रयोग गैर प्रतियोगी होता है।
- सार्वजनिक वस्तुओं पर वर्णन एवं उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त लागूनहीं होता है।
- सार्वजनिक वस्तुओं के अधिमानों की अभिव्यक्ति स्वतः न होकर समाज द्वारा निर्धारित की जाती है।
- सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग एवं लाभ हेतु समाज में सभी के लिये समान मात्रा में उपलब्ध रहती
- है।

- सार्वजनिक वस्तुओं का उपभोग सामूहिक तौर पर किया जाता है तथा वस्तुओं की आपूर्ति से
- सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है।
- सार्वजनिक वस्तुओ द्वारा वाह्य बचतों के माध्यम से समाज हेतु लाभ निर्मित होते है। सार्वजनिक वस्तुओं द्वारा उत्पन्न लाभ अविभाज्य होते है।
- सार्वजनिक वस्तुओं के सम्बन्ध में बाजार व्यवस्था तथा कीमत तंत्र असफल रहते है।
- सार्वजनिक वस्तुओं की मॉग विभन्न व्यक्तिगत उपभोक्ताओं की मांगों के लम्बीय या उर्ध्वाधर योगसे प्राप्त होती है।
- सार्वजनिक वस्तुओं के लिये सीमांत सामाजिक लागत तथा सीमांत निजी लागत के मध्य अतंर आ जाता है।
- सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था में निशुल्क सवार समस्या के आत्मसात् होने के कारण बाजार एवं किसी तंत्र के माध्यम से सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन परेटो इष्टतम् के अनुकूल नहीं होगा।
- सार्वजनिक वस्तुओं का आबंटन एवं व्यवस्था में सामान्यतया बाजार व्यवस्था असफल रहती है अतः
- इनकी व्यवस्था राजकोषीय एवं बजटीय नीतियों के माध्यम से की जाती है।

4.5.3 सार्वजनिक या सामाजिक वस्तुओं की व्यवस्था (Provision of Public or Social Goods) - सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था का मतलब सार्वजनिक वस्तुओं का उत्पादन या सेवाएं प्रदान करने से नहीं है, बल्कि इन वस्तुओं को चुनने और भुगतान करने की प्रक्रिया से है। किनकिन सार्वजनिक - वस्तुओं को और कितनी मात्रा में समाज को दिया जाए, यह चयन प्रक्रिया का मुद्दा है। बाजार तंत्र सार्वजनिक वस्तुओं के संबंध में उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति में असफल रहता है। कुल मिलाकर, सार्वजनिक वस्तुओं के आबंटन के संबंध में राजकोषीय नीति का उद्देश्य यह है कि सार्वजनिक संसाधनों को विभिन्न सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्थाओं में किस प्रकार से आबंटित किया जाये ताकि समाज को अधिकतम लाभ मिल सके और समाज की कार्यकुशलता में वृद्धि हो सके। सरकार बजट के माध्यम से सुरक्षा, प्रशासन, कानूनव्यवस्था-, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन आदि क्षेत्रों को धन देती है ताकि इसी लक्ष्य को पूरा किया जा सके।

सार्वजनिक वस्तओं की व्यवस्था तथा आबंटनात्मक पहल जटिल है। भारत जैसे विकासशील एवं आय की असमानता वाले देश में इसकी जटिलता तथा चुनौती दोनों ही बढ़ जाते है। सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था तथा आबंटन प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप भी करती है अर्थात सरकार का उत्पादन, विनिमेय वितरण एवं उपभोग आदि गतिविधियों पर सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण रहता है । इसका एक उदाहरण भारत में सार्वजनिक उपभोग

की आवश्यक वस्तुओं हेतु विशेषकर निर्धन वर्गों के लिए सार्वजनिक वितरण व्यवस्था है जिसमें सरकारी संस्थायें कीमत तथा उपभोग की मात्रा आदि को नियन्त्रित रखते हैं। सरकार राजकोषीय नीति में सार्वजनिक वस्तुओं के आंबटन एवं व्यवस्था के लिये अप्रत्यक्ष तौरतरीकों जैसे सब्सिडी-, विशिष्ट कर, उपकर, फीस, लाईसेन्स आदि पर आधारित रणनीति को अपनाती है। यह समस्त रणनीतियाँ सार्वजनिक वस्तुओं की प्रकृति एवं महत्व पर निर्भर करता है। अतः सार्वजनिक वस्तुओं के आंबटन एवं व्यवस्था के लिये निम्न रणनीतियों को अपनाया जा सकता है-

- **बल का प्रयोग -** बाजार असफलता की दशा में सरकारें विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था हेतु कानून के प्रयोग द्वारा अनिवार्य अंशदान हेतु लाभार्थियों को बाध्य कर सकती है।
- **उत्पादन में भागीदारी** – सरकार सार्वजनिक संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सार्वजनिक वस्तु एवं सेवाओं का उत्पादन सुनिश्चित कर सकती है। भारत में नियोजित विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया गया है।
- **करारोपण** – जिन वस्तुओं का प्रयोग पूर्णतया गैर प्रतियोगी है तथा जिन वस्तुओं के लिये उपभोक्ता की पृथकता एवं वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होता है। ऐसी दशा में सरकार सामान्य करों द्वारा होने वाले व्यय की पूर्ति कर सकती हैं। इन करों में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों कर आते है यहाँ पर उल्लेखनीय है कि कर एक प्रकार के अनिवार्य भुगतान है जिसके एवज में करदाता को कोई भी प्रत्यक्ष लाभ नहीं प्राप्त होता है। लेकिन इन करों से प्राप्त धन को राज्य समाज कल्याण हेतु प्रयोग करता है। इस प्रकार की सार्वजनिक वस्तुओं के अन्तर्गत रक्षा व्यवस्था आती है।
- **लाईसेन्स फीस एवं विशिष्ट कर -** जिन वस्तुओं का प्रयोग गैर प्रतियोगी है परन्तु जहाँ पर उपभोक्ताओं को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जा सकता है वहाँ पर सार्वजनिक वस्तुओं की व्यवस्था एवं उन पर होने वाले व्यय के एवज सरकार लाईसेन्स फीस एवं विशिष्ट करों का प्रावधान कर सकती है। जैसे वाहनो पर पथकर –, पार्क में प्रवेश शुल्क, वाहनों पर सड़क कर, जलकर, भवन कर आदि।
- **कोटा प्रशासित कीमतें एवं सब्सिडी -** जिन वस्तुओं का प्रयोग गैर प्रतियोगी होता है परन्तु उनमें उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त लागूहोता है ऐसी वस्तुओं की व्यवस्था सार्वजनिक कल्याण को देखते हुए सरकार आंशिक कीमत या आंशिक शुल्क वसूल करती है। भारत जैसे विकाशील देश में निर्धन वर्ग के कल्याण हेतु सरकार बहुत सी बाजार में उपलब्ध निजी वस्तुओं को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अनुसार वितरित करती है जहाँ पर सरकार कोटा कीमत दोनों पर नियन्त्रण रखती है। कोटा निर्धारित कर सरकार आवश्यक वस्तु जैसे मिट्टी के तेल हेतु गैर प्रतियोगी स्वरूप निर्धारित करती है एवं सब्सिडीकृत कीमतों पर जन साधारण को वितरित करती है।
- **निजीकरण** – ऐसी सार्वजनिक उपयोग की वस्तुयें जोकि प्रतियोगी तो होती है परन्तु जिनके लाभ से जन सामान्य को वंचित नहीं किया जा सकता है यानि जो सार्वजनिक वस्तुओं की भाँति समाज हेतु

समान रूप से उपयोगी होती है इनके अन्तर्गत साझा प्राकृतिक संसाधन जैसे कोयला, तेल, वन, मछलियाँ आदि आती हैं। इन संसाधनों की व्यवस्था हेतु सरकारें प्रतियोगी आधार पर निलामी के माध्यम से लाईसेन्स उपलब्ध करा सकती है। लाईसेन्स फीस सामान्यतया सरकार को उन अवस्थाओं में प्राप्त होती है जबकि सरकारी अधिकारी स्वंय कोई कार्य या सेवा न करके अन्य व्यक्ति को उस कार्य को करने का अधिकार प्रदान करता है। लाईसेन्स प्रक्रिया के माध्यम से सरकार का जन कल्याण तथा पर्यावरणीय हितो को ध्यान में रखकर ऐसे क्षेत्रों का नियमन कर सकती है।

- **शुल्क-फीस** / सार्वजनिक हित की वस्तुयें जो कि सार्वजनिक एवं सामान्य हित की होती है परन्तु जिनके लाभ से भुगतान न करने वालों को वंचित रखा जा सकता है यानि जिन वस्तु तथा सेवाओं में उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त लागू होता है। ऐसी वस्तु तथा सेवाओं की व्यवस्था हेतु सरकार फीस की वसूली कर सकती है। फीस उस भुगतान को कहते हैं जो सरकार द्वारा सार्वजनिक हित में प्रदान की जाने वाली प्रत्येक आवर्ती सेवा की लागत को अदा करने के लिये दिया जाता है।

- **कीमत, किराया एवं क्रास सब्सिडी -** ऐसी वस्तुयें जोकि निजी वस्तुओं के समान प्रतियोगी होती है तथा जिनमें उपभोक्ता की पृथकता का सिद्धान्त भी लागू होता है परन्तु जिनके सार्वजनिक महत्व तथा आर्थिक विकास में योगदान को देखते हुए उनका प्रावधान सरकार द्वारा किया जाता है। उदाहरण हेतु भारत में रेल परिवहन को सरकार जनहित में रेल मंत्रालय के माध्यम से नियमन करता है। आम जनता हेतु रेल परिवहन को सस्ते मूल्य पर सुनिश्चित करने के लिये रेल मंत्रालय ऊँचे माल भाड़े तथा उच्च वर्ग पर मंहगें किराये के माध्यम से रेल यातायात व्यवस्था को सुनिश्चित करता है। इसी प्रकार सरकार सार्वजनिक महत्व की जन उपयोगी वस्तुओं को निर्धन तथा कमजोर वर्गों के लिये बाजार मूल्य से कम पर उपलब्ध कराती है। इसके लिये सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के माध्यम से सरकार प्रत्येक निर्धन व्यक्ति को आवश्यक वस्तुयें जैसे खाद्यान्न आदि सस्तेमूल्यों एवं निश्चित मात्रा में उपलब्ध कराती है।

- **गारण्टी** – बाजार असफलता की दशा में विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था हेतु योगदान करने वालों धन की सुरक्षा एवं उसकी पुर्नवापसी की गारण्टी प्रदान करती है। जिससे से सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था में योगदान करने वाले आश्वस्त हो जाते हैं।

- **कोसानियन समाधान**– रोनाल्ड कोसा ने सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था एवं भुगतान हेतु एक समाधान प्रस्तुत किया जो कि कोसानियन समाधान के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं से लाभ प्राप्त करने वाले समस्त लाभार्थी सार्वजनिक वस्तुओं व्यवस्था एवं भुगतान हेतु एक साझा संसाधनों का एक पूल तैयार करते हैं। जिससे सार्वजनिक वस्तुओं की विनिमेय लागत कम हो जाती है। जैसे हाउसिंग सोसाईटी के सदस्य सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं की व्यवस्था एवं भुगतान हेतु साझा प्रावधान करते हैं।

- **प्रशुल्क एवं किराया-** शुल्क फीस के माध्यम से सार्वजनिक वस्तु की व्यवस्था वहाँ सहज होती है जहाँ वह भुगतान कर्ता को मापनीय लाभ पहुंचाती है। वास्तव में फीस का भूगतान सरकार की ओर से की जाने वाली किसी व्यापारिक सेवा के लिये नहीं, वरन सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रशासनिक एवं न्यायिक सेवाओं हेतु किया जाता है। इन सेवाओं के लिये सरकार शुल्क के साथ-साथ अर्थ दंड का भी प्रावधान कर सकती है। तकनीकी प्रगति के कारण टेलीविजन प्रसारण, मोबाइल फोन सेवा इंटरनेट सेवा आदि ऐसी सार्वजनिक उपयोग की सेवायें है जिन पर उपयोग एवं लाभ के अनुसार प्रशुल्क एवं किराया वसूल किया जा सकता है। उदाहरण के लिये टेलीविजन पर सेट टाप बाक्स एवं डिकोडर के माध्यम से किसी चैनल भुगतान प्राप्त कर लेते हैं।

4.6 मेरिट वस्तुओं की अवधारणा (The concept of Merit goods)

मेरिट वस्तुओं को उत्क्रष्ट या गुण वस्तु भी कहा जाता है। मेरिट वस्तुओं अवधारणा का विकास मसग्रेव द्वारा किया गया है। मसग्रेव के अनुसार मेरिट वस्तु का निर्धारण भुगतान के आधार पर न करके आवश्यकता के आधार पर किया जाता हैं। मेरिट वस्तुओं में ऐसी वस्तुओं को शामिल किया जाता है जिनके उपभोग से समाज की क्षमता, कार्यकुशलता एवं समाज की आधार भूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मेरिट वस्तुओं के अन्तर्गत शिक्षा व स्वास्थ हेतु दी जाने वाली सहायता, स्कूलों में भोजन की व्यवस्था, खाद्यन्न तथा पोषण हेतु सहायता, रोजगार आदि शामिल किये जाते है।

मेरिट वस्तु की व्यवस्था सरकार द्वारा इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु की जाती है कि यदि इन सुविधाओं को पूर्णतः निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जाये तो समाज में अनेक व्यक्ति अपनी क्षमता में आभाव के कारण इन आवश्यक सुविधाओं से वंचित रह जायेगें। मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति समुचित न होने से समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। मेरिट वस्तु प्रतियोगी हो भी सकती हैं और नहीं भी |मेरिट वस्तुओं के अन्तर्गत उन वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रावधान सरकार करती है जिनके बारे में सरकार यह अवधारणा बनाती है कि उनका उपभोग अपेक्षित रूप से नहीं किया जा रहा है तथा समाज के हित इन वस्तु तथा सेवाओं का उपभोग बढाने हेतु इन्हें राजकीय सहायता प्रदान किये जाने की आवश्यकता है। मसग्रेव के अनुसार मेरिट वस्तुयें ऐसी वस्तुयें है जिनकी व्यवस्था सार्वजनिक वस्तु के रूप में की जाती है। परन्तु इनकी व्यवस्था करते समय उपभोक्ताओं के अधिमान को ध्यान में नहीं रखा जाता है। मेरिट वस्तुओं में सार्वजनिक वस्तुओं के समान कुछ गुण तो होते है पर इनमें वर्जन का सिद्धान्त भी लागू होता है।

4.6.1 मेरिट वस्तुओं की आधारभूत अवधारणायें - मेरिट वस्तुओं की महत्पूर्ण अवधारणाओं के विकास में मसग्रेव का मुख्य योगदान है। मेरिट वस्तुओं की महत्वपूर्ण अवधारणायें निम्न हैं:-

- **वाह्यताओं का निर्माण** – मेरिट वस्तुओं का जब उपभोग किया जाता है तो वह धनात्मक वाह्यताओं का निर्माण करती है जिनसे समाज हेतु वाह्य लाभों का निर्माण होता है जिन लाभों के एवज में उपभोक्ताओं को कोई भी भुगतान नहीं करना होता है।

- **आरोपित अधिमान** – मेरिट वस्तुओं की पूर्ति उपभोक्तओं के अधिमान में हस्तक्षेप पर आधारित होती है। इन वस्तुओं की व्यवस्था करते समय उपभोक्ताओं के अधिमान को ध्यान में नहीं लिया जाता है एवं सरकार इनका अधिमान आरोपित करती है। जैसे वाहन के दुर्घटना बीमा हेतु सरकार द्वारा नियम उपभोक्ताओं पर लगाना।

- **लागत– लाभ में अन्तर-** वाह्यताओं के कारण मेरिट वस्तुओं के सामाजिक लाभ निजी लाभों से अधिक हो जाते है यानि सीमांत सामाजिक लागत इन वस्तुओं की सीमांत निजी लागत से कम हो जाती है।

- **अपूर्ण सूचना एवं दूरदृष्टिता का आभाव -** व्यक्तिगत उपभोक्ता अपने तात्कालिक हितों की आपूर्ति पर अधिक जोर देता है एवं दीर्घ कालिक एवं व्यापक हितों की पूर्ति में वह दूरदृष्टिकोण एवं बेहतर तथा पूर्ण सूचना के आभाव में उपभोक्ता मेरिट वस्तुओं का समुचित उपभोग नहीं कर पाता है।

- **निजी क्षेत्र एवं बाजार व्यवस्था का सफल न होना** – मेरिट वस्तओं को सिर्फ निजी क्षेत्र एवं बाजार व्यवस्था के ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता है। उपभोक्ताओं द्वारा इन वस्तुओं के प्रति अधिमान व्यक्त न कर पाने तथा क्रय करने की क्षमता एवं योग्यता के आभाव में इन आवश्यक वस्तुओं के उपभोग से वंचित रहने की संभावना रह जाती है। सरकार समाज के विशिष्ट वर्गों के कल्याण में वृद्धि करने के लिये इन वस्तुओं का उपभोग बढाने तथा समुचित कीमतों पर प्रत्येक उपभोक्ता को उपलब्ध कराने के लिये मेरिट वस्तुओं का बजट द्वारा प्रावधान करती है। मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था के सन्दर्भ में यह हमेशा आवश्यक नहीं है कि इन वस्तुओं की आपूर्ति सार्वजनिक व्यवस्था के अनुसार ही करायी जाये परन्तु यह अवश्य है कि इन वस्तुओं की आपूर्ति को सार्वजनिक व्यवस्था पूरक या बढावा दिया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध में यह भी महत्वपूर्ण है कि मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति सामान्य रियायती आधार पर अथवा आर्थिक उपादन के आधार पर की जाती है। (सहायता)

- **वर्गों हेतु आपूर्ति -** मेरिट वस्तुओं में एक गुण यह पाया जाता है कि इनकी आपूर्ति सार्वजनिक वस्तुओं की भॉति समस्त समाज हेतु न करते हुए समाज के एक विशेष वर्ग हेतु की जाती है। जैसे महिलाओं के स्वास्थ्य हेतु राजकीय सहायता या निर्धन वर्गो के लिये खाद्यान्न कूपन का वितरण करना आदि प्रमुख हैं।

4.6.2 सरकारी हस्तक्षेप - मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति सामान्यतया सरकार द्वारा बजटीय प्रावधानों के अनुसार की जाती है। सरकार द्वारा इनकी बजट से आपूर्ति तथा उपभोक्ताओं पर अधिमान आरोपित करने के लिये निम्न प्रमुख कारण हैं -

- ✓ इन वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि करना जिससे समाज हेतु धनात्मक वाह्यताओं एवं बचतों का निर्माण किया जा सकें जैसे बच्चों का सार्वजनिक टीकाकरण से संक्रामक बीमारियों से समस्त बच्चों की सुरक्षा हो सकें।

- ✓ उपभोक्ताओं के दूरदृष्टिकोण एवं सूचना के आभावों तथा अपूर्णता को दूर करने के लिये।
- ✓ समता के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जिससे इन वस्तुओं का उपभोग मात्र भुगतान की योग्यता तथा क्षमता पर आधारित न रह जायें।
- ✓ बाजार तंत्र तथा निजी क्षेत्र के द्वारा इन वस्तुओं की आपूर्ति हेतु संवेदनशील एवं पूर्ण रूप से सक्षम न हो पाना। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के अनुसार सरकार के सामाजिक राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु इन वस्तओं की आपूर्ति सरकार बजट के माध्यम से करती है। मेरिट वस्तु का एक बेहतर उदाहरण शिक्षा पर व्यय है। यह दीर्घ कालिक प्रकृति का होता है तथा समाज के वर्तमान एवं भविष्य हेतु यह लाभों का निर्माण करता है। इसकी आपूर्ति यदि बाजार एवं निजी क्षेत्रों के माध्यम से समतापूर्वक नहीं की जा सकती है तथा बहुत बड़े वर्ग तथा निर्धन प्रतिभागी बालकों का शिक्षा से वंचित रह जाने की सम्भावना बनी रह सकती है। समाज के निर्धन रह जाने की सम्भावना बनी रह सकती है। समाज के निर्धन तथा कमजोर तबका शिक्षा को प्राथमिकता ज्ञान सूचना एवं दृष्टि कोण के आभाव बजट के माध्यम से करती है। मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था हेतु सरकार आंशिक अंशदान, विशिष्ट कर, उपकर एवं राज सहायता का प्रावधान कर सकती है। यह सरकार प्रत्यक्ष (सब्सिडी) सब्सिडी या अप्रत्यक्ष सब्सिडी के माध्यम से कर सकती है।

4.7 निजी, सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative study of Private, Public and Merit goods)

इन वस्तुओं के मध्य तुलनात्मक अध्ययन इन वस्तुओं के उद्देश्यों, प्रकृति, प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए किया जा सकता है।

4.7.1 निजी तथा मेरिट वस्तुओं में समानता – निजी तथा मेरिट वस्तुओं में निम्न समानता उभर कर सामने आती हैं -

- ➢ **उद्देश्यों में समानता -** मेरिट तथा निजी वस्तुओं दोनों का उद्देश्य उपभोक्ताओं की अधिकतम संतुष्टि को प्राप्त करना है।
- ➢ **राष्ट्रीय आय में वृद्धि** – मेरिट तथा निजी वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग से समाज में आय, निवेश तथा उत्पादन में वृद्धि होती है।
- ➢ **प्रतियोगी उपभोग -** जहाँ तक निजी वस्तु का प्रश्न है इनका उपभोग हमेशा से प्रतियोगी होता है। परन्तु मेरिट वस्तुओं का उपभोग निजी वस्तुओं की तुलना में कम प्रतियोगी होता है या एक सीमा के पश्चात् ही प्रतियोगी होता है।

4.7.2 निजी तथा मेरिट वस्तुओं में अन्तर - मेरिट तथा निजी वस्तुओं मे के प्रावधानों, उद्देश्यों, प्रकृति में निम्न महत्वपूर्ण अंतर उभर कर सामने आते हैं

- **अधिमान की प्रकृति -** निजी वस्तुओं में जहाँ अधिमान स्वतः ही अभिव्यक्त हो जाता है, मेरिट वस्तुओं का अधिमान उपभोक्ताओं पर सरकार द्वारा आरोपित किया जाता है। इन वस्तुओं की आपूर्ति उपभोक्ताओं के अधिमान में हस्तक्षेप करके की जाती है।
- **बाह्यताओं का निर्माण -** मेरिट वस्तुओं के द्वारा समाज के लिये धनात्मक बाह्यताओं के निर्माण से बाह्य बचत एवं लाभ पैदा होते हैं। जिन्हें सभी के द्वारा समान रूप से उपभोग किया जाता है। निजी वस्तुओं के लाभ आन्तरिक एवं व्यक्ति विशेष तक सीमित रहते है।
- **लाभ– लागतों में अन्तर-** निजी वस्तुओं के लिये सामाजिक एवं निजी लाभ एवं लागतों में कोई भी अन्तर नहीं होता है। वहीं मेरिट वस्तुओं के लिये सीमांत सामाजिक लागतों की मात्रा सीमांत निजी लागतों से कम होने पर सामाजिक लाभों की मात्रा निजी लाभों से अधिक होती है।
- **वस्तुओं की व्यवस्था -** निजी वस्तुओं की व्यवस्था सामान्यतया बाजार तथा निजी क्षेत्र द्वारा की जाती है। वहीं मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था समाज के हितों को देखते हुए सरकार द्वारा की जाती है।
- **दीर्घकालिक दृष्टिकोण** – मेरिट वस्तुओं से समाज की वर्तमान एवं भविष्य के लाभों की पूर्ति होती है। समाज तथा राष्ट्र के बेहतर भविष्य निर्माण तथा भावी आर्थिक सामाजिक विकास को गति देने के उद्देश्य से मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति की जाती है। निजी वस्तुयें दूसरी ओर तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित होती है।
- **उद्देश्य -** मेरिट वस्तुओं से समाज के सामान्य हितो की पूर्ति के साथ समता, कल्याण एवं समाज की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। निजी वस्तुयें द्वारा निजी संतुष्टि एवं व्यक्तिगत हितों की आपूर्ति होती है।
- **बाजार एवं निजी क्षेत्र -** मेरिट वस्तुओं का प्रावधान बाजार एवं निजी क्षेत्र समता तथा सामाजिक कल्याण के अनुरूप समुचित तौर पर नहीं कर पाता हैं। यदि मेरिट वस्तुओं को पूर्णतः निजी क्षेत्र तथा बाजार के हवाले करें तो भुगतान की योग्यता न रखने वाले इन वस्तुओं के उपभोग से वंचित रह जायेंगे या आपेक्षित मात्रा में उपभोग नहीं कर पायेगें।

4.7.3 मेरिट वस्तुओं तथा सार्वजनिक वस्तुओं में समानता - मेरिट तथा सार्वजनिक वस्तुओं में निम्न महत्वपूर्ण समनता हैं -

- **उद्देश्य -** सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुओं से सामाजिक एवं सामान्य आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। दोनो की आपूर्ति तथा उत्पादन का उद्देश्य सामाजिक कल्याण से जुड़ा हुआ है। यानि सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना दोनों वस्तुओं का उद्देश्य है।

- **बाह्यता एवं बचत -** सार्वजनिक तथा मेरिट वस्तुयें से बाह्य बचतों का निर्माण होता है। यह वस्तुयें समाज के लिये इस प्रकार से लाभों को उत्पन्न करती है कि समाज को इसके लिये भुगतान नहीं करना पड़ता है।

- **निजी क्षेत्र एवं व्यवस्था -** सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था में सामान्यतया बाजार तंत्र एवं निजी क्षेत्र समुचित तौर पर योगदान नहीं कर पाते है। जहाँ सार्वजनिक वस्तुओं के लिये बाजार तंत्र असफल रहता है। वहीं मेरिट वस्तुओं का बाजार तंत्र तथा निजी क्षेत्र द्वारा आधी अधूरी आपूर्ति-की जाती है जिससे उपभोक्ताओं के कल्याण में हानि होती है।

- **सरकारी हस्तक्षेप -** सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं की आपूर्ति सामान्यतया सरकार द्वारा बजटीय प्रावधानों के अनुसार की जाती है। जैसे रक्षा का प्राव (मेरिट वस्तु) एवं शिक्षा (सार्वजनिक वस्तु)धान सरकार बजट के माध्यम से ही करती है।

4.7.4 मेरिट वस्तुओं तथा सार्वजनिक वस्तुओं में असमानता - सामान्यतया मेरिट तथा सार्वजनिक वस्तुओं में अक्सर समानता की स्थिति का भ्रम होता है। ऐसा इसलिये होता है कि मेरिट वस्तुयें जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सार्वजनिक हितों से सम्बन्धित होते है तथा मेरिट वस्तुओं का प्रावधान सार्वजनिक वस्तुओं की तरह बाजार पर आधारित न होकर सरकार द्वारा किया जाता है। सार्वजनिक एवं मेरिट वस्तुओं में असमानता को निम्न मानकों के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है

- **गैर प्रतियोगी उपभोग -** सार्वजनिक वस्तुओं के उपभोग एक व्यक्ति द्वारा किये जाने पर अन्य व्यक्तियों के लाभों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यानि सार्वजनिक वस्तुओं के उपभोग गैर प्रतियोगी होते है। वहीं मेरिट वस्तुओं का उपभोग सार्वजनिक वस्तुओं की तुलना में प्रतियोगी होता है या एक सीमा के बाद प्रतियोगी हो जाता है।

- **अधिमान** – मेरिट वस्तुओं के अधिमान समाज पर सरकार द्वारा आरोपित किये जाते है। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं के सन्दर्भ में अधिमान की अभिव्यक्ति सामूहिक तौर पर होती है।

- **वस्तु व्यवस्था का उद्देश्य -** मेरिट वस्तुओं में एक विशिष्ट गुण यह होता है कि इनकी व्यवस्था समाज के एक वर्ग विशेष के लिये की जाती है। जबकि सार्वजनिक वस्तुओं की विशेषता समस्त समाज हेतु की जाती है।

- **वस्तुओं की प्रकृति** – मेरिट वस्तुओं में सार्वजनिक तथा निजी वस्तुओं दोनों की प्रकृति मिली जुली हो सकती है। जबकि शुद्ध सार्वजनिक वस्तुओं में अपनी मौलिक प्रकृति होती है।

- **व्यय व्यवस्था -** सार्वजनिक वस्तुओं पर व्यय हेतु सामान्यतया सरकारे सामान्य करों का सहारा लेती है। वहीं मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था हेतु सरकार आंशिक अंशदान, विशिष्ट कर एवं राज

सहायता का प्रावधान कर सकती है। यह सरकार प्रत्यक्ष सब्सि (सब्सिडी)डी या अप्रत्यक्ष सब्सिडी के माध्यम से कर सकती है।

4.8 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सार्वजनिक वस्तु की अवधारण किस अर्थशास्त्री द्वारा प्रतिपादित की गयी है?
2. मेरिट वस्तुओं की अवधारणा किस अर्थशास्त्री द्वारा प्रतिपादित की गयी है?
3. किसी उपभोक्ता द्वारा सार्वजनिक वस्तु के उपभोग करने पर दूसरे उपभोक्ता के लाभ पर जब कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता हो तो सार्वजनिक वस्तु की ऐसी विशेषता को क्या कहा जाता है?
4. सार्वजनिक वस्तु के लाभों से किसी भी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता है। सार्वजनिक वस्तु की यह विशेषता किस सिद्धान्त का परिणाम होती है?
5. मेरिट वस्तुयें का अधिमान किसके द्वारा उपभोक्ताओं पर आरोपित होता है?

4.9 सारांश (Summary)

लोक वित्त की अवधारणाओं और सिद्धांतों के विकास में हमेशा राज्य और बाजार की भूमिकाओं के बीच बहस होती रही है। निजी, सार्वजनिक, और मेरिट वस्तुओं की प्रकृति, उद्देश्य, और व्यवस्था में अंतर को सरकार और बाजार की भूमिकाओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है।आर्थिक और तकनीकी विकास के साथ, जहां एक ओर सामाजिक और निजी आवश्यकताओं में बदलाव आया है, वहीं दूसरी ओर इन वस्तुओं की प्रकृति और महत्व में भी बदलाव हुआ है। तकनीकी प्रगति, वैश्वीकरण, और उदारीकरण की प्रक्रियाओं ने बाजार की भूमिका को और अधिक प्रभावी बना दिया है, लेकिन इसके बावजूद, सार्वजनिक और मेरिट वस्तुओं का महत्व और बढ़ गया है।यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक वस्तुओं का मतलब केवल उन वस्तुओं से नहीं है जो सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित होती हैं, बल्कि उन वस्तुओं से है जो गैरप्रतिस्पर्धी-, गैरवर्जनीय होती हैं और जो - सार्वजनिक और सामाजिक हितों को पूरा करती हैं।

निजी, मेरिट, और सार्वजनिक वस्तुओं के संदर्भ में अवधारणाओं, सिद्धांतों, और विशेषताओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक कल्याण की पूर्ति के लिए इन तीनों प्रकार की वस्तुओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक और मेरिट वस्तुओं की व्यवस्था और आवंटन न केवल जटिल है बल्कि अत्यधिक महत्वपूर्ण भी है। भारत जैसे विकासशील और आय की असमानता वाले देश में, इस जटिलता और चुनौती का स्तर और बढ़ जाता है। इसलिए, इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक प्रभावी बजटीय नीति आवश्यक है।

4.10 शब्दावली (Glossary)

- **लाईसेन्स प्रणाली -** अर्थ व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों के नियमन तथा नियन्त्रण हेतु इस प्रणाली को अपनाया जाता है। जैसे भारत में औद्योगिक गतिविधियों के नियमन हेतु औद्योगिक लाईसेन्स की प्रणाली को अपनाया गया है।

- **विशेष कर निर्धारण** – विशेष कर निर्धारण एक ऐसा अनिवार्य अंशदान है जो प्राप्त होने वाले विशेष लाभ के अनुपात में लगाया जाता है।

- **क्रास सब्सिडी सहायता -** एक ही सेवा या वस्तु को सरकार निर्धन वर्गों के कल्याण या निजी विशिष्ट उद्देश्य के तौर पर सस्ते में उपलब्ध कराती है। यह प्रावधान सरकार अन्य उपभोक्ताओं को उसी वस्तु को अधिक कीमत पर उपलब्ध कराती है।

- **आरोपित अधिमान** – जब सरकार उपभोक्ताओं को ऊपर विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किसी वस्तु विशेष का उपभोग में वृद्धि करने हेतु अधिमान को थोपकर आरोपित करती है तो उसे आरोपित अधिमान कहा जाता है। अवसर लागत किसी सीमित एव -ं अनेक वैकल्पिक प्रयोग में आने वाले साधन की अवसर लागत वह उत्पादन या लाभ का त्याग है जो किसी विशेष प्रयोजन की बजाय दूसरे श्रेष्ठतम् वैकल्पिक प्रयोग द्वारा प्राप्त हो सकता है। प्रत्यक्ष सब्सिडी सरकार द्वारा जब उत्पादकों - एवं उपभोक्ताओं को सीधे बजट के माध्यम से सहायता प्रदान करती है तो उसे प्रत्यक्ष सब्सिडी के अन्तर्गत शामिल किया जाता है।

- **अप्रत्यक्ष सब्सिडी -** जब सरकार उपभाक्ताओं तथा उत्पादकों को सहायता बजट के माध्यम से सीधे तौर पर न करके अन्य माध्यमों से जारी करती है तो ऐसी सहायता अप्रत्यक्ष सब्सिडी के अन्तर्गत आती है।

- **आर्थिक कल्याण -** आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है। जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुडा के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है।

- **सामाजिक कल्याण** – वस्तु तथा सेवाओं के उपभोग से मनुष्य को संतुष्टि प्राप्ति होती जिस पर मनुष्य का कल्याण आधारित होता है। अतः समाज में रहने वाले सभी व्यक्तियों की संतुष्टि के योग को सामाजिक कल्याण कहते है। पेरेटो के अनुसार सामाजिक कल्याण तब होता है जबकि सामाजिक कल्याण में वृद्धि इस प्रकार से होती हो कि समाज के किसी भी व्यक्ति के कल्याण में कमी न हो

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- सिंघई, जी. सी., मिश्रा, जे. पी., "अर्थशास्त्र' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स)2012), आगरा।

- त्यागी, बी. पी., "लोकवित्त' जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी)2004), मेरठ।
- Basu Kaushik. The Oxford companion to Economics in India, Oxford University, press (2007), New Delhi.
- Ahuja, H. L., Advanced Economics Theory Microeconomic Analysis, S. Chand & Company Ltd. (2004), New Delhi.

4.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- दत्त एवं सुन्दरम (2011)- भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द एण्ड क. लि., नई दिल्ली।
- सेठी, टी. टी. (2005)- मुद्रा बैकिंग एवं लोकवित्त लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
- मिश्र, जगदीश नारायण (2011)–भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

4.13 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. निजी वस्तुओं तथा सार्वजनिक वस्तुओं की मुख्य विशेषतायें समझाते हुए दोनों वस्तुओं में अंतरों को स्पष्ट कीजियें?
2. सार्वजनिक वस्तुओं के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इन वस्तु की व्यवस्था पर चर्चा कीजियें?
3. मेरिट वस्तुओं की अवधारणा स्पष्ट करते हुए इनके महत्व पर टिप्पणी कीजियें?
4. सार्वजनिक वस्तुओं तथा मेरिट वस्तुओं में तुलनात्मक विवेचना कीजियें?
5. मेरिट वस्तुओं के प्रावधान करने के लिये सरकारी हस्तक्षेप का औचित्य एवं सार्थकता स्पष्ट कीजियें?

इकाई 5 लोक व्यय: उद्देश्य, आवंटन, वितरण और स्थिरीकरण (Public Expenditure: Objectives, Allocation, Distribution and Stabilization)

5.1 प्रस्तावना(Introduction)

5.2 उद्देश्य(Objectives)

5.3 लोक व्यय उद्देश्य (Objectives of public expenditure)

5.3.1 लोक व्यय के आवंटन सम्बन्धी उद्देश्य (Public expenditure in the objectives fiscal policy)

5.3.2 लोक व्यय के वितरण उद्देश्य ((Distribution objectives of public expenditure)

5.4 लोक व्यय द्वारा स्थिरीकरण का उद्देश्य(Objective of stabilization by public expenditure)

5.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

5.6 सारांश (Summary)

5.7 शब्दावली (Glossary)

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची (References/Bibliography)

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful / Helpful text)

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

लोक व्यय के आवंटन उद्देश्यों से हमारा तात्पर्य उन विभिन्न मदों पर खर्च की जाने वाली राशि से है, जिनका उद्देश्य व्यक्तिगत कल्याण के बजाय सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना है। वितरण के संदर्भ में, लोक व्यय का उद्देश्य कल्याण के केंद्रीकरण की बजाय विकेंद्रीकरण के माध्यम से असमानताओं को कम करना होता है।

विकसित और विकासशील देशों को समय-समय पर आर्थिक स्थिरीकरण की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, और इन चुनौतियों के समाधान के लिए लोक व्यय एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में अपनाया जाता रहा है। लोक व्यय के माध्यम से अर्थव्यवस्था को विकास के मार्ग पर आगे बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। इसलिए, लोक व्यय का उद्देश्य आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों को नियंत्रित करना भी होता है।

इस इकाई में हम लोक व्यय के उद्देश्यों का अध्ययन विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के संदर्भ में करेंगे। हालांकि, यह जरूरी नहीं है कि इन उद्देश्यों की पूर्णरूप से प्राप्ति हो सके। उद्देश्यों के निर्धारण और उनकी प्राप्ति के बीच का अंतर अर्थव्यवस्था की प्रकृति और लोक सत्ताओं के निर्णयों पर निर्भर करता है।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई लोक व्यय के उददेश्य, आवंटन, वितरण और स्थिरीकरण के अन्तर्गत आप भली भांति समझ सकेंगे कि-

- ✓ लोक व्यय के उद्देश्यों का निर्धारण और ये किन तत्वों से ये उद्देश्य प्रभावित होते हैं?
- ✓ लोक व्यय के माध्यम से आवंटन से संबंधित उद्देश्यों की स्थिति क्या है?
- ✓ लोक व्यय द्वारा सामाजिक कल्याण के विकेंद्रीकरण के माध्यम से वितरण कैसे निर्धारित किया जाता है?
- ✓ आर्थिक स्थिरीकरण प्राप्त करने में लोक व्यय की क्या भूमिका होती है?
- ✓ आप यह समझ पाएंगे कि लोक व्यय के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय कौन-सी समस्याएं उत्पन्न होती हैं, और कैसे ये समस्याएं लोक व्यय के उद्देश्यों को प्रभावित या परिवर्तित कर सकती हैं?

5.3 लोक व्यय उद्देश्य(Objectives of public expenditure)

किसी भी देश की सरकार का लोक व्यय करने का उद्देश्य अक्सर निजी व्यक्तियों और संस्थाओं के व्यय उद्देश्यों से भिन्न होता है। हालांकि, एक सामान्य तत्व 'कल्याण' दोनों के बीच मौजूद होता है। फिर भी, लोक व्यय के संदर्भ में इस कल्याण का दायरा और प्रकृति व्यापक होती है। सरकार का मुख्य लक्ष्य सदैव लोक कल्याण होता है।

आदर्श रूप से, यदि हम स्मिथ की राज्य के तीन प्रमुख कार्यों पर विचार करें देश की रक्षा, आंतरिक कानून व्यवस्था, और कुछ सार्वजनिक कार्यों का संचालन। ये सभी कार्य लोक वित्त के माध्यम से ही संपन्न होते हैं। इन

कार्यों के पीछे सामूहिक कल्याण का उद्देश्य छिपा होता है, जिसे स्वतंत्र बाजार व्यवस्था के तहत हासिल करना मुश्किल होता है। जे.एस. मिल के अनुसार, आवश्यक सुरक्षा, वित्तीय व्यवस्था, मापतौल व्यवस्था, और बुनियादी ढांचे जैसी सुविधाओं के संचालन में भी लोक व्यय की प्रमुख भूमिका होती है, जिससे समाज का सामूहिक कल्याण सुनिश्चित किया जा सके।

आज के समय में, लोक व्यय न केवल विकसित देशों में बल्कि विकासशील और पिछड़े देशों में भी सार्वजनिक वित्त का एक केंद्रीय तत्व बन गया है। राजकोषीय नीति में लोक व्यय एक प्रभावशाली उपकरण के रूप में उभरा है, जो अर्थशास्त्र में उपभोग के समान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राजकोषीय नीति के अन्य तत्व जैसे लोक आगम, लोक ऋण, और वित्तीय नियंत्रण के साथ-साथ लोक व्यय का भी एक विशिष्ट स्थान है।
सरकारें पहले से ही विभिन्न मदों पर व्यय की योजना बनाती हैं, और फिर उस पर खर्च की जाने वाली राशि का अनुमान लगाती हैं। यह योजना और अनुमान विभिन्न देशों की शासन नीतियों और अर्थव्यवस्था की प्रकृति के आधार पर तय होते हैं। इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए लोक व्यय को राजकोषीय नीति के अन्य उपकरणों जैसे लोक आगम, लोक ऋण, और वित्तीय प्रशासन के साथ मिलकर प्रयोग किया जाता है।

लोक कल्याणकारी सरकारों से अपेक्षा की जाती है कि वे उन क्षेत्रों में व्यय करें जहां निजी व्यक्तियों की पहुंच नहीं हो सकती, जैसे कि सामूहिक शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, और बुनियादी ढांचे का विकास। इस तरह की योजनाओं का संचालन केवल सरकार द्वारा ही संभव है, और लोक व्यय के माध्यम से उन आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है जिन्हें व्यक्तिगत रूप से पूरा करना मुश्किल है।

वर्तमान में, सरकारों के बढ़ते कार्यों और दायित्वों को देखते हुए, लोक व्यय के उद्देश्यों को दो आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है:-

राज्य की आर्थिक गतिविधियों का कुशल संचालन ताकि एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो सके। इस संदर्भ में, लागत-लाभ विश्लेषण को ध्यान में रखकर लोक व्यय का उद्देश्य निर्धारित किया जाता है। सरकारें भी निजी क्षेत्र की तरह लाभ अर्जित करने और राष्ट्रीयकरण की भावना से प्रेरित होकर उद्योगों का संचालन करती हैं।

सार्वजनिक कल्याण में वृद्धि के उद्देश्य से लोक व्यय किया जाता है, जिसके अंतर्गत उत्पादन, रोजगार, और उपभोग में वृद्धि की जाती है। इसलिए, सरकारें लोक व्यय के माध्यम से सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करती हैं।

5.3.1 लोक व्यय के आवंटन सम्बन्धी उद्देश्य (Public expenditure in the objectives fiscal policy)

भिन्न देशों के आर्थिक इतिहास के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि समय के साथ राजकोषीय नीतियों में लगातार परिवर्तन होते रहे हैं। आज, राजकोषीय नीति का प्राथमिक उद्देश्य बेरोजगारी और अतिउत्पादन जैसी समस्याओं का समाधान करना है। इसके परिणामस्वरूप, राजकोषीय नीति के उद्देश्यों का दायरा धीरे-धीरे बढ़ता गया है।

मसग्रेव के अनुसार, राजकोषीय नीति के मुख्य उद्देश्य उच्च रोजगार, मूल्य स्थिरता, विदेशी व्यापार में संतुलन, और आर्थिक विकास में वृद्धि हैं। वर्तमान समय में, रोजगार में पर्याप्त वृद्धि करने के लिए राजकोषीय नीति में लोक व्यय की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण मानी जाती है।

कीन्स के दृष्टिकोण में, पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रभावी मांग को बढ़ाने में क्रय शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। कीन्स ने लोक व्यय के विवेकपूर्ण उपयोग पर जोर दिया, ताकि प्रभावी मांग को बढ़ाकर अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित किया जा सके।

विकसित देशों में, रोजगार का स्तर एक निश्चित सीमा के बाद और अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता। इसलिए, इन देशों में राजकोषीय नीति के तहत लोक व्यय का उपयोग रोजगार को एक वांछित स्तर पर बनाए रखने के लिए किया जाता है। इस संदर्भ में, लोक व्यय का आवंटन निवेश और उपभोग के क्षेत्रों में विशेष ध्यान से किया जाता है। दूसरी ओर, विकासशील देशों में बेरोजगारी और संसाधनों के कम उपयोग की समस्याएं होती हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए लोक व्यय के माध्यम से संसाधनों के अधिकतम उपयोग और रोजगार सृजन की क्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है।

विकसित देशों में राजकोषीय नीति का मुख्य उद्देश्य उत्पादन की मात्रा को बढ़ाना होना चाहिए, लेकिन इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उत्पादन का स्तर उपभोग के स्तर से अधिक न हो। जब तक उत्पादन क्षमता कम न हो, तब तक उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि की जानी चाहिए। प्रभावी मांग में लगातार वृद्धि न होने पर, बेरोजगारी की समस्या हल नहीं हो सकती।

विकासशील देशों में अक्सर छिपी हुई बेरोजगारी होती है, जिसे दूर करने के लिए उत्पादन के साधनों को गतिशील बनाना आवश्यक है। हालांकि, विकसित देशों में छिपी हुई बेरोजगारी की समस्या नहीं होती, लेकिन वहाँ अनिश्चित बेरोजगारी हो सकती है। काम के अवसर होने के बावजूद, यदि लोग काम न करना चाहें या उनके पास इतनी आय हो कि वे बिना काम किए भी जीवन जीने की सोचें, तो यह स्थिति अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। इस तरह की बेरोजगारी के लिए मौद्रिक मांग में उतार-चढ़ाव जिम्मेदार होता है। यदि बेरोजगारी को दूर करना है, तो मुद्रा की मांग में उतार-चढ़ाव पर नियंत्रण आवश्यक है।

5.3.2 लोक व्यय के वितरण उददेश्य (Distribution objectives of public expenditure)

सरकार द्वारा निर्धारित लोक व्यय के वितरण का उद्देश्य एक क्लासिकल कार्य के रूप में देखा जाता है। पहले के समय में यह माना जाता था कि केवल लोक सेवाओं का प्रावधान ही सरकार का प्रमुख और वैध कार्य है, और यह तर्क दिया जाता था कि शुद्ध वित्तीय समस्याओं को सामाजिक और आर्थिक नीतियों के साथ नहीं मिलाना चाहिए। हालांकि, यह भी सत्य है कि बजट नीति के सामाजिक और आर्थिक प्रभाव होते हैं, और इन प्रभावों को उस दिशा में मोड़ा जा सकता है जिसका सीधा संबंध साधनों के आवंटन से नहीं होता।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण दिशा आय और संपत्ति के वितरण से जुड़ी होती है। लोक व्यय के माध्यम से आय और संपत्ति का वितरण इस प्रकार किया जा सकता है जिसे समाज न्यायसंगत समझता हो। इस प्रकार के वितरण को ही व्यय नीति का वितरण उद्देश्य कहा जाता है। आवंटन उद्देश्य के तहत कर और व्यय के माध्यम से संसाधनों का हस्तांतरण निजी आवश्यकताओं से हटकर सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। जबकि वितरण का उद्देश्य यह होता है कि आय और संपत्ति का हस्तांतरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को किया जाए। मौजूदा बाजार व्यवस्था के तहत समाज के दृष्टिकोण से वर्तमान वितरण व्यवस्था न्यायसंगत हो सकती है या नहीं भी हो सकती। यदि ऐसा नहीं है, तो बाजार व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक दृष्टि से न्यायोचित वितरण प्राप्त करना कठिन होता है, इसलिए बजट प्रक्रिया की जरूरत पड़ती है।

मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में आय की असमानता का प्रमुख कारण यह है कि उत्पादन के साधनों को जो मजदूरी, लगान, और ब्याज के रूप में भुगतान किया जाता है, वह उनकी सीमान्त उत्पादकता के आधार पर ही होता है। यह व्यवस्था एक ऐसे योग्यता तंत्र को जन्म देती है, जहां योग्यता (तथा आय) उन्हीं को प्राप्त होती है जिन्होंने इस व्यवस्था की आवश्यकता के अनुसार उत्पादन क्षमता को अर्जित किया है। जिनके पास आवश्यक उत्पादन क्षमता नहीं होती, उनकी जीविका के लिए निजी दान के अलावा कोई अन्य प्रावधान नहीं होता। एकाधिकार भी आय के वितरण में असमानता का एक और प्रमुख कारण होता है।

मुक्त बाजार व्यवस्था में निजी संपत्ति का अधिकार जरूरी होता है, लेकिन यह अधिकार आय की असमानता को और बढ़ाता है। निजी संपत्ति के साथ उत्तराधिकार की व्यवस्था भी इस असमानता को बढ़ाती है।

यह प्रश्न भी उठता है कि "न्यायसंगत" किसे माना जाए? आधुनिक आर्थिक सिद्धांत इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर नहीं देता है। कल्याण अर्थशास्त्र में आर्थिक कार्यकुशलता का विश्लेषण दिए गए वितरण के आधार पर ही किया जाता है। पुनर्वितरण का कार्य, पुनर्व्यवस्था से अलग होता है क्योंकि इसमें कुछ लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार अन्य लोगों की कीमत पर किया जाता है।

आय का पुनर्वितरण कई तरीकों से किया जा सकता है। इसे परोक्ष रूप से उत्पादक साधनों और उत्पत्ति की कीमतों में परिवर्तन या संपत्ति के अधिकारों में बदलाव के द्वारा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, सरकार यदि कृषि उत्पादों की कीमतों को समर्थन देती है, तो इससे किसानों की आय बढ़ेगी जबकि गैर-कृषकों की आय कम हो सकती है। सरकार विशिष्ट रोजगार या उद्योगों में प्रवेश को सीमित करके कुछ लोगों को रोजगार से वंचित कर सकती है। उच्च आय पर सीमा तय करना और न्यूनतम आय का स्तर निर्धारित करना भी आय के वितरण में समानता लाने का एक प्रयास हो सकता है। सरकार आय के पुनर्वितरण के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग करती है, जिनमें कर हस्तांतरण योजना, ऋणात्मक आय कर, प्रगतिशील आय कर, और अन्य प्रावधान शामिल होते हैं।

मसग्रेव ने आय के पुनर्वितरण के लिए तीन प्रमुख राजकोषीय विधियों का उल्लेख किया है:

- **कर हस्तांतरण योजना:** इसमें उच्च आय पर प्रगतिशील कर लगाया जाता है और निम्न आय वाले परिवारों को सब्सिडी प्रदान की जाती है।
- **लोक सेवाओं का वित्त पोषण:** निम्न आय वाले परिवारों की आवश्यकताओं जैसे, आवास, स्वास्थ्य आदि के लिए प्रगतिशील करों द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।
- **वस्तुओं पर कर और सब्सिडी:** उच्च आय वालों की उपभोग वस्तुओं पर कर लगाया जाता है और निम्न आय वालों की उपभोग वस्तुओं पर सब्सिडी दी जाती है।

5.4 लोक व्यय द्वारा स्थिरीकरण का उद्देश्य (Objective of stabilization by public expenditure)

लोक व्यय के स्थिरीकरण का उद्देश्य अपेक्षाकृत नया है, जो 1930 के दशक से प्रमुखता में आया। यह उद्देश्य आवंटन और वितरण कार्यों से भिन्न है। जहां आवंटन का कार्य निजी और सार्वजनिक आवश्यकताओं के बीच संसाधनों के बंटवारे से संबंधित है, वहीं वितरण का कार्य निजी आवश्यकताओं के बीच संसाधनों के बंटवारे से जुड़ा है। स्थिरीकरण का मुख्य उद्देश्य, रोजगार को ऊंचे स्तर पर बनाए रखना और मूल्य स्थिरता को सुनिश्चित करना।

स्थिरीकरण की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार और मूल्य स्थिरता स्वाभाविक रूप से बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के कायम नहीं रह सकती। रोजगार और मूल्य स्तर समग्र मांग पर निर्भर करते हैं। इसलिए समग्र मांग को स्थिर रखने के लिए प्रसारकारी या संकुचनकारी राजकोषीय नीतियों की आवश्यकता होती है। मंदी के समय में लोक व्यय बढ़ाकर और करों में कटौती करके समग्र मांग को बढ़ाना आवश्यक होता है, जबकि मुद्रास्फीति के समय लोक व्यय में कमी करना पड़ सकती है।

1936 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध किताब ' General Theory' में, जॉन मेनार्ड कीन्स ने रोजगार और कीमतों की अस्थिरता के कारणों का विश्लेषण किया और बताया कि सरकार के पास ऐसे उपकरण हैं जिनके माध्यम से इन अस्थिरताओं को समाप्त किया जा सकता है। आधुनिक स्थिरीकरण नीतियाँ कीन्स और उनके अनुयायियों द्वारा विकसित सिद्धांतों का ही उपयोग करती हैं। विकासशील देशों में भी स्थिरीकरण का लक्ष्य तय किया जाता है, जैसे भारत में।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, विशेषकर 1950 के दशक से, राजकोषीय नीति के उद्देश्यों में एक नया उद्देश्य जोड़ा गया है। एक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में समग्र मांग स्थिर नहीं रहती; यह देश की उत्पादन क्षमता और जनसंख्या में वृद्धि के अनुसार बढ़ती रहती है। इसलिए, बजट नीति के माध्यम से समग्र मांग को उत्पादन क्षमता और जनसंख्या में वृद्धि के अनुरूप बढ़ाना आवश्यक है ताकि पूर्ण रोजगार और मूल्य स्थिरता बनी रहे। यह भी महत्वपूर्ण है कि आर्थिक स्थिरता के लिए केवल राजकोषीय नीति ही पर्याप्त नहीं है, इसके साथ मौद्रिक नीति और समय पर अन्य आंतरिक नीतियों का भी उपयोग आवश्यक हो सकता है।

बजट नीति के कई उद्देश्य होते हैं:- आवंटन, वितरण, और स्थायित्व। इन उद्देश्यों को एक साथ पूरा करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है क्योंकि इनमें संघर्ष हो सकता है और वे आपस में जुड़े हुए हैं। इसके परिणामस्वरूप, एक ऐसी बजट नीति तैयार करना जो सभी उद्देश्यों को पूरा करे, जटिल हो सकता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए सरकार सेवाओं में वृद्धि करना चाहती है। इसके लिए करों की मात्रा बढ़ानी पड़ेगी। अब प्रश्न उठता है कि अतिरिक्त करों का वितरण करदाताओं के बीच कैसे किया जाए। करों के माध्यम से आय के वितरण में परिवर्तन हो सकता है, जिससे कुछ मतदाता सेवाओं में वृद्धि के पक्षधर हो सकते हैं, क्योंकि वे आय के वितरण में बदलाव के समर्थक हो सकते हैं, न कि सेवाओं में वृद्धि के पक्षधर। इस प्रकार, वितरण और सेवाओं की वित्त व्यवस्था के बीच संतुलन बनाना कठिन हो जाता है।

समान वितरण को बढ़ावा देने के लिए, प्रगतिशील कर प्रणाली अपनाई जा सकती है, लेकिन एक और तरीका भी है निम्न आय वर्गों को अधिक मात्रा में लोक सेवाएं प्रदान करना। हालांकि, इससे उपभोक्ताओं के स्वतंत्र चयन पर प्रभाव पड़ सकता है, जिससे फिर से दोनों उद्देश्यों के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है।

स्थायित्व के संदर्भ में, मान लीजिए बेरोजगारी को कम करने के लिए प्रसार की नीति की आवश्यकता है। इसके लिए लोक व्यय में वृद्धि की जा सकती है। यदि इस मार्ग को अपनाया जाता है, तो आवंटन कार्य में हस्तक्षेप होगा। करों में कटौती करते समय, यह तय करना पड़ेगा कि इसे किस प्रकार लागू किया जाए ताकि आवंटन और वितरण के बीच संतुलन बनाए रखते हुए स्थायित्व उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके।

इस प्रकार, राजकोषीय नीति के उद्देश्यों को संतुलित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता है, जिसमें विभिन्न उद्देश्यों के बीच समन्वय स्थापित करना आवश्यक होता है।

5.5 अभ्यास प्रश्न(Practice Questions)

प्रश्न संख्या 1-

निम्न लिखित प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए।

(क) लोक व्यय का मुख्य उददेश्य क्या है?

(ख) विकसित तथा विकासशील देशों में लोक व्यय के उद्देश्यों में क्या अन्तर पाया जाता है? संक्षेप में लिखो।

(ग) लोक व्यय का उद्देश्य कौन निर्धारित करता है?

(घ) मुद्रा स्फीति में लोक व्यय किस प्रकार कार्य करता है?

प्रश्न संख्या 2-

निम्न लिखित कथनों में सही व गलत का चयन कीजिए?

(क) लोक व्यय, लोक आगम का पूरक है।

(ख) लोक व्यय तेजी काल में अत्यधिक बढ़ा दिया जाता है।

(ग) लोक व्यय के उद्देश्य केवल विकासशील देशों में ही निर्धारित होते है।

(घ) लोक व्यय उद्देश्यों के प्रति तटस्थ होता है।

प्रश्न संख्या 3-

नीचे दिये कथनों में रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

(क) बाजारी अर्थव्यवस्था में .. नहीं होता।

(ख) बजट नीति के .....तीन उद्देश्य होते हैं।

(ग) सामाजिक वस्तुओं और सेवाओं में वृद्धि..... ....बढाती है।

(घ) बेरोजगारी को दूर करने के लिये. ....नीति की जरूरत होती है।

प्रश्न संख्या 4- लोक व्यय के उददेश्य निर्धारण में आने वाली मुख्य चार समस्याएं बताओ?

प्रश्न संख्या 5- लोक व्यय के उददेश्यों की मुख्य विशेषताऐं संक्षेप में लिखो?

5.6 सारांश (Summary)

वर्तमान समय में, सभी देशों के लिए लोक व्यय के उद्देश्यों को लेकर गंभीरता बहुत बढ़ गई है। हालांकि सरकारें आमतौर पर लोक व्यय के उद्देश्यों में समानता दिखाती हैं, लेकिन विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के संरचनात्मक और संगठकीय अंतर के कारण इन उद्देश्यों की प्रकृति में व्यापक भिन्नताएँ देखी जाती हैं

सामान्यत विकसित, विकासशील, और पिछड़े देशों में लोक व्यय के प्रमुख उद्देश्यों में उत्पादन को स्थिर बनाए रखना, उसमें सुधार और गुणवत्ता में वृद्धि करना, और आय एवं संपत्ति के वितरण को बेहतर बनाना शामिल है। लोक व्यय इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उचित लोक व्यय नीति के माध्यम से वितरण के उद्देश्य को प्राप्त करने में सरकारों ने काफी रुचि दिखाई है। इसके अलावा, उत्पादन और वितरण के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि को उच्च स्तर पर बनाए रखना भी लोक व्यय द्वारा निर्धारित किया जाता है। यह उद्देश्य विशेष रूप से विकासशील और पिछड़े देशों में महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन देशों के लिए आर्थिक वृद्धि दर को ऊंचे स्तर पर बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

आर्थिक स्थिरता बनाए रखना भी वर्तमान में विकसित और विकासशील देशों की सरकारों के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है। वैश्वीकरण के दौर में, सभी देशों को आर्थिक मंदी और तेजी के व्यापार चक्रों का सामना करना पड़ता है। विकसित देशों के लिए आर्थिक स्थिरता सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य है, जबकि विकासशील और पिछड़े देशों में यह उतना प्राथमिक नहीं है। मंदी के समय में लोक व्यय को बढ़ाना और तेजी के समय में लोक व्यय में कटौती करके आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित की जाती है।

इन सभी उद्देश्यों को निर्धारित करने में लोक आगम की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आजकल, लोकतांत्रिक सरकारों के लिए लोक व्यय के माध्यम से इन उद्देश्यों को निर्धारित करना और उन्हें प्राप्त करना अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है।

5.7 शब्दावली (Glossary)

- **आवंटन:-** आवंटन की प्रक्रिया के अन्तर्गत संसाधनों को अलग- अलग मदों एवं उप विभागों में बांटा जाता है।
- **वितरण :-** इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में आय तथा सम्पत्ति के वर्तमान स्थिति में इस प्रकार परिवर्तन किया जाता है कि निम्न आय तथा कम सम्पति वाले लोगों की आय तथा सम्पत्ति में वृद्धि होती है लेकिन अर्थ व्यवस्था के संचालन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।
- **स्थिरीकरण :-** अर्थव्यवस्था में समय-समय पर आने वाले व्यापार चक्रों को नियन्त्रित करते हुए विकास की गति को निरन्तर बनाये रखना स्थिरीकरण कहलाता है।
- **सामाजिक वस्तुएँ:-** सामाजिक वस्तुऐं वे वस्तुएं हैं जो उपभोग में गैर प्रतियोगी होती है तथा उन्हें उपलब्ध कराने एवं उनके मूल्य निर्धारण की जिम्मेदारी सरकार की होती है। सामान्य रूप से सामाजिक वस्तुओं की उपलब्धता सामूहिक कल्याण में वृद्धि के उददेश्य से की जाती है।
- **बाजार अर्थव्यस्था:-** बाजार अर्थव्यवस्था से तात्पर्य उस अर्थव्यवस्था से है जिसमें मांग एवं पूर्ति शक्तियां विना सरकारी हस्तक्षेप के स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं।
- **राजकोषीय कार्य:-** सरकारी राजस्व सम्बन्धी कार्य ।
- **आर्थिक उच्चावचन :-** अर्थव्यवस्था में मन्दी तथा तेजी की क्रमवार उत्पन्न होने वाली स्थितियां जो अलग-अलग प्रभाव डालती है।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर(Answers for Practice Questions)

हल- प्रश्न संख्या 2 का उत्तर क. सही, ख. गलत, ग. गलत, घ. गलत

प्रश्न संख्या 3 का उत्तर क. सरकारी हस्तक्षेप, ख. आवंटन, वितरण, ग. आर्थिक कल्याण, घ. स्थायित्व प्रसार

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची(References/Bibliography)

- भाटिया, एच. एल (2006)- लोक वित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि. जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे. सी. (2005)- राजस्व (Public Finance),लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे. सी. (1997)- राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा।।
- सिंह, एस. के. (2013)- लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवनपब्लिकेशन, आगरा

5.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- दत्त एवं सुन्दरम (2011)- भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द एण्ड क. लि.नई दिल्ली।
- सेठी, टी.टी. (2005)- मुद्रा बैकिंग एवं लोकवित्त लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
- मिश्र, जगदीश नारायण (2011)–भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay Type Questions)

प्रश्न संख्या 1:- लोक व्यय के उद्देश्यों का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?

प्रश्न संख्या 2:- लोक व्यय के आवंटनात्मक उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न संख्या 3:- लोक व्यय के वितरण सम्बन्धी उददेश्यों का विश्लेषण कीजिए?

प्रश्न संख्या 4:- लोक व्यय के द्वारा आर्थिक स्थायित्व को किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है? स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न संख्या 5:- लोक व्यय के उद्देश्य निर्धारण की मुख्य समस्याओं को बताओं?

इकाई-6 लोक व्यय के नियम-वैगनर एवं वाइजमैन पीकॉक

(Canons of Public Expenditure-Wagner and Wiseman-Peacock)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 उद्देश्य (Objectives)

6.3 लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता

6.4 लोक व्यय के नियम

6.4.1 लोक व्यय का वैगनर नियम

6.4.2 वैगनर नियम की समीक्षा

6.4.3 विकासशील राष्ट्रों में "प्रगतिशील व्यय प्रवृत्ति"के कारण

6.5 लोक व्यय के वाइजमैन का नियम "व्यय अधिग्रहण सिद्धांत"

6.5.1 वाइजमैन पीकॉक के नियम (व्यय अधिग्रहण सिद्धांत") की सीमाएँ

6.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

6.7 सारांश (Summary)

6.8 शब्दावली (Glossary)

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर(Answers for Practice Questions)

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची(References/Bibliography)

6.11 सहायक/ उपयोगी ग्रंथ सूची (Useful / Helpful text)

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह इकाई एडोल्फ वैगनर और वाइजमैन पीकॉक के नियमों पर केंद्रित है, जो लोक व्यय के महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं। इसमें लोक व्यय के उद्देश्यों और उनकी प्रासंगिकता पर चर्चा की गई है, जो आवंटन, वितरण, और स्थायित्व जैसे पहलुओं को संबोधित करते हैं। इन नियमों की समीक्षा से आपको लोक व्यय के विभिन्न पक्षों को समझने में मदद मिलेगी। भारत जैसे विकासशील देशों में सार्वजनिक व्यय की प्रासंगिकता पर भी चर्चा की गई है, जो वर्तमान में एक महत्वपूर्ण विषय है।

6.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे कि

- ✓ लोक व्यय के लिए नियमों की क्या आवश्यकता है तथा नियमों का किस सीमा तक पालन होता है।
- ✓ लोक व्यय का वैगनर का नियम क्या है तथा अर्थव्यवस्थाओं के लिए इसकी क्या उपयोगिता तथा इस नियम की क्या प्रांसगिकता है।
- ✓ वाइजमैन पीकॉक का लोक व्यय का नियम लोक व्यय की किस समस्या को उजागर करता है एवं इस नियम की क्या प्रांसगिकता है।
- ✓ इन दोनों नियमों में क्या समानताएं है तथा किन विपरीत या अलग-अलग दशाओं को स्पष्ट करता है।

6.3 लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता

लोक व्यय के लिए नियमों की आवश्यकता पर विचार करते समय दो मुख्य बिंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक है:

1. **अर्थव्यवस्था की प्रकृति**: विभिन्न शक्तियां जो अर्थव्यवस्था को संचालित करती हैं, वे लोक व्यय से कैसे प्रभावित होती हैं।
2. **सरकार की स्थिति और उद्देश्य**: सरकार का चयन, उसकी सत्ता और लोक व्यय से जुड़े उसके उद्देश्य क्या हैं।

लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता इसलिए होती है ताकि अपव्यय से बचते हुए लोक हितों की सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित किया जा सके। विभिन्न प्रकार की सरकारों (जैसे कल्याणकारी, समाजवादी, पूंजीवादी) के लिए अलग-अलग नियम आवश्यक होते हैं ताकि वे अपने उद्देश्यों को पूरा कर सकें।

6.4 लोक व्यय के नियम

लोक व्यय नियमों की जरूरत को देखते हुए, सरकारों को कुछ नियमों को भी ध्यान में रखना होगा, जो नियमों की जरूरत की तीव्रता पर निर्भर करता है। स्वीकृति के नियम, लाभ का नियम और मितव्ययता का नियम लोक व्यय

के लिए अलग .अलग कार्य शक्तियों द्वारा बनाए गए हैं। लाभ के नियम पर प्रो-पीगू का कहना बहुत महत्वपूर्ण है सभी दशाओं में व्यय को उस बिन्दु तक बढ़ाया जाय जिस पर कि व्यय की गयी मुद्रा की अन्तिम इकाई से प्राप्त " होने वाली संतुष्टियाँ इस अन्तिम इकाई की संतुष्टियों के बराबर हों जो सरकार सेवा प्रदान करने पर खर्च करती है।"यह नियम स्पष्ट करता है कि सार्वजनिक व्यय के समाज के सभी व्यक्तियों को लाभ प्राप्त होना चाहिए न कि व्यक्तिगत स्तर पर अत्यधिक लाभ।

अर्थव्यवस्था के लिए मितव्ययता का नियम अत्यन्त ही उपयोगी एवं लम्बे समय के लिए आवश्यक है। सरकारी अपव्यय को रोकने के लिए स्वीकृति का नियम विकासशील देशों के लिए बड़ा ही उपयोगी सिद्ध होता है।

लोक व्यय का सही रूप में प्रयोग करने के साथ लोक व्यय के नियमों से सम्बन्धित ग्लेडस्टोन का यह कथन अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। "आय प्राप्त करने से इसको व्यय करना अधिक कठिन है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से तो राज्य के लिये सबसे उत्तम सिद्धान्त यह है कि सामाजिक लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य को सामने रखकर व्यय करे। अर्थात विभिन्न मदों पर व्यय किये हुए धन के सीमान्त लाभ को बराबर रखने का प्रयत्न करे।"

लोक व्यय से संबंधित मितव्ययता और स्वीकृति के नियम भारत जैसे विकासशील देशों में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। मितव्ययता नियम के अनुसार, सरकार को व्यय उसी मद में करना चाहिए जहां इसकी सबसे अधिक आवश्यकता हो, ताकि अर्थव्यवस्था में उत्पादन शक्ति का विकास हो और कार्य कुशलता बढ़े। फिजूलखर्ची से बचने के लिए समय का अपव्यय नहीं होना चाहिए। स्वीकृति नियम के अनुसार, लोक व्यय तभी किया जाए जब उच्च अधिकारी या लोक संस्थाओं से स्वीकृति प्राप्त हो। बचत के सिद्धांत पर शिराज का कथन है कि सार्वजनिक अधिकारियों को अपनी आय और व्यय को व्यक्तिगत बजट की तरह संतुलित रखना चाहिए।

प्रस्तुत इकाई में लोक व्यय से सम्बन्धित वाइजमैन पीकॉक तथा वैगनर के नियम को आप मुख्य रूप से समझ सकेंगे जो सभी प्रकार की प्रगतिशील सरकारों के संचालन में तथा विकास के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है।

6.4.1 लोक व्यय का वैगनर नियम

जर्मन अर्थशास्त्री वैगनर का नियम, जिसे "राजस्व के कार्यकलाप में वृद्धि का नियम" कहा जाता है, लोक व्यय के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है। इस नियम के अनुसार, आर्थिक विकास के साथ लोक व्यय में भी वृद्धि होती है, और दोनों के बीच धनात्मक व कार्यात्मक सहसंबंध पाया जाता है। वैगनर के अनुसार, प्रगतिशील राष्ट्रों में केन्द्रीय और स्थानीय सरकारों के कार्यों में विस्तार और गहनता दोनों होती है, जिससे वे जनता की आर्थिक आवश्यकताओं को अधिक कुशलता और संतोषजनक तरीके से पूरा करती हैं।

लोक व्यय के वैगनर के इस नियम का संबंध लोक आगम और समाज कल्याण से है। इन्होने लोक वित्त को धन के पुनर्वितरण के साधन के रूप में देखा, जिसमें लोक व्यय की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका बताई गई है।

वैगनर ने कहा कि लोक व्यय में वृद्धि का विचार अर्थव्यवस्था को बहुत प्रभावित करता है। यह सरकारी खर्च तीन तरह से प्रभावित होता है:

देश को चलाने के लिए लोक सत्ताओं के पास देश से जुड़े कई आर्थिक और गैर आर्थिक साधन हैं। साथ ही, इन सामग्री की मध्यम सरकार को मांग-पूर्ति का संतुलन बनाना होगा, जिसके माध्यम से सरकार को अपने कामों को कुशलता से करना होगा और क्रिया कलापों को गहनता से करना होगा। सरकार के पास पर्याप्त धन है, इसलिए विस्तृत और गहन लोक राजस्व व्यय करना चाहिए। सरकारों के लिए अनावश्यक व्यय और अपव्यय खतरनाक हैं।

इसके साथ आपको यह भी ध्यान देना होगा कि सरकार लोक व्यय को व्यक्तिगत लाभ देने के आधार पर व्यय नहीं कर सकती है। समाज के सम्पूर्ण हितों के आधार पर लोक व्यय अत्यन्त उपयोगी एवं फलदायक होता है। अतः लोक व्यय लोक कल्याणकारी होता है। अनेक कारणों से लोक कल्याण का क्षेत्र बढ़ता है जिससे लोक व्यय में वृद्धि होती है।

लोक कल्याण से ही जुड़ा एक अन्य पहलू यह भी है कि सरकार उन सभी समाज हित वाले कार्यो पर लोक व्यय आसानी से कर सकती है जिन पर व्यक्तिगत व्यय की सम्भावना नहीं है। व्यक्तिगत व्यय निजी लाभों से प्रेरित होता है। सामाजिक न्याय की दृष्टि से निजी व्यय या निवेश उपयोगी नहीं रह जाता है। सरकार उन सभी बृहद योजनाओं एवं परियोजनाओं पर भी लोक व्यय करती है जो निजी क्षेत्र द्वारा किये जाने वाले व्यय की सीमा से बाहर होती है।

इससे पूर्व आपने पढ़ा होगा कि सरकारों की प्रकृति एवं अर्थव्यवस्था की प्रकृति के आधार पर भी लोक व्यय प्रभावित होता है। इसी आधार पर सरकार की लोकप्रियता एवं आर्थिक विकास की आवश्यकता के महत्व सामन्जस्य स्थापित करने में लोक व्यय में विस्तृत एवं गहन दोनों स्तरों पर उचित निर्णय लिये जाना अत्यन्त आवश्यक है।

आपको यहां पर यह भी जानना अत्यन्त आवश्यक है कि डाल्टन ने वैगनर के नियम को लागू होने के पीछे तीन मुख्य कारण स्पष्ट किये। जो निम्न प्रकार है:-

- कुछ क्षेत्रों में सरकारी संस्थाएं निजी संस्थाओं की तुलना में अधिक कुशलता से कार्य कर सकती हैं, जैसा कि डाल्टन ने कहा है।
- कुछ जनोपयोगी क्षेत्रों में, जहाँ निजी क्षेत्र निवेश नहीं करता, सरकार को अनिवार्य रूप से व्यय करना पड़ता है, जैसे बड़े नगरों में जन स्वास्थ्य सेवाएं।
- लोक व्यय मुख्य रूप से सामूहिक उपयोगी वस्तुओं और सेवाओं पर होता है, जैसे पार्क, अजायबघर, और सार्वजनिक पुस्तकालय, जबकि निजी व्यय व्यक्तिगत उपयोग की वस्तुओं और सेवाओं पर होता है।

6.4.2 वैगनर नियम की समीक्षा

19वीं शताब्दी में बढ़ते लोक व्यय की प्रवृत्ति पर आधारित एडोल्फ वैगनर का नियम, जर्मनी के साथ-साथ अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी बहुत प्रासंगिक रहा। विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की आन्तरिक और बाह्य विशेषताओं में अंतर के कारण इस नियम को कई तरह की आलोचनाएं भी मिली हैं। अपने आनुभाविक अध्ययन के आधार पर, मसग्रेव ने बताया कि व्यय के हिस्से और प्रति व्यक्ति आय में कोई सकारात्मक संबंध नहीं था। प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के साथ जन व्यय बढ़ना आवश्यक नहीं है इसके साथ वैगनर की समयावधि भी चर्चा में आई। लोक व्यय और विकास के मध्य संबंधों में समय तत्व नहीं है। आर्थिक नियमों में समय तत्व महत्वपूर्ण है| समय तत्व आर्थिक नियमों का महत्वपूर्ण घटक है। इसके साथ लोक व्यय में होने वाली बृद्धि की आन्तरिक वृद्धियों का जिक्र वैगनर के नियम में नहीं किया गया है।

वर्तमान में वैश्विक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत निजीकरण के दौर में लोक व्यय तथा विकास के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। निजी क्षेत्र द्वारा भी बड़ी-बड़ी परियोजनाओं तथा बृहद क्षेत्रों में भी निवेश किया जा रहा है तथा लोक व्यय में वृद्धि के कारणों में भी बहुदिशीय परिवर्तन नजर आ रहा है।

उपर्युक्त विश्लेषण के बाद भी वैगनर का नियम प्रगतीशील कल्याणकारी राज्यों के सम्बन्ध में अत्यधिक प्रासंगिकता रखता है।

6.4.3 विकासशील राष्ट्रों में “प्रगतिशील व्यय प्रवृत्ति"के कारण

विकासशील राष्ट्रों को आर्थिक, सामाजिक, और अन्य चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं को हल करने के लिए सरकार को कदम उठाने होते हैं। उनकी मुख्य समस्या आर्थिक विकास की गति को बढ़ाना है, जिसके लिए बड़े पैमाने पर पूंजी निवेश आवश्यक होता है। चूंकि निजी क्षेत्र के पास इतनी बड़ी मात्रा में निवेश की क्षमता नहीं होती, सरकार को बड़ी परियोजनाओं और सहायक क्षेत्रों में निवेश करना पड़ता है। इस प्रकार, चाहे आर्थिक विकास का प्रयास प्रत्यक्ष रूप से हो या परोक्ष रूप से, अंततः यह सरकार के द्वारा ही होता है, जिसके लिए सरकार को विभिन्न योजनाएं भी चलानी पड़ती हैं।

आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में जीवन स्तर और लोक कल्याणकारी सेवाओं की मांग बदलती है, जिससे सरकार को कल्याणकारी लोक व्यय बढ़ाना पड़ता है। बढ़ती जनसंख्या, जो अशिक्षा और परंपरागत समाज जैसी समस्याओं से उत्पन्न होती है, आंतरिक अशांति, बेरोजगारी, गरीबी, और आर्थिक विषमता जैसी समस्याएं पैदा करती है। इन समस्याओं के समाधान के लिए सरकार को भारी मात्रा में निवेश और कल्याणकारी व्यय करना पड़ता है, क्योंकि निजी क्षेत्र इन मुद्दों को हल करने में सक्षम नहीं होता। शिक्षा, स्वास्थ्य, और जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से बढ़ती जनसंख्या और उससे उत्पन्न समस्याओं का समाधान भी लोक व्यय से ही संभव है। इस प्रकार, बढ़ती जनसंख्या और गरीबी-बेरोजगारी की समस्याएं लोक व्यय में वृद्धि का कारण बनती हैं, जो वैगनर के नियम का अनुसरण करती हैं।

6.5 लोक व्यय के वाइजमैन का नियम "व्यय अधिग्रहण सिद्धांत" (Displacement Effect Theory)

आप लोक व्यय के एडोल्फ वैगनर के नियम को पूरी तरह से समझ गए होंगे। लोक व्यय के दूसरे पक्ष से संबंधित वाइजमैन पीकॉक का नियम बहुत महत्वपूर्ण है। वाइजमैन पीकॉक ने अपनी 1961 में प्रकाशित पुस्तक, "The Growth of Public Expenditure in the United Kingdome" में 1890 से 1955 तक के देश के लोक व्यय के आंकड़ों का अध्ययन करके इस नियम को स्पष्ट किया। इस नियम के अनुसार राजनैतिक मूल्यों पर निर्णय किए जाते हैं। राजनैतिक व्यय निर्णय सार्वजनिक विचारधारा से प्रभावित होते हैं। लोक व्यय की वृद्धि के रूप और ढाँचे में बदलाव का विश्लेषण इस विचार से संबंधित है।

पीकॉक और वाइजमैन के अनुसार, लोक व्यय के निर्णय राजनैतिक आधार पर लिए जाते हैं, जहां सार्वजनिक विचारधारा, जो मतपेटी के माध्यम से व्यक्त होती है, इन निर्णयों को प्रभावित करती है। लोक व्यय का स्तर जनमत या मतदान द्वारा निर्धारित होता है, क्योंकि नागरिक अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से इन पर प्रभाव डालते हैं। चुनाव के बाद, प्रतिनिधि अपने क्षेत्रों में अधिकतम लाभ के लिए राज्य के व्यय कार्यक्रमों को प्रभावित करते हैं। मतदाता सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं का लाभ लेना चाहते हैं, लेकिन उसके बदले में भुगतान करने के लिए तैयार नहीं होते। सरकार को कराधान का सहन स्तर ध्यान में रखते हुए, लोक व्यय का निर्धारण करना पड़ता है, क्योंकि अत्यधिक कराधान पर करदाता विरोध कर सकते हैं।

आपको यहां ध्यान देना होगा कि कुछ विशेष परिस्थितियों में शारीरिक व्यय में वृद्धि हो जाती है जैसे युद्ध के समय निजी एवं राष्ट्र की सुरक्षा से प्रेरित होकर जनता कराधान के ऊचे स्तर को सहन करने के लिये तैयार हो जाती है। युद्ध की समाप्ति के बाद शारीरिक व्यय में कुछ कमी आ जाती है लेकिन कुछ समय के बाद बड़े हुये कराधान के एक बड़े भाग को सहन करने के लिये जनता भविष्य में भी तैयार बनी रहती है।

वाइजमैन पीकॉक ने अपने अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि युद्ध के बाद ब्रिटेन के सरकारी व्यय में कमी आई परन्तु यह कमी घटकर युद्ध के पूर्व के स्तर पर नहीं आई तथा राष्ट्रीय आय में लोक व्यय का अनुपात युद्ध के तुरन्त पहले के स्तर की तुलना में बहुत अधिक रहा।
इस प्रकार लोक व्यय में यह वृद्धि स्थायी रूप में रही। यह स्थायी वृद्धि स्थिर वृद्धि के रूप में नहीं होती है बल्कि यह पेड़ीदार अर्थात् अनियमित रूप में सीढ़ीदार होती है। आपको यहां ध्यान देना होगा कि लोक व्यय का आकार एवं प्रवृत्ति लोक आगम द्वारा भी प्रभावित होती है। आपातकाल में जनता पर अधिक करों की वसूली की जाती है। राष्ट्रीय सरक्षा आदि कारणों से जनता इस अधिक कर के भार को सहन करने के लिए तैयार हो जाती है और एक निश्चित समय अवधि के बाद जनता इस कर राशि को सहन करने की आदी हो जाती है जिससे सरकार के आय में स्थिर वृद्धि हो जाती है जिसे लोक व्यय के द्वारा संतुलित किया जाता है। सामान्य स्थितियों में कर का यह स्तर मौजूद रहता है तथा युद्ध जैसी आपातकालीन स्थिति में लोक आगम इसी बढ़े हुए स्तर से आगे ही बढ़ता है। युद्ध स्थिति तथा सामान्य स्थिति या मन्दी की स्थितियों के पैदा होने पर इस लोक आगम में स्थायी वृद्धि के कारण

लोक व्यय में भी स्थायी लेकिन पेड़ीदार वृद्धि होती है। युद्धोत्तर काल में लोक व्यय में स्थायी वृद्धि होती है लेकिन युद्ध काल की तुलना में कम होगी।

वाइजमैन पीकॉक ने अपने लोक व्यय सम्बन्धी नियम को भली-भांति स्पष्ट करने के लिये कुछ अवधारणाओं का भी सहारा लिया जिसमें प्रतिस्थापन प्रभाव, निरीक्षण प्रभाव, कर सहनशीलता तथा केन्द्रीयकरण प्रभाव को मुख्य रूप से जाना जाता है।

यह प्रतिस्थापन प्रभाव के तहत स्पष्ट किया गया कि युद्धकाल में जनता का खर्च बढ़ता है, इसलिए सरकार करों को बढ़ाती है। तथा आवश्यकता पड़ने पर जनता भी ऋण लेती है। क्योंकि करों को बढ़ाने और लोक ऋणों को नियंत्रित करने से निजी क्षेत्र का खर्च सार्वजनिक क्षेत्र का खर्च करता है। युद्ध की समाप्ति के बाद सरकार युद्ध पर खर्च नहीं करती, बल्कि इसे आम जनता पर खर्च करती है। निरीक्षण प्रभाव के अन्तर्गत युद्ध तथा अन्य किसी संकट काल में लोक व्यय में बढोत्तरी होने पर लोक सत्ताओं द्वारा समीक्षा की जाती है और बढते लोक व्ययों की वित्त व्यवस्था के समायोजन के लिये सहमति की जाती है।

संकट के समय लोकव्यय में वृद्धि होने पर जनता पर करारोपण का भार बढ़ जाता है लेकिन जनता द्वारा करारोपण के अधिक भार को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। जिसे कर सहनता के रूप में उल्लिखित किया गया।

देश में प्रत्येक संकटकाल के पश्चात अर्थव्यवस्था में लोक सत्ताओं की भूमिका बढ़ जाती है। इस वृद्धि को भी केन्द्रीयकरण प्रभाव कहा जाता है। जहां पर यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि स्थानीय तथा राज्य सरकारों की तुलना में केन्द्र सरकार के लोक व्यय में तीव्र वृद्धि होती है।

6.5.1 वाइजमैन पीकॉक के नियम (व्यय अधिग्रहण सिद्धांत") की सीमाएँ

आप वाइजमैन पीकॉक के नियम को जानते होंगे, लेकिन यह पूर्ण रूप से सही नहीं है क्योंकि यह सरल और विश्लेषणात्मक है। यह तर्क ठीक है कि लोक आगमन के साथ लोक व्यय की वृद्धि को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है, लेकिन इस नियम के अनुसार लोक व्यय की वृद्धि की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। इस नियम में लोक व्यय में वृद्धि का कारण आपातकाल बताया गया है, लेकिन आपातकाल के साथ अन्य संस्थागत व विकासात्मक सुधारों ने भी लोक व्यय को बढ़ा दिया है। सरकारी चुनावों और शासन सत्ता पर निरंतर नियंत्रण के कारण भी जनता का आगमन और व्यय लगातार बढ़ रहे हैं।जो इस नियम के लागू होने के आधार नहीं है।

आर्थिक सुधारों के दौर में इस नियम के मुख्य आधारों को अधिक जोर से समर्थन नहीं किया जा सकता है। औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा राजघरानों के विकास के कारण भी इस नियम को गहरा धक्का लग रहा है। जनसंख्या एवं जनसंख्या की बढ़ती आदतें, आवश्यकताओं के कारण भी सरकारों को अत्यधिक लोक व्यय का सहारा लेना पड़ रहा है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में सरकार की घटती भूमिका के सम्बन्ध में भी इस नियम की क्रियाशीलता के ठोस कारण या आधार नहीं ढूंढे जा सकते है।

सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात यह विश्लेषण उचित होगा कि इन सिद्धान्तों का भारत में कहां तक पालन किया जा रहा है

1. लाभ का सिद्धान्त– भारत में सार्वजनिक व्ययों में लाभ के सिद्धान्त का अधिकतम पालन करने का प्रयास किया जा रहा है। इस दृष्टि से व्ययों को विभिन्न विकासात्मक, प्रशासनिक और सुरक्षात्मक कार्यो में इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि समाज को अधिकाधिक लाभ मिल सके।

2. मितव्ययिता का सिद्धान्त- भारत में सैद्धान्तिक रूप से तो मितव्ययिता के सिद्धान्त को अपनाने पर जोर दिया जाता रहा है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से प्रशासनिक शिथिलता और अकुशलता के कारण इस सिद्धान्त का नाममात्र को ही पालन हो पाता है।

3. स्वीकृति का सिद्धान्त- भारत में वैधानिक दृष्टि से स्वीकृति के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से अपनाया गया हैं इसके अन्तर्गत संसद अथवा विधानसभा से व्ययों की स्वीकृति के पश्चात उनके सम्बन्ध में प्रशासकीय स्वीकृति और तकनीकी स्वीकृति पर भी जोर दिया जाता है। स्वीकृति के सिद्धान्त के पालन की जांच के लिए अकेक्षण का प्रावधान भी है।

4. बचत का सिद्धान्त– भारत एक विकासशील राष्ट्र है और आर्थिक नियोजन के माध्यम से विकास योजनाओं में संलग्न है। इस दृष्टि से भारत में बचत के सिद्धान्त का पालन नहीं हो पाया है और प्रायः ज्यों और केन्द्रीय सरकार द्वारा घाटे की वित्त व्यवस्था की नीति अपनायी जा रही है।

5. लोच का सिद्धान्त- इस सिद्धान्त को आंशिक रूप से ही अपनाना सम्भव हो सका है, क्योंकि सरकारी कार्य क्षेत्र और उत्तरदायित्वों में वृद्धि होने के कारण व्यय निरन्तर बढते रहे है। और आय कम होने पर व्ययों को उसी के अनुसार कम करने में कठिनाइयां रही है।

6. उत्पादन का सिद्धान्त– सरकार ने नीति के रूप में उत्पादकता के सिद्धान्त को अपनाया है लेकिन मितव्ययिता के सिद्धान्त का पूरा पालन न होने के कारण उत्पादकता के सिद्धान्त का भी पूरी तरह पालन नहीं हो पाता।

7. समान वितरण का सिद्धान्त- इस सिद्धान्त का एक बडी सीमा तक पालन किया गया है और पिछड़े, अविकसित तथा पहाड़ी क्षेत्रों और निर्धन वर्गो पर बड़ी मात्रा में व्यय किया जा रहा है।

8. समन्वय का सिद्धान्त- इस सिद्धान्त को भी लगभग पूरी तरह अपनाया गया है। केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों के मध्य आय और व्ययों के स्रोतों के स्पष्ट विभाजन तथा उचित समायोजन की व्यवस्था है।

6.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्रश्न संख्या-1 लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता को संक्षेप में लिखो?

प्रश्न संख्या-2 वैगनर का नियम किन सरकारों के सम्बन्ध में लागू होता है? संक्षेप में लिखो?

प्रश्न संख्या-3 वैगनर के अनुसार लोक व्यय में किस प्रकार की वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है?

प्रश्न संख्या-4 सही तथा गलत का चयन कीजिए

(क) वैगनर का नियम प्रगतिशील राष्ट्रों में लागू होता है।

(ख) वैगनर के अनुसार लोक व्यय में केवल गहन बृद्धि की प्रवृत्ति होती है

(ग) वाइजमैन पीकॉक का नियम 1890 से 1955 तक के लोक व्यय के अनुभवों पर आधारित है।

(घ) वाइजमैन पीकॉक के अनुसार लोक व्यय में बृद्धि स्थायी तथा पेढ़ीदार होती है।

प्रश्न संख्या-5 निम्न कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) The Growth of Public Expenditure in the United Kingdom पुस्तक सन्.....में प्रकाशित हुई।

(ख).....का नियम आपातकाल तथा मंदी की स्थिति में लागू होता है।

(ग) युद्ध उपरान्त जनता में कर सहनशीलता में ...होती है।

(घ) वैगनर के नियम में. .....तत्व को स्थान नहीं दिया गया ।(समय, बृद्धि, 1961, वाइजमैन पीकॉक)

6.7 सारांश (Summary)

लोक सत्ताओं द्वारा लोक व्यय को उचित तथा कुशलतापूर्ण बनाये रखने के लिए लोक व्यय के नियमों की अत्यन्त आवश्यकता है, ताकि लोक कल्याण के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकें। इसी सम्बन्ध में अनेक नियमों का प्रतिपादन किया गया है जिसमें वैगनर तथा वाइजमैन पीकॉक के नियम अपना अलग-अलग महत्वपूर्ण स्थान रखते है। वैगनर के नियम के अनुसार प्रगतिशील राष्ट्रों में केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकारों में विस्तृत तथा गहन स्तर पर लोक व्यय में वृद्धि करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। ये लोक व्यय में प्रवृत्ति अनेक प्रकार के परम्परागत तथा नवीन क्रियाकलापों द्वारा प्रभावित होती है। इसके साथ वैगनर के नियम में समयावधि की उपेक्षा की गयी है जो इस नियम को कमजोर बनाती है।

वाइजमैन पीकॉक का नियम "The Growth of Public Expenditure in the United Kingdom" में उनके अनुभवों पर आधारित था। इस नियम के अनुसार आपातकाल में लोक व्यय में वृद्धि स्थायी होने के साथ-साथ स्थिर न होकर पेढ़ीदार अर्थात् सीढीनुमा होती है तथा यह लोक व्यय की प्रवृत्ति जनता पर लगने वाले कर की सहनशीलता द्वारा प्रभावित होती है।अर्थशास्त्रियों द्वारा वाइजमैन पीकॉक के नियम की क्रियाशीलता में अनेक

प्रकार केअन्य तत्वों जैसे शहरीकरण, औद्योगीकरण, बढ़ती जनसंख्या एवं उसकी आदतें आदि को शामिल न करने की आलोचना की है।

6.8 शब्दावली (Glossary)

- **आर्थिक विकास-** आर्थिक क्षेत्रों में दीर्घकालीन संस्थागत परिवर्तन ही आर्थिक विकास है परन्तु यह परिवर्तन धनात्मक रूप से होते है।
- **केन्द्रीय तथा स्थानीय सरकार** - केन्द्रीय सरकार से तात्पर्य राष्ट्रीय स्तर की सरकार से तथा स्थानीय सरकार से तात्पर्य ग्रामीण तथा शहरी निकायों की सरकारों से है।
- **विस्तृत और गहन वृद्धि-** विस्तृत वृद्धि से तात्पर्य नये कार्यो एवं मदों पर व्यय वृद्धि से तथा गहन वृद्धि से तात्पर्य पुरानी मदों पर पूर्व से अधिक व्यय करने से है।
- **धन का पुनर्वितरण-** धन के पुनर्वितरण से तात्पर्य लोगो की आय की संरचना में बदलाव से है। सामान्य रूप से गरीबी की आय में वृद्धि करने के प्रयास शामिल किये जाते है।
- **वैश्विक अर्थ व्यवस्था-** विश्व के राष्ट्रों की अर्थ व्यवस्थाओं का आपस में आर्थिक मुद्दों पर अन्तर्सम्बन्धित होना ही वैश्विक अर्थव्यवस्था कहलाता है।
- **निजीकरण-** सार्वजनिक संस्थाओं एवं उपक्रमों को निजी स्वामित्व एवं अधिकार में आना ही निजीकरण कहलाता है
- **आर्थिक सुधार-** देश की अर्थव्यवस्था में ऐसे सुधार जो आर्थिक विकास की गति को तीव्र करते है।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

हल- प्रश्न संख्या 4 का उत्तर- (क) सही, (ख) गलत, (ग) सही, (घ) सही

प्रश्न संख्या 5 का उत्तर– (क) 1961, (ख) वाइजमैन पीकॉक, (ग) वृद्धि, (घ) समय

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची (References /Bibliography)

• भाटिया, एच०एल (2006)-लोक वित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0

जंगपुरा, नई दिल्ली

• पंत, जे0सी0 (2005)-राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं

विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।।

• वार्ष्णेय, जे0सी0 (1997)- राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा।

• सिंह, एस0के0 (2013)-लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

6.11 सहायक/उपयोगी ग्रंथ (Useful/Helpful Text)

• दत्त एवं सुन्दरम (2011) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द एण्ड क0 लि0, नई दिल्ली।

• सेठी, टी0टी0 (2005)-मुद्रा बैकिंग एवं लोकवित्त लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता,संजय प्लेस, आगरा।।

• मिश्र, जगदीश नारायण (2011)–भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन, अंसारी रोड,

दरियागंज, नई दिल्ली।

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. लोक व्यय से सम्बन्धित वैगनर के नियम की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?

2. लोक व्यय के नियमों की आवश्यकता को बताते हुए वाइजमैन पीकॉक नियम की व्याख्या

कीजिए?

3. विकासशील देशों के संदर्भ में लोक व्यय के नियमों की प्रासंगिता को स्पष्ट कीजिए?

4. वैगनर तथा वाइजमैन पीकॉक के नियमों के मुख्य अन्तरों को स्पष्ट कीजिए?

इकाई- 7 लोक व्यय का प्रभाव – उत्पादन, वृद्धि, वितरण और स्थरीकरण

(Effects of Public Expenditure-Production, Growth, Distribution and Stabilization)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

7.2 उददेश्य(Objectives)

7.3 लोक व्यय के परिणाम

7.3.1 लोक व्यय और उत्पादन की धारणा

7.3.2 लोक व्यय और विकास की प्रवृत्ति

7.3.3 लोक व्यय और संसाधनों का आवंटन

7.4 लोक व्यय और आर्थिक स्थिरता

7.5 लोक व्यय के प्रभावों की सीमाएँ

7.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

7.7 सारांश(Summary)

7.8 शब्दावली(Glossary)

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची(References/Bibliography)

7.11 सहायक /उपयोगी पुस्तक सूची(Useful / Helpful text)

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह लोक व्यय खण्ड की सातवीं इकाई है जो लोक व्यय के प्रभावों पर आधारित है। उससे पहले की इकाई में आपने लोक व्यय के नियमों को अच्छी तरह समझा होगा, जिसमें वैगनर और वाइजमैन पीकॉक के नियमों पर मुख्य ध्यान दिया गया था। यह इकाई आपको लोक व्यय के अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों से परिचित कराएगी। इसमें वितरण, उत्पादन, बृद्धि और स्थिरीकरण पर पड़ने वाले प्रभाव शामिल हैं।लोक व्यय उत्पादन पर बड़ा प्रभाव डालता है। यह परोक्ष रूप से और प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। वृद्धि को तीव्र बनाने में जनता का खर्च बहुत फायदेमंद है।

स्थिरीकरण और समान आय वितरण के दौरान सरकारें जनव्यय को उपकरण मानती हैं। इसलिए, इन पक्षों पर आम व्यय के प्रभावों को नहीं भूलना चाहिए।लोक व्यय की अर्थव्यवस्था में उपयोगिता का अनुमान लगाने के

लिए आप उत्पादन, वृद्धि, वितरण तथा स्थिरीकरण पर पड़ने वाले लोक व्यय के प्रभावों का विश्लेषण कर सकते हैं। लोक व्यय से प्रभावित ये सभी पक्ष आपस में गहरी संबंध रखते हैं, जो प्रस्तुत इकाई से स्पष्ट होगा।

7.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप भली भांति समझ सकेंगे कि

- किस तरह और कैसे लोक व्यय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालता है?
- आप लोक व्यय का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों को भली भांति समझ सकेंगे और इसके स्वरूप को भी समझ सकेंगे।
- लोक व्यय का आर्थिक वृद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है? वितरण लोक व्यय द्वारा किस प्रकार प्रभावित होता है?
- लोक व्यय की सार्थकता और आर्थिक स्थायित्व पर इसका प्रभाव
- स्थिरीकरण, उत्पादन, वृद्धि और वितरण पर पड़ने वाले जन व्यय के प्रभाव किस सीमा तक प्रभावी होते हैं?

7.3 लोक व्यय के परिणाम

लोक व्यय पहले राज्य के क्रिया कलापों को चलाने का एक साधन था, लेकिन आज लोक व्यय सरकारों और राज्यों को चलाने का भी एक महत्वपूर्ण साधन है। लोक व्यय का प्रभाव विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं के अनुसार अलग-अलग स्तर पर पाया जाता है। इसलिए जन व्यय वर्तमान में महत्वपूर्ण है। लोक आगमन से अधिक लोक व्यय पर सरकारों का ध्यान है। लोक व्यय के प्रभाव से अर्थव्यवस्था का कोई भी क्षेत्र सुरक्षित नहीं है। आपको यहां पर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है कि लोक व्यय के प्रभाव दो रूपों में पड़ते है पहला प्रभाव आपको स्पष्ट रूप से दिखाई देते है तथा दूसरे प्रभाव पर आम जनता की नजर पहुँचना अधिक आसान नहीं है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरा प्रभाव पहले प्रभावों से कमजोर है। लोक व्यय का कोई भी प्रभाव एक दूसरे से कितना प्रबल व निर्बल है यह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रभावित होने वाला क्षेत्र कितना संवेदनशील क्षेत्र है? लोक व्यय के प्रभावों की विवेचना आगे के शीर्षकों के अन्तर्गत भली भांति रूप से स्पष्ट की जा सकती हैं।

7.3.1 लोक व्यय और उत्पादन की धारणा

यहां आप लोक व्यय उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों से परिचित होंगे। लोक व्यय का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों ने अतीत में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अर्थव्यवस्था किसी भी प्रकार की हो या कैसी भी हो? लोक व्यय के बिना उत्पादन पर कई निर्णय लेना असंभव है।

अर्थव्यवस्था के संसाधनों पर स्वामित्व अधिकार की स्थिति क्या है? यह लोक व्यय के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव से संबंधित एक महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार करना आपके लिए बहुत उपयोगी होगा। यदि संसाधनों पर निजी स्वामित्व तथा अधिकार है तो जनव्यय का प्रभाव उत्पादन पर अलग-अलग होगा, लेकिन यदि संसाधनों पर सरकार का स्वामित्व तथा अधिकार है तो जनव्यय का प्रभाव उत्पादन पर व्यापक और व्यापक होगा। साथ ही, आर्थिक नियमों की तरह उत्पादन केवल आर्थिक संसाधनों पर नहीं निर्भरता, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक संबंधों पर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है। मानवीय व्यवहार, जो लोगों के खर्च से काफी है, उत्पादन के लिए भी महत्वपूर्ण है। सरकारों का कर्तव्य है कि वे अपने नागरिकों की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हर संभव प्रयास करें। इस मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सरकार को ऐसे आवश्यक उत्पादन को नियंत्रित करना चाहिए। ऐसी परिस्थिति में जनधन को उपकरण के रूप में अपनाना होगा, जिससे उत्पादन के सभी साधनों को एकत्रित और समायोजित किया जा सके। स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, सुरक्षा, सिचाई, न्यायालय, जल निकासी और अन्य सार्वजनिक आर्थिक सेवाओं के निर्माण पर भी सरकार को बहुत पैसा खर्च करना होगा।

आपको सामान्य रूप से समझाया जा सकता है कि इन उत्पादनों पर लोक व्यय का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। लोक व्यय जितना अधिक होगा उत्पादन का स्तर भी उतना ही ऊंचा होगा। सरकार कुछ उत्पादन कार्य को स्वयं अपने हाथ में नहीं लेती है लेकिन उत्पादन में वृद्धि करने के लिए निजी व्यक्तियों को प्रोत्साहन हेतु लोक व्यय का सहारा लेती है। यह लोक व्यय जनता में उत्पादन बढ़ाने हेतु प्रेरणा पैदा करता है।लोक व्यय का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव को प्रो0 डाल्टन के इस कथन से भली भांति समझा जा सकता है- "जब सरकार स्वास्थ्य, मकानों और सामाजिक सुरक्षा पर व्यय करती है या बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करती है तो यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विनियोग होता है जो भौतिक पूंजी के स्थान पर मानवीय पूंजी का निर्माण करता है। प्राचीन काल की अपेक्षा वर्तमान सरकारों द्वारा लोक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव इस दिशा में बढ़ता जा रहा है।

लोक व्यय उत्पादन पर कार्य निवेश तथा बचत के माध्यम से भी प्रभाव डालता है। आपको शायद यह ज्ञात हो कार्य करने की क्षमता निवेश का स्तर तथा बचत करने की क्षमता एक के स्तर तथा गुण्वत्ता दोनों पर ही प्रभाव डालता है। लोक व्यय कार्य, निवेश तथा बचत की क्षमताओं एवं स्तर को सीधे तौर पर प्रभावित करता है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना होता है कि सरकार द्धारा किये जाने वाला लोक व्यय कही लोगों के मध्य कार्य निवेश तथा बचत को विपरीत रूप से प्रभावित नहीं कर रहा है, ऐसी स्थिति में उत्पादन भी बढ़ने के स्थान पर घटना प्रारम्भ होता है। लोक व्यय में वृद्धि होने पर आर्थिक क्रियाओं का विस्तार होता है जिससे उत्पादन में वृद्धि होना स्वाभाविक है। सरकार को चाहिए कि लोक व्यय को उत्पादन कार्यों पर ही करना चाहिए। अपव्यय तथा अनुत्पादक कार्यों पर किये जाने वाले लोक व्यय का उत्पादन पर प्रभाव वांछित दिशा में नहीं पड़ सकता है। लोक व्यय का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव को एक अन्य दिशा में भी देखा गया है यदि लोक व्यय वर्तमान उत्पादन क्रिया के लिए किया गया है या भविष्य की उत्पादन योजनाओं के लिए। दोनों ही दिशाओं में लोक व्यय का उत्पादन पर अलग-अलग स्तर पर प्रभाव पड़ता है। लोक व्यय से उत्पादन के साधन वर्तमान से भविष्य की ओर हस्तान्तरित होते हैं। जब सरकार द्वारा पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के लिये किसी कार्य योजना पर बल देती है तब

संसाधनों का हस्तातरण भविष्य की ओर होता है और विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है परिणाम स्वरूप अर्थव्यवस्था में उत्पादन शक्ति का विकास होता है। साधनों के इस हस्तान्तरण के लिये भारी उद्योग एवं बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जाती हैं। इन भारी उद्योग एवं परियोजनाओं पर निजी क्षेत्र की अपेक्षा लोक सत्ताओं द्वारा सही ढंग से कुशलतापूर्ण कार्य किया जा सकता है क्योंकि इस का सम्बन्ध सामूहिक लोक कल्याण एवं राष्ट्र निमार्ण से होता है।

राज्य विकासशील देशों में निजी संस्थाओं और व्यक्तियों को ऋण और अनुदान देता है ताकि वे अपने-अपने क्षेत्र में साधनों का उपयोग कर उत्पादन के स्तर को बढ़ा सकें। मानव संसाधनों के विकास के लिए साधनों की हस्तांतरण, उत्पादन के स्तर पर अनुकूल प्रभाव दिखाने लगता है। डाल्टन ने इस मुद्दे पर कहा कि "जब सरकार स्वस्थ्य, मकानों और सामाजिक सुरक्षा पर व्यय करती है या बच्चों को निशुल्क शिक्षा प्रदान करती है तो यह एक बहुत महत्वपूर्ण विनियोग होता है जो भौतिक पूंजी के स्थान पर मानवीय पूंजी का निर्माण करता है।"

प्राचीन अर्थशास्त्रियों का मानना था कि साधनों के हस्तांतरण से आर्थिक विकास नहीं किया जा सकता और उन्होंने सरकारी हस्तक्षेप को न्यूनतम रखने पर जोर दिया। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि राज्य द्वारा साधनों का हस्तांतरण लाभकारी है या हानिकारक? इसका उत्तर देश की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, सुरक्षा व्यय को देखें। आज हर देश बाहरी आक्रमण से सुरक्षा बनाए रखना चाहता है और शीत-युद्ध की आशंका से बचने के लिए अपनी स्थिति को मजबूत करना चाहता है। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि सुरक्षा व्यय को कम करके इसे विकास कार्यों में लगाया जाए, तो देश तेजी से प्रगति कर सकता है। लेकिन यह हमेशा सत्य नहीं होता। यदि देश में शांति और सुरक्षा बनी रहती है, तो इसका निरंतर विकास होगा और देश आर्थिक प्रगति करेगा। इस प्रकार, सुरक्षा व्यय आवश्यक और उत्पादक होता है, लेकिन यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि सुरक्षा व्यय एक सीमा से अधिक न बढ़े। यदि सभी राष्ट्र इस पर सहमत हो जाएं कि 'सुरक्षा परिषद' की तरह एक 'विश्व सेना' का गठन किया जाए, जो सभी देशों की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होगी, और इसके बावजूद कोई राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिए अतिरिक्त व्यय करता है, तो ऐसा सुरक्षा व्यय अनुत्पादक होगा।संक्षेप में, कहा जा सकता है कि यदि सरकार सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए राजनीतिक स्वार्थों से अलग होकर सार्वजनिक व्यय करे तो प्रत्येक प्रकार का सार्वजनिक व्यय उत्पादक हो सकता है।

7.3.2 लोक व्यय और विकास की प्रवृत्ति

यहाँ आपको गंभीरता से विचार करना होगा कि लोक व्यय का वृद्धि पर प्रभाव मुख्य रूप से विकासशील या पिछड़े देशों से जुड़ा है। इन देशों को पूंजी की कमी के कारण बेरोजगारी और गरीबी जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लोक व्यय और वृद्धि के संबंध में लेविस का यह कथन ध्यान देने योग्य है: "अर्द्धविकसित देशों में विकास कार्यक्रमों को इस तरह लागू करना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का समान रूप से विकास हो, ताकि उद्योग और कृषि, उत्पादन और उपभोग, तथा उत्पादन और निर्यात में उचित संतुलन बनाए रखा जा सके।"

उक्त कथन के आधार पर आप समझ सकते हैं कि लोक व्यय का वृद्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। केवल उत्पादन बढ़ाने से वृद्धि की कल्पना पूरी नहीं हो सकती; इसके लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में संतुलन स्थापित करना अत्यंत आवश्यक है। सभी अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि लोक व्यय आर्थिक वृद्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। वृद्धि को बनाए रखने के लिए, बजट में लोक व्यय को स्थिर रखते हुए और नई विकास मदों पर उसका आवंटन करके आर्थिक वृद्धि को तेजी से बढ़ाया जा सकता है। वर्तमान में, लोक व्यय आर्थिक वृद्धि के लिए एक आवश्यक और प्रभावी उपाय है।

7.3.3 लोक व्यय और संसाधनों का आवंटन

"लोक व्यय के उत्पादन और वृद्धि पर प्रभावों का अध्ययन करने के बाद, आप अब लोक व्यय के वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों को अच्छी तरह से समझ सकेंगे। सामान्यतः, कर व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन और सुधार करके ही सरकारें आय और धन के असमान वितरण को कम करने का प्रयास करती हैं। वर्तमान में, ऐसा प्रतीत होता है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में असमान वितरण की समस्या को हल करने के लिए सरकारी प्रयास सरकारी कार्यों के संचालन का एक उपकरण बनते जा रहे हैं। किसी भी अर्थव्यवस्था में धन के समान वितरण की कल्पना करना अर्थव्यवस्था और सरकार दोनों के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता है।"

विकसित देशों में असमान वितरण की समस्या को कम करने के लिए प्रगतिशील करों का उपयोग प्राथमिकता प्राप्त करता है। हालांकि, यदि निर्धनों पर करों का भार हटा दिया जाए, तो इसे केवल एक अनुदान के रूप में देखा जा सकता है, क्योंकि करों को हटाने से किसी देश में गरीबी और बेरोजगारी को दूर नहीं किया जा सकता। यदि हम लोक व्यय के प्रभावों पर ध्यान केंद्रित करें, तो विकासशील देशों में प्रगतिशील कर प्रणाली की तरह या उससे भी अधिक लोक व्यय आय के असमान वितरण को कम करने में सहायक होता है। प्रगतिशील सरकारें लोक व्यय को गरीबी दूर करने के एक प्रभावी उपाय के रूप में अपनाती हैं।

यहाँ एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लोक व्यय किसी भी वर्ग या मद पर किया जाए, लेकिन इसका अंतिम प्रभाव गरीबों और बेरोजगारों पर सकारात्मक रूप से पड़ता है। अर्थव्यवस्था में उत्पादन और बाजार व्यवस्था में गरीबों की भूमिका को कम नहीं आँका जा सकता। दूसरी ओर, सरकार द्वारा लोक व्यय को सीधे गरीब वर्ग पर केंद्रित करने से असमान वितरण पर सकारात्मक प्रभाव डाला जाता है। अधिकांश प्रगतिशील सरकारें इस उपाय का उपयोग करती हैं। सार्वजनिक निर्माण कार्यों और नवीन विकासात्मक परियोजनाओं पर लोक व्यय के माध्यम से वितरण व्यवस्था में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है। लोकतांत्रिक सरकारें गरीबों के कल्याण के लिए विभिन्न विकासात्मक और गैर-विकासात्मक योजनाओं पर भारी मात्रा में लोक व्यय करती हैं, जिससे गरीबों की क्रय शक्ति में वृद्धि होती है और उनकी आय में सुधार होता है, साथ ही अर्थव्यवस्था में मांग और आपूर्ति के बीच संतुलन स्थापित करने में मदद मिलती है। लोक व्यय का वितरण पर कई तरीकों से प्रभाव पड़ता है, इसलिए इसके एकतरफा प्रभावों का मापन करना सरल नहीं होता, लेकिन यह अत्यंत आवश्यक है।

लोक व्यय के वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों के संबंध में प्रोफेसर पीगू का मानना है कि कोई भी ऐसा कार्य जो गरीबों की वास्तविक आय में वृद्धि करता है, सामान्यतः आर्थिक कल्याण को बढ़ाता है। लोक सत्ताएँ अपने नागरिकों को एक न्यूनतम जीवन स्तर का आश्वासन देती हैं और इसके लिए राजकोषीय नीतियों के अंतर्गत लोक व्यय का ऐसा प्रयोग करती हैं कि राज्य में बढ़ती आय और संपत्ति की अवांछनीय असमानता को दूर किया जा सके। लोक व्यय की वह विधि अधिक प्रभावशाली मानी जाती है जो आय की असमानता को कम करने में सक्षम हो। लोक व्यय के द्वारा वितरण को प्रभावित करने के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है, जो वितरण को विभिन्न रूपों में प्रभावित करती हैं।

- आनुपातिक लोक व्यय के माध्यम से वितरण को प्रभावित किया जाता है। इस प्रणाली के तहत समाज के व्यक्तियों को उनकी आय के अनुपात में लोक व्यय से संबंधित लाभ या सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। उदाहरण के लिए, मकान भत्ते में तीन प्रतिशत की वृद्धि की जाती है।
- प्रतिगामी व्यय के माध्यम से समाज के लोगों को उनकी प्राप्त आय की तुलना में कम अनुपात में लोक व्यय की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। विकासशील और पिछड़े देशों में गरीबों को आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अमीर वर्ग के लिए इस प्रतिगामी लोक व्यय की पद्धति अपनाई जाती है, क्योंकि अमीर वर्ग को उनकी आय की अपेक्षा कम अनुपात में लोक व्यय की सुविधाएँ मिलती हैं।
- प्रगतिशील लोक व्यय समाज में आय की तुलना में अधिक मात्रा में सुविधाएँ उपलब्ध कराता है। निर्धनों को उपलब्ध होने वाली सार्वजनिक सेवाएँ उनकी आय से अधिक मात्रा में प्रदान की जाती हैं। विकासशील और पिछड़े देशों में व्याप्त गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी जैसी समस्याओं के समाधान के लिए प्रगतिशील लोक व्यय अत्यंत प्रभावी सिद्ध होता है।

लोक व्यय का वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों के सम्बन्ध में निम्न तथ्य भी अत्यन्त उपयोगी है निर्धन वर्ग के लिए निःशुल्क व्यवस्था- सार्वजनिक व्यय की नीति में यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि निर्धन वर्ग के लिए शिक्षा, चिकित्सा एवं बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन की निःशुल्क व्यवस्था होनी चाहिए।

- उपादान - सरकार उत्पादकों और वितरकों को उपादान प्रदान करके यह सुनिश्चित कर सकती है कि निर्धन और मध्यम वर्ग के लोगों को खाद्यान्न, वस्त्र, और मकानों की उचित रियायती दरों पर उपलब्ध कराया जाए।
- नकद अनुदान - कुछ विशिष्ट वर्गों को प्रदान किए जाने वाले नकद अनुदान, जैसे वृद्धावस्था पेंशन, बीमारी भत्ता, बेरोजगारी भत्ता, मातृत्व भत्ता, विधवा पेंशन, और अपंग सहायता, वितरण व्यवस्था को संतुलित बनाने में मदद करते हैं।

- पिछड़े क्षेत्रों पर अधिक व्यय - धन के असमान वितरण को कम करने के लिए सरकार को अविकसित और पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इससे वहां के लोगों के जीवन स्तर में सुधार होता है और आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है।
- लघु और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन - यदि सरकार विभिन्न वित्तीय सहायता और प्रोत्साहनों के माध्यम से लघु और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देती है, तो इससे सम्पत्ति के वितरण में सुधार होता है।
- उचित वेतन, मजदूरी, और भत्ते - सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वेतन भोगी वर्ग को उचित वेतन, मजदूरी, और भत्ते मिलें। इसके लिए सरकार को निश्चित रूप से व्ययों में वृद्धि करनी होगी। निजी उपक्रमों में इससे उद्योगपतियों से कर्मचारियों के आय का उचित प्रवाह बना रहता है। लोक व्यय के वितरण पर प्रभाव के संबंध में लुट्ज का यह कथन उपयोगी है: "सार्वजनिक धन के वितरण की स्थायी नीति अपनाने से देश को हानि होगी और यदि इसी उद्देश्य से व्यय किया जाए, तो सरकार का अधिकांश व्यय अनुत्पादक माना जाएगा।" इसी संदर्भ में ब्यूहलर ने स्पष्ट किया कि धन के असमानताओं को कम करने के लिए सरकार को गरीबों पर व्यय करके और धनी वर्ग पर अधिक कर लगाकर कुछ समय तक इस नीति को लागू करना चाहिए।

आपको यहां पर लोक व्यय तथा वितरण के समबन्ध में कीन्स के विचार को ही ध्यान में रखना होगा। कीन्स के अनुसार निर्धनों में धनी व्यक्तियों की अपेक्षा उपभोग पर व्यय करने की अधिक प्रव्रत्ति पायी जाती है और इसी कारण जब धनी वर्ग से धन ले कर गरीबों पर व्यय किया जायेगा तो देश में व्यय के धन की मात्रा बढ़ेगी जिससे उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होगी।

7.4 लोक व्यय और आर्थिक स्थिरता

अब आप अर्थव्यवस्थाओं के स्थिरीकरण पर लोक व्यय के पड़ने वाले प्रभावों को भली भांति समझ सकेंगे। आपको यहां पर यह ध्यान देना होगा कि यह आवश्यक नहीं है कि लोक व्यय का प्रभाव सदैव सकारात्मक ही पाय जाय। स्थिरीकरण की समस्या कोई नई समस्या नहीं है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान में भी विकसित देशों के साथ विकासशील देश भी इस समस्या के समाधान के लिए लोक आगम की व्यवस्था के साथ-साथ लोक व्यय की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। सामान रूप से अर्थव्यवस्था को मंदी व तेजी की अनावश्यक अव्यवस्थाओं से बचाना ही स्थिरीकरण कहा जा सकता है जिसके लिए लोक व्यय को एक आवश्यक उपकरण बनाया गया है।

विकसित देशों में, रोजगार और वृद्धि की दर अक्सर चरम पर होती है, जिससे व्यापारिक चक्र की समस्याएं सामान्य होती हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए लोक व्यय को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। वहीं, विकासशील देशों में इन समस्याओं का समाधान करारोपण और लोक व्यय दोनों के समन्वय से किया जाता है। विकासशील देशों में गरीबी, बेरोजगारी और संस्थागत विकास से जुड़ी कई समस्याएं होती हैं। इन समस्याओं

के समाधान और लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए, विकासात्मक सरकारें अपने कार्यों का विस्तार करती हैं, जो आर्थिक अस्थिरता पैदा कर सकती है।

आर्थिक अस्थिरता को दूर करने के लिए, करारोपण व्यवस्था के साथ बढ़ते लोक व्यय को सहारा लिया जाता है। लेकिन सरकारों के सामने लोक व्यय के मदों का चयन और आवंटन की समस्या बनी रहती है। एक ओर, लोक कल्याणकारी योजनाओं के लिए मांग सृजित करने के लिए भारी मात्रा में व्यय किया जाता है, जबकि दूसरी ओर, पूर्ति पक्ष को संतुलित करने के लिए पूंजीगत व्यय किया जाता है। मंदी की अवस्था में, मांग सृजित करने और क्रय शक्ति बढ़ाने के लिए भारी मात्रा में लोक व्यय किया जाता है। तेजी की अवस्था में, लोक व्यय में कमी संभव नहीं होती, लेकिन आवश्यक परिवर्तन किए जाते हैं ताकि आर्थिक स्थिरता बनाए रखी जा सके।

आर्थिक मंदी के दौरान, वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में गिरावट आती है, जिससे व्यवसायों को हानि होती है और निराशा का माहौल बनता है। यह मंदी उत्पादन और रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, जिससे जनता की क्रय शक्ति घट जाती है।

आपको शायद ध्यान हो कि लोक व्यय के द्वारा जनता में क्रय शक्ति बढ़ जाती है जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग में वृद्धि हो जाती है। इस लोक व्यय के द्वारा बढ़ी हुई क्रय शक्ति का प्रभाव अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर अलग-अलग रूपों में सकारात्मक स्तर पर पड़ता है। लोक व्यय में वृद्धि होने से उपभोग का स्तर बढ़ जाता है जिससे निजी एवं सार्वजनिक विनियोग को प्रोत्साहन मिलता है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के साथ पूर्ण विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भी मुद्रा स्फीर्ति की स्थितियां आर्थिक अस्थिरता पैदा करती हैं | जिसे राजकोशीय नीति के माध्यम से नियन्त्रित किया जाता है। राजकोषीय नीति में लोक व्यय को एक महत्वपूर्ण एवं कारगर उपाय के रूप में प्रयोग किया जाता है। मन्दी काल में उठाये गये लोक व्यय सम्बन्धी कदमो के विपरीत इस स्थिति में लोक व्यय में कमी की जाती है। राजकीय व्यय को कम करके मुद्रा स्फीर्ति के खतरनाक प्रभावों को एक बड़ी सीमा तक कम किया जाता है।

आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिये इस बात का विशेष ध्यान रखना होता है कि मन्दी या तेजी की स्थिति में लोक व्यय से सम्बन्धित निर्णय इस प्रकार लिया जाये कि उसका प्रभाव अर्थव्यवस्था में एक तरफा न हो जाये अन्यथा आर्थिक अस्थिरता - मन्दी और तेजी के बीच सदैव बनी रहेगी।

7.5 लोक व्यय के प्रभावों की सीमाएं

इस इकाई के प्रारंभ में हमने लोक व्यय के उत्पादन, वितरण, और अन्य पहलुओं पर इसके प्रभावों का अध्ययन किया। हालांकि, यह भी ध्यान देने योग्य है कि जिन उद्देश्यों के लिए सरकार लोक व्यय करती है, वे प्रभाव हमेशा पूरी तरह से प्रभावी नहीं हो पाते। जनता के व्यवहार और गैर-आर्थिक क्रियाकलाप लोक व्यय के प्रभावों को कमजोर कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि सरकारी योजनाओं और क्रियाकलापों का उचित क्रियान्वयन नहीं होता, तो भी लोक व्यय के प्रभाव सीमित रह सकते हैं।

एक और महत्वपूर्ण सीमा यह है कि यदि लोक व्यय के उद्देश्यों को समयबद्ध तरीके से पूरा नहीं किया जाता, तो इसके प्रभाव एक बड़ी सीमा तक प्रभावित हो सकते हैं। सामान्यतः, ये प्रभाव नकारात्मक या प्रतिकूल रूप में सामने आ सकते हैं। इसके अलावा, अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप और प्राकृतिक आपदाओं जैसे कारण भी लोक व्यय के प्रभावों को पूरी तरह से महसूस करने में बाधा डाल सकते हैं।

7.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Question)

निम्न प्रश्नों का संक्षेप में उत्तर दीजिए।

प्रश्न संख्या 1- लोक व्यय अर्थव्यवस्था के किन-किन क्षेत्रों को प्रभावित करता है? संक्षेप में लिखो।

प्रश्न संख्या 2- लोक व्यय उत्पादन को किस दिशा में प्रभावित करता है?

प्रश्न संख्या 3– लोक व्यय कौन-कौन सी सेवाओं के लिए प्रयोग किया जाता है?

प्रश्न संख्या 4- नयी विकास योजनाओं पर लोक व्यय को क्यों किया जाता है?

प्रश्न संख्या 5- लोक व्यय के प्रभावों को सीमित करने वाले कारको/तत्वों को संक्षेप में बताओ?

प्रश्न संख्या 6– नीचे दिये कथनों में सही तथा गलत का चयन करों|

(क) लोक व्यय अनुत्पादक भी हो सकता है

(ख) लोक व्यय स्थिरीकरण में सहायक नहीं है

(ग) लोक व्यय धन के असमान वितरण को बनाता है

(घ) आर्थिक बृद्धि पर बढ़ाने में लोक व्यय का प्रभाव अनुकूल होता है

प्रश्न संख्या 7– नीचे दिये गये कथनों में रिक्त स्थानों को पूरा करो।

(क) प्राकृतिक आपदाएँ लोक व्यय के प्रभावों को .....करते है।

(ख) स्थिरीकरण के लिए कर प्रणाली के साथ भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(ग) लोक व्यय.....तथा.....के अवांछित प्रभावों को नियंत्रित करने में सहायक है।

(घ).....तथा .. .. तत्वों पर भी लोक व्यय के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों की निर्भरता पायी जाती है।

7.7 सारांश (Summary)

लोक व्यय के प्रभाव विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति और स्वरूप के आधार पर अलग-अलग स्तरों और मात्रा में होते हैं। सामान्यतः, लोक व्यय का उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है; उच्च स्तर के लोक व्यय और उत्पादक गतिविधियों के माध्यम से उत्पादन स्तर में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त, लोक व्यय निवेश और बचत के माध्यम से भी उत्पादन पर परोक्ष रूप से सकारात्मक प्रभाव डालता है और आर्थिक वृद्धि को तेज करता है।

विकासशील देशों में, जहाँ आय के असमान वितरण की समस्याएँ होती हैं, लोक व्यय को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। यहाँ, करारोपण के साथ-साथ लोक व्यय का व्यापक उपयोग किया जाता है ताकि सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को कम किया जा सके।

आर्थिक अस्थिरता, जैसे मंदी और तेजी के अवांछनीय प्रभावों, से निपटने के लिए भी लोक व्यय का सहारा लिया जाता है। लोक व्यय उत्पादन, वितरण, वृद्धि, और स्थिरीकरण पर विभिन्न प्रकार से प्रभाव डालता है, और यह सामूहिक रूप से देश की आर्थिक स्थिरता में सहायता करता है। इसलिए, लोक व्यय का प्रभाव विभिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न रूपों में देखा जा सकता है।

7.8 शब्दावली (Glossary)

- लोक व्यय- लोक व्यय से हमारा तात्पर्य उस व्यय से है जो सरकारों द्वारा किया जाता है। यह व्यय देश के नागरिकों की रक्षा करने एवं उनके सामाजिक आर्थिक कल्याण हेतु किया जाता है।
- उत्पादन- उत्पादन से तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं को पैदा करने या नया रूप देने से है जिससे उपभोक्ताओं को पूर्व की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक संतुष्टि प्राप्त होती है।
- वितरण- वर्तमान में आय व सम्पत्ति के वितरण को परिवर्तन करना वितरण कहलाता है ताकि आय व सम्पत्ति जनता में न्यायपूर्ण वितरित हो सके।
- वृद्धि- केवल उत्पादन में होने वाली कृत्रिम व स्थिर गति वाले परिवर्तन को आर्थिक वृद्धि कहा जाता है। संस्थागत रूप से दीर्घकालीन परिवर्तन इसमें शामिल नहीं किये जाते है।
- स्थिरीकरण- स्थिरीकरण से तात्पर्य अर्थव्यवस्था की उस गति से है जिसमें अर्थव्यवस्था बिना किसी विशेष उतार चढाव से लोगों को रोजगार, आय व विकास की स्थितियां उत्पन्न कर सके।
- मानवीय पूंजी- मानवीय पूंजी के अन्तर्गत कार्यशील मानव संसाधनों में कार्यकुशलता, विवेकपूर्ण निर्णय क्षमता, शारीरिक विकास, तथा स्वस्थ जीवन चर्या आदि में वृद्धि को शामिल किया जाता है।
- उत्पादक व अनत्पादक व्यय- ऐसा लोक व्यय जिससे अर्थव्यवस्था में उत्पादन में वृद्धि होती है उसे उत्पादक व्यय कहा जाता है जबकि ऐसी मदों पर किया गया व्यय जो किसी प्रकार का उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव नहीं डालता है अनुत्पादक व्यय कहलाता है।

- पूंजी- धन का वह भाग जो उत्पादन कार्य में लगा होता है तथा आर्थिक वृद्धि में सहायक है, पूंजी कहलाता है।
- व्यापार चक्र- अर्थव्यवस्था में आवश्यक गति के वितरीत अवांछित मंदी तथा तेजी की स्थितियों का क्रमवत पाया जाना व्यापार चक्र कहलाता है।
- आर्थिक विकास- आर्थिक विकास से हमारा तात्पर्य उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ तकनीकी एवं संस्थागत रूप से होने वाली संरचनात्मक परिवर्तनों से है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

हल- प्रश्न संख्या 6 का उत्तर

क. सही, ख. गलत, ग. गलत, घ. सही

हल- प्रश्न संख्या 7 का उत्तर

क. मंदी-तेजी, ख. सामाजिक धार्मिक, ग. लोकप्रिय, घ. सीमित

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची (References /Bibliography)

- भाटिया, एच०एल (2006)-लोक वित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0 जंगपुरा, नई दिल्ली।
- पंत, जे0सी0 (2005)-राजस्व (Public Finance),लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- वार्ष्णेय, जे0सी0 (1997)-राजस्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन हास्पीटल रोड, आगरा।
- सिंह, एस0के0 (2013)-लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।

7.11 सहायक/उपयोगी ग्रंथ (Useful/Helpful Text)

- दत्त एवं सुन्दरम (2011)-भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द एण्ड क0 लि0, नई दिल्ली।
- सेठी, टी0टी0 (2005)-मुद्रा बैकिंग एवं लोकवित्त लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, संजय प्लेस, आगरा।
- मिश्र, जगदीश नारायण (2011)–भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महल पब्लिशर्स, हरिसदन, अंसारी रोड,

दरियागंज, नई दिल्ली।

7.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

प्रश्न संख्या 1- लोक व्यय के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए?

प्रश्न संख्या 2- लोक व्यय का आर्थिक वृद्धि पर किस रूप में प्रभाव पड़ता है?स्पष्ट करो

प्रश्न संख्या 3- लोक व्यय का वितरण के साथ सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए? प्रश्न संख्या 4- आर्थिक स्थायित्व के लिए लोक व्यय की उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न संख्या 4- लोक व्यय के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों को सीमित करने वाले तत्वों की विवेचना कीजिए?

इकाई - 8 कार्यात्मक वित्त (Functional Finance)

8.1 प्रस्तावना(Introduction)

8.2 उद्देश्य(Objectives)

8.3 कार्यात्मक वित्त की अवधारणा

8.4 कार्यात्मक वित्त: प्रमुख उद्देश्य और प्रभाव

8.5 वित्तीय कार्यक्षमता: उपकरण और उनकी भूमिका

8.6 अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक वित्त की प्रासंगिकता

8.7 विकसित देशों में कार्यात्मक वित्त की सीमाओं का विश्लेषण

8.8 कार्यशील वित्त

8.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

8.10 सारांश(Summary)

8.11 शब्दावली(Glossary)

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers for Practice Questions)

8.13 संदर्भ सहित ग्रन्थ (References/Bibliography)

8.14 सहायक/ उपयोगी ग्रंथ सूची (Useful / Helpful text)

8.15 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाइयों में सार्वजनिक वित्त से संबंधित विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है| इस इकाई में सार्वजनिक वित्त के कार्यात्मक पहलू पर चर्चा की जाएगी।

प्राचीन काल में, जब लोक वित्त का क्षेत्र सीमित था, अर्थशास्त्री केवल यह मानते थे कि राजकोषीय नीति का मुख्य कार्य आय और व्यय का लेखा-जोखा करना है। उनके अनुसार, सार्वजनिक वित्त का संबंध केवल सार्वजनिक प्रक्रियाओं के अंतर्गत आय प्राप्त करके उसे व्यय करने से था। परंपरावादी अर्थशास्त्री, जैसे एडम स्मिथ, रिकार्डो, और मिल, करारोपण को केवल आय का साधन मानते थे, और इस प्रकार लोक वित्त अकार्यात्मक वित्त के रूप में कार्य करता था।

हालांकि, जैसे-जैसे सरकार के कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ और सरकारी हस्तक्षेप बढ़ा, सार्वजनिक वित्त की प्रकृति में भी बदलाव आया। "कार्यात्मक वित्त" शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रोफेसर लर्नर ने किया था, लेकिन कार्यात्मक वित्त का श्रेय जॉन मेनार्ड कीन्स को दिया जाता है। कीन्स ने वित्त का उपयोग मंदी और बेरोजगारी को दूर करने के लिए किया। कीन्स ने जिन सामान्य उपकरणों पर चर्चा की, वे कार्यात्मक वित्त के अंतर्गत आते हैं।

8.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह जान सकेगे कि :

- ✓ कार्यात्मक वित्त क्या है

- ✓ कार्यात्मक वित्त के उद्देश्य क्या है
- ✓ कार्यात्मक वित्त के विभिन्न उपकरण क्या है
- ✓ कार्यात्मक वित्त के संदर्भ में प्रो0 लर्नर एवं कीन्स के क्या विचार है
- ✓ अल्पविकसित एवं विकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक वित्त की क्या अनुरूपता है
- ✓ कार्यात्मक वित्त एवं कार्यशील वित्त में क्या अंतर है

8.3 कार्यात्मक वित्त की अवधारणा (Concept of Functional Finance)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, करारोपण का मुख्य उद्देश्य आर्थिक असमानताओं को कम करना और आर्थिक क्रियाओं का नियमन करना है। लार्ड कीन्स पहले ऐसे अर्थशास्त्री थे जिन्होंने इस विचार पर जोर दिया कि राजस्व नीतियाँ आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित कर सकती हैं। कीन्स के बाद, प्रोफेसर लर्नर ने इस विचार को एक आधुनिक दृष्टिकोण प्रदान किया। प्रोफेसर लर्नर के अनुसार, कार्यात्मक वित्त उस तरीके को दर्शाता है जिससे सार्वजनिक वित्तीय उपाय समाज में प्रभावी होते हैं। उनका मानना था कि राजकोषीय कार्यवाहियों का मूल्यांकन केवल उनके प्रभावों के आधार पर किया जाना चाहिए।

प्रोफेसर लर्नर ने कार्यात्मक वित्त का मतलब बताया कि अर्थव्यवस्था में राजकोषीय कार्यवाही किस प्रकार से क्रियाशील रहती हैं। आजकल राज्य के सामने कई उद्देश्य हैं, जैसे बेरोजगारी को कम करना, सार्वजनिक कल्याण योजनाओं को लागू करना, यातायात के साधनों का विकास, निजी और सार्वजनिक उद्योगों को प्रोत्साहित करना, और वितरण असमानता को दूर करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोक वित्त का उपयोग किया जाता है, और इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए प्रयुक्त साधन कार्यात्मक वित्त के अंतर्गत आते हैं।

कार्यात्मक वित्त के अर्थ को निम्न बातो से स्पष्ट किया जा सकता है।

- कर (Tax): कार्यात्मक वित्त के अंतर्गत करों का मुख्य उद्देश्य केवल आय प्राप्त करना नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से कुछ सामाजिक उद्देश्यों की भी पूर्ति करना है। करों के माध्यम से आय में असमानता को कम किया जा सकता है। मुद्रास्फीति की स्थिति में, करों के जरिए अतिरिक्त क्रय शक्ति को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे समग्र अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। कार्यात्मक वित्त की वजह से करारोपण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- ऋण (Public Debt): कार्यात्मक वित्त यह स्पष्ट करता है कि ऋण का अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए और यह भी बताता है कि ऋण का उपयोग किस प्रकार और कब किया जाना चाहिए।
- सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure): यदि सार्वजनिक व्यय से अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, तो इसे जारी रखा जाना चाहिए, अन्यथा नहीं। कार्यात्मक वित्त की मदद से सार्वजनिक

व्यय को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। यदि उत्पादन, उपभोग, रोजगार, और राष्ट्रीय आय में वृद्धि संभव हो, तो सार्वजनिक व्यय आर्थिक विकास को चरम सीमा तक पहुंचा सकता है।

कार्यात्मक वित्त इस सिद्धांत पर आधारित है कि बजट स्थिरता के साथ पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त और बनाए रखने के लिए एक प्रभावी उपकरण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, लोक वित्त मुद्रा स्फीति और मुद्रा अवस्फीति के मूल कारणों को दूर करता है, जिससे आर्थिक स्थिरता बनी रहती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रोफेसर लर्नर ने सुझाव दिया है कि कार्यात्मक वित्त के तहत सरकार की गतिविधियों के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाना चाहिए।

राज्य को सबसे पहली जिम्मेदारी यह है कि वह खर्च को इस प्रकार नियमित तथा नियन्त्रित करें कि सभी वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति प्रचलित मूल्यों पर ही पूरी तरह खप जाय। खर्च की मात्रा अधिक होने पर मुद्रास्फीति उत्पन्न हो जायेगी और यदि कम हुयी तो मुद्रा अवस्फीति और उसके परिणाम स्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न होगी।

8.4 कार्यात्मक वित्त: प्रमुख उद्देश्य और प्रभाव

कार्यात्मक वित्त के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है।

1. **रोजगार में वृद्धि:** बेरोजगारी देश के लिए एक बड़ी समस्या है। कार्यात्मक वित्त रोजगार के स्तर को बढ़ाने में मदद करता है।
2. **आय स्तर में वृद्धि:** रोजगार से आय प्राप्त होती है, लेकिन व्यक्ति अपनी आय को भी बढ़ाने का प्रयास करता है। सरकार बजट में बदलाव करके आय स्तर को प्रभावित करती है।
3. **आर्थिक विकास:** आर्थिक विकास में सार्वजनिक व्यय, आय, और ऋण का महत्वपूर्ण योगदान होता है। कार्यात्मक वित्त के माध्यम से इस विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है।
4. **बचत में वृद्धि:** आर्थिक विकास से आय स्तर बढ़ता है, जिससे बचत भी बढ़ सकती है। इसके अलावा, करारोपण के माध्यम से उपभोग को कम करके भी बचत को बढ़ाया जा सकता है।
5. **व्यापार चक्रों पर नियंत्रण:** पूंजीवादी व्यवस्था में व्यापार चक्रों की पुनरावृत्ति होती है। सार्वजनिक व्यय में बदलाव करके व्यापार चक्रों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

8.5 वित्तीय कार्यक्षमता: उपकरण और उनकी भूमिका

"जैसे युद्ध में बारूद महत्वपूर्ण होता है, वैसे ही आज के समय में कार्यात्मक वित्त अत्यंत उपयोगी है। जब किसी देश में आर्थिक अस्थिरता, जैसे मुद्रा प्रसार, मुद्रा-संकुचन, मंदी, बेरोजगारी, या उत्पादन में कमी जैसी स्थिति उत्पन्न होती है, तब इन समस्याओं को नियंत्रित करने के लिए कार्यात्मक वित्त की सहायता ली जाती है।

वित्तीय कार्यक्षमता का अर्थ है, सरकार के वित्तीय उपकरणों का उपयोग करके अर्थव्यवस्था को स्थिर और संतुलित बनाए रखना। जब किसी देश में आर्थिक अस्थिरता, जैसे कि मुद्रास्फीति, मंदी, बेरोजगारी, या उत्पादन में

गिरावट जैसी चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं, तब सरकार अपने विभिन्न वित्तीय उपकरणों का उपयोग करके स्थिति को नियंत्रित करने का प्रयास करती है। इन उपकरणों का सही और प्रभावी उपयोग करने से अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाया जा सकता है। अतीत में कुछ प्रमुख अर्थशास्त्री सरकारी हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करते थे और इसे विकास के लिए हानिकारक मानते थे, क्योंकि उनका मानना था कि इससे प्रतियोगिता बाधित होती है। वे मानते थे कि सरकारी हस्तक्षेप में न तो सार्वजनिक भावना होती है और न ही स्वार्थ। हालांकि, आज के समय में लोक कल्याण और राज्य के विकास के साथ सरकारी हस्तक्षेप भी बढ़ गया है। आर्थिक संकट के समय सरकार चुप नहीं रह सकती। अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए सरकार निम्नलिखित उपकरणों का उपयोग करती है|

मुख्य वित्तीय उपकरण और उनकी भूमिका:

1. **करारोपण (Taxation):** करारोपण का उद्देश्य सरकार को आवश्यक राजस्व प्रदान करना है, ताकि वह अपने खर्चों को पूरा कर सके। करों के माध्यम से सरकार आय का पुनर्वितरण करती है, जिससे सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को कम करने में मदद मिलती है। जब अर्थव्यवस्था में अधिक मांग होती है, तो करों को बढ़ाकर इसे नियंत्रित किया जा सकता है, जबकि मंदी के समय करों में कटौती करके मांग को बढ़ावा दिया जा सकता है।
2. **सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure):** सार्वजनिक व्यय वह धन है जो सरकार विभिन्न योजनाओं, परियोजनाओं, और कल्याणकारी कार्यक्रमों पर खर्च करती है। यह व्यय अर्थव्यवस्था में मांग और रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आर्थिक मंदी के समय, सार्वजनिक व्यय बढ़ाने से अर्थव्यवस्था में नई जान डाली जा सकती है, जिससे रोजगार और उत्पादन बढ़ता है।
3. **सार्वजनिक ऋण (Public Debt):** सार्वजनिक ऋण वह राशि होती है जो सरकार अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए जनता, बैंक, या अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से उधार लेती है। यह एक महत्वपूर्ण उपकरण है, खासकर तब जब सरकार को अपने खर्चों को पूरा करने के लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती है। हालांकि, ऋण को नियंत्रित ढंग से लेना चाहिए, क्योंकि अधिक ऋण से देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ सकती है।
4. **घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing):** जब सरकार के खर्चे उसकी आय से अधिक हो जाते हैं, तो इस अंतर को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जाता है। इस वित्त व्यवस्था के तहत, सरकार नए नोट छाप सकती है या ऋण लेकर वित्तीय अंतर को पूरा कर सकती है। हालांकि, इस उपकरण का अत्यधिक उपयोग मुद्रास्फीति का कारण बन सकता है, इसलिए इसे सावधानीपूर्वक उपयोग किया जाता है।

ऊपर दिये गये उपकरणो की सहायता से रोजगार, आय की समानता, अल्पविकसित देशो में पूँजी का निर्माण एवं आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

8.6 अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में कार्यात्मक वित्त की प्रासंगिकता

विकासशील देश चक्रीय समस्याओं में फँसे होने के कारण अपना आर्थिक विकास करने की क्षमता नही रखते। इन देशो में पूंजी की कमी, निर्धनता, प्रति व्यक्ति न्यूनतम आय, जनसंख्या का आधिक्य, अशिक्षा कृषि का पिछड़ापन, परम्परावादी अर्थव्यवस्था, आदि अनेक ऐसी बाते है जो विकास में बाधक होती है। अतः विकासशील देशो में कार्यात्मक वित्त का मुख्य उद्देश्य पूंजी निर्माण तथा आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना है।

1. **अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए अनुपयुक्त:-** कार्यात्मक वित्त का सिद्धांत उस राजकोषीय नीति की कसौटी पर खरा नहीं उतरता जो एक विकसित अर्थव्यवस्था के लिए उपयुक्त होती है। आर्थिक विकास की आवश्यकताएँ संतुलित बजट के माध्यम से पूरी नहीं हो सकतीं। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में, राजकोषीय नीति का उद्देश्य निवेश और बचत के स्तर को निरंतर बढ़ाना होता है, जो कार्यात्मक वित्त के सिद्धांत से भिन्न है।
2. **व्यापक अर्थव्यवस्था पर आधारित:-** कार्यात्मक वित्त कीन्स के व्यापक अर्थव्यवस्था मॉडल पर आधारित है, जो मानता है कि अर्थव्यवस्था में विकास की एक स्थिर दर बनी रहे। यह अर्थव्यवस्था के समस्त व्यय को नियमित और नियंत्रित करके इस दर को बनाए रखने का प्रयास करता है। हालांकि, विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की आवश्यकताओं के लिए यह स्थिर मॉडल उपयुक्त नहीं है।
3. **अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में महत्व:-** अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में, मुख्य समस्या तेजी से विकास करने की होती है, न कि मुद्रास्फीति या मुद्रा अवस्फीति को रोकने की। इसके लिए निरंतर निवेश में वृद्धि और उपभोग में कमी आवश्यक है। इसलिए, इन अर्थव्यवस्थाओं में विकास की समस्या वास्तव में एक गतिशील आर्थिक समस्या होती है।
4. **व्यापक स्थिरता का आधार:-** कार्यात्मक वित्त का सिद्धांत व्यापक स्थिरता पर आधारित है, जबकि आर्थिक विकास के लिए व्यापक गतिशीलता आवश्यक होती है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में कुल व्यय को स्थिर करने का अर्थ होगा कि अर्थव्यवस्था स्थिर अवस्था में रह जाएगी, जो आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त नहीं है।
5. **कराधान का उपयुक्त प्रयोग नहीं:-** विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में कराधान का उपयोग संसाधनों की वृद्धि के लिए किया जाना चाहिए। सरकारी उधार का उपयोग संसाधनों को गतिशील बनाने के एक उपकरण के रूप में किया जाना चाहिए। हालांकि, कार्यात्मक वित्त इस पहलू को महत्व नहीं देता। जबकि विकासशील अर्थव्यवस्था में निवेश की मात्रा बढ़ने से मुद्रास्फीति का दबाव उत्पन्न हो सकता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि कुल व्यय में कटौती की जानी चाहिए जैसा कि कार्यात्मक वित्त में सुझाया गया है। आर्थिक विकास की कीमत पर मौद्रिक स्थिरता को प्राथमिकता देना उचित नहीं है।

सार्वजनिक व्यय, कराधान, सार्वजनिक ऋण, और उद्योग जैसे उपकरणों के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं है। बचतों को प्रोत्साहित करके और पूंजी निर्माण से निवेश को बढ़ाया जा सकता है। गुणक और त्वरक के सिद्धांतों

का उपयोग करके आर्थिक विकास को गति दी जा सकती है, जिससे विकासशील देश आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सकते हैं। इसके अलावा, कीमतों में वृद्धि को नियंत्रित करना और समाज में आय की विषमताओं को दूर करना भी विकासशील देशों में कार्यात्मक वित्त के उद्देश्य हो सकते हैं

8.7 विकसित देशों में कार्यात्मक वित्त की सीमाओं का विश्लेषण

कार्यात्मक वित्त का सिद्धांत, जो कि मुख्यतः कीन्सियन अर्थशास्त्र पर आधारित है, सरकार द्वारा आर्थिक स्थिरता और विकास को बनाए रखने के लिए अपनाए गए वित्तीय साधनों और नीतियों पर केंद्रित है। यह सिद्धांत विकसित और विकासशील दोनों तरह की अर्थव्यवस्थाओं में प्रासंगिक है, लेकिन इसकी सीमाएँ विकसित देशों में विशेष रूप से स्पष्ट होती हैं। इस लेख में, हम विकसित देशों में कार्यात्मक वित्त की सीमाओं का विश्लेषण करेंगे और यह समझने का प्रयास करेंगे कि क्यों यह सिद्धांत हमेशा प्रभावी नहीं होता।

1. मुद्रास्फीति का जोखिम: विकसित अर्थव्यवस्थाएँ आमतौर पर उच्च उत्पादकता और पूर्ण रोजगार के निकट होती हैं। ऐसे में, कार्यात्मक वित्त के तहत सरकारी खर्चों में वृद्धि मुद्रास्फीति का कारण बन सकती है। अधिक सरकारी खर्च से मांग बढ़ जाती है, लेकिन जब उत्पादन और रोजगार पहले से ही उच्च स्तर पर होते हैं, तो अतिरिक्त मांग केवल कीमतों को बढ़ाती है, जिससे मुद्रास्फीति का जोखिम बढ़ जाता है।

2. सार्वजनिक ऋण का दबाव: विकसित देशों में कार्यात्मक वित्त के तहत बार-बार घाटे में वित्त व्यवस्था का उपयोग करने से सार्वजनिक ऋण का स्तर बढ़ सकता है। अधिक ऋण के कारण सरकारों को ब्याज दरों में वृद्धि का सामना करना पड़ सकता है, जिससे दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता को खतरा हो सकता है। साथ ही, अधिक ऋण की स्थिति में भविष्य में कर दरें बढ़ाने की आवश्यकता हो सकती है, जो आर्थिक विकास को धीमा कर सकती है।

3. निजी क्षेत्र पर दबाव: विकसित अर्थव्यवस्थाओं में, कार्यात्मक वित्त के उपयोग से सरकारी हस्तक्षेप बढ़ जाता है, जो कभी-कभी निजी क्षेत्र के लिए प्रतिकूल हो सकता है। अधिक सरकारी खर्च और निवेश निजी क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा को कमजोर कर सकता है, जिससे बाजार की दक्षता प्रभावित होती है। यह निजी निवेश में कमी और नवाचार की गति को धीमा कर सकता है।

4. अर्थव्यवस्था की जटिलता: विकसित अर्थव्यवस्थाएँ अत्यधिक जटिल और विविध होती हैं। कार्यात्मक वित्त के तहत लागू की जाने वाली नीतियाँ हर क्षेत्र और उद्योग के लिए समान रूप से प्रभावी नहीं हो सकतीं। विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार की चुनौतियाँ और जरूरतें होती हैं, और एक आकार-फिट-सभी दृष्टिकोण से समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

5. राजनीतिक सीमाएँ: विकसित देशों में, कार्यात्मक वित्त के उपयोग के पीछे राजनीतिक चुनौतियाँ भी होती हैं। सरकारों को बजट घाटे और बढ़ते सार्वजनिक ऋण की वजह से आलोचना का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा, चुनावी राजनीति भी निर्णयों को प्रभावित कर सकती है, जिससे आर्थिक नीति में स्थिरता की कमी हो सकती है। राजनीतिक अस्थिरता के कारण, दीर्घकालिक आर्थिक नीतियों का कुशलतापूर्वक कार्यान्वयन कठिन हो सकता है।

6. निवेशकों का विश्वास: विकसित देशों में कार्यात्मक वित्त के अधिक उपयोग से घरेलू और अंतरराष्ट्रीय निवेशकों का विश्वास कमजोर हो सकता है। यदि निवेशकों को लगता है कि सरकार की वित्तीय नीतियाँ अस्थिर हैं या अत्यधिक जोखिम वाली हैं, तो वे अपने निवेश को कम कर सकते हैं या बाहर ले जा सकते हैं। इससे अर्थव्यवस्था में पूंजी प्रवाह पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

हालांकि कार्यात्मक वित्त सिद्धांत के कई लाभ हैं, विकसित देशों में इसकी सीमाएँ भी स्पष्ट हैं। मुद्रास्फीति का जोखिम, सार्वजनिक ऋण का दबाव, और निजी क्षेत्र पर प्रभाव जैसे कारक इसे कुछ स्थितियों में कम प्रभावी बना सकते हैं। इसके अलावा, अर्थव्यवस्था की जटिलता और राजनीतिक सीमाएँ भी कार्यात्मक वित्त के प्रभाव को सीमित कर सकती हैं। इसलिए, विकसित अर्थव्यवस्थाओं में इस सिद्धांत का उपयोग करते समय सावधानीपूर्वक विश्लेषण और संतुलित दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, ताकि दीर्घकालिक आर्थिक स्थिरता और विकास सुनिश्चित किया जा सके।

8.8 कार्यशील वित्त

8.8.1 प्रो0 बलजीत सिंह का दृष्टिकोण

प्रोफेसर बलराज सिंह ने कार्यात्मक वित्त को "कार्यशील वित्त" कहा है। उनके अनुसार, कार्यशील वित्त में हम वित्तीय विधियों और उपकरणों का उनकी कार्यक्षमता के आधार पर मूल्यांकन करते हैं और यह पता लगाते हैं कि ये उपकरण अर्थव्यवस्था के लिए कितने उपयोगी हैं। राजकोषीय नीति के साधनों की गतिशीलता को बनाए रखना और आर्थिक विकास में जो भूमिका निभाई जाती है, उसे कार्यशील वित्त कहा जाता है। कार्यशील वित्त में राज्य द्वारा राजकोषीय समायोजन किया जाता है, जिससे अर्थव्यवस्था में निवेश का निरंतर प्रवाह बना रहता है और उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग हो सके, ताकि राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सके।

8.8.2 कार्यशील वित्त की मान्यताएँ :

1. सार्वजनिक व्यय अपूर्ण होने से मांग एवं उत्पादन में साम्य की स्थिति नही होती है।

2. राष्ट्रीय आय बचत और विनियोग पर आधारित है।

3. विभिन्न वित्तीय रीतियाँ अर्थव्यवस्था में स्फूर्ति उत्पन्न करती है।

कार्यशील वित्त में ऐसे उपाय किये जाते है कि विनियोग सदैव होते रहे, इससे उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि होती रहे।

प्रो0 सिंह के अनुसार कीन्स एवं लर्नर के वित्तीय दृष्टिकोण केवल विकसित अर्थव्यवस्था तक ही सीमित है। जबकि वास्तविक समस्या अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था की होती है। निर्धन देशो में राजकोषीय नीति का इस प्रकार नियमन एवं संचालन करना चाहिये, ताकि उपलब्ध साधनों की इष्टतम प्रयोग करके उत्पादन एवं रोजगार में वृद्धि की जा सकें।

8.8.3 कार्यात्मक वित्त एवं कार्यशील वित्त मे अंतर

1. कार्यात्मक वित्त इस मान्यता पर आधारित है कि सम्पूर्ण आय व्यय नही की जाती जिससे फलस्वरूप प्रभावपूर्ण मांग कम होती है। अतः ऐसी स्थिति में उत्पादन मांग से अधिक होगा और इसलिये कार्यात्मक वित्त का मुख्य कार्य वित्तीय क्रियाओं द्वारा मांग में वृद्धि करना है। इसके विपरीत कार्यशील वित्त की मान्यता है कि कोई देश इसलिये निर्धन है क्योंकि उसकी आय कम है। अतः मुख्य समस्या बचत एवं विनियोग में वृद्धि करके राष्ट्रीय आय को बढ़ाना है।

2. डॉ0 बलजीत सिंह के अनुसार कीन्स एवं लर्नर के विचार विकसित अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण मांग बढ़ाना समस्या नही है। जैसा कि विकसित अर्थव्यवस्था में होती हैं। इन अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहित करके उत्पादन बढ़ाना मुख्य लक्ष्य होता है।

3. कार्यात्मक वित्त में व्यय से आरम्भ करते है जबकि कार्यशील वित्त में उत्पादन से आरम्भ किया जाता है। प्रो0 वॉन फिलिप का कहना है कि कार्यशील वित्त की धारणा कार्यात्मक वित्त की धारणा से निश्चित रूप से श्रेष्ठ है।

4. बिना रूकावट के चलने वाली अर्थव्यवस्था में भी असाम्य उत्पन्न हो जाता है। इसको ठीक करने के लिये कार्यात्मक वित्त का सहारा लिया जाता है। इसके विपरीत जो अर्थव्यवस्था अविकसित है और अर्थव्यवस्था स्वयं नही चल पा रही है, ऐसी अर्थव्यवस्था में वित्तीय नीति द्वारा ऐसे उपाय किये जाते है जिससे बचत एवं विनियोग में निरन्तर प्रभाव बना रहे तथा उपलब्ध साधनो का इष्टतम प्रयोग किया जा सकें, यह कार्यशील वित्त में ही सम्भव है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी देश के विकास के लिये प्रथम चरण में कार्यशील वित्त तथा विकास के अंतिम चरण में कार्यात्मक वित्त का प्रयोग करके कोई भी देश अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

8.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. बजट गुणांक क्या है

प्रश्न 2. कार्यात्मक वित्त का विचार सर्वप्रथम किसने दिया ?

प्रश्न 3. कार्यशील वित्त विचार किस अर्थशास्त्री के द्वारा दिया गया ?

प्रश्न 4. कार्यात्मक एवं क्रियाशील वित्त में क्या अन्तर है?

8.10 सारांश (Summary)

अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रोफेसर लर्नर ने सबसे पहले "कार्यात्मक वित्त" शब्द का उपयोग किया था, लेकिन वित्त को कार्यात्मक बनाने का श्रेय कीन्स को दिया जाता है। प्रोफेसर लर्नर का मानना था कि सार्वजनिक वित्तीय उपायों के समाज में कैसे काम करते हैं, इसे ही कार्यात्मक वित्त कहा जाता है। उनका यह भी मानना था कि राजकोषीय कार्यवाहियों का मूल्यांकन केवल उनके प्रभावों के आधार पर ही किया जाना चाहिए।

सरकार अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिए विभिन्न उपकरणों का उपयोग करती है, जैसे करारोपण, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण, और घाटे की वित्त व्यवस्था। कार्यात्मक वित्त के अंतर्गत, करों का उद्देश्य केवल आय प्राप्त करना नहीं होता, बल्कि कुछ सामाजिक लक्ष्यों को भी पूरा करना होता है। यह सिद्धांत स्पष्ट करता है कि ऋण से अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए और इसके माध्यम से सार्वजनिक व्ययों को उपयोगी बनाया जा सकता है।

कार्यात्मक वित्त का मूल उद्देश्य बजट स्थिरता के साथ पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त करना और उसे बनाए रखना है। राज्य की प्राथमिक जिम्मेदारी होती है कि वह खर्च को इस तरह से नियमित और नियंत्रित करे कि सभी वस्तुएं और सेवाएं प्रचलित मूल्यों पर पूरी तरह खप जाएं। रोजगार के स्तर में वृद्धि के लिए कार्यात्मक वित्त की सहायता ली जाती है, और सरकार बजट में बदलाव करके आय स्तर को प्रभावित करती है। कार्यात्मक वित्त के माध्यम से आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

प्रोफेसर बलराज सिंह ने कार्यात्मक वित्त को "कार्यशील वित्त" कहा है। उनके अनुसार, कार्यशील वित्त में हम वित्तीय विधियों और उपकरणों का उनकी कार्यक्षमता के आधार पर परीक्षण करते हैं और यह पता लगाते हैं कि ये उपकरण अर्थव्यवस्था के लिए कितने उपयोगी हैं। प्रोफेसर सिंह के अनुसार, कीन्स और लर्नर के वित्तीय दृष्टिकोण केवल विकसित अर्थव्यवस्थाओं तक सीमित हैं, जबकि वास्तविक समस्या अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं की होती है। निर्धन देशों में, राजकोषीय नीति का इस प्रकार नियमन और संचालन किया जाना चाहिए कि उपलब्ध साधनों का इष्टतम उपयोग करके उत्पादन और रोजगार में वृद्धि की जा सके।

8.11 शब्दावली (Glossary)

- **प्रभावी माँग :-** वह बिन्दु जहाँ समग्र माँग एवं समग्र पूर्ति एक दूसरे को काटते है।
- **गुणक :-** निवेश में परिवर्तन से आय में कई गुना परिवर्तन।

- **त्वरक :-** उपभोग वस्तुओं की माँग में परिवर्तन के फलस्वरूप पूँजीगत वस्तुओं के विनीयोग में परिवर्तन।
- **मुद्रा संकुचन :-** मुद्रा अवस्फीति की दशा।
- **घाटे की वित्त व्यवस्था :-** सरकार द्वारा आय की तुलना में व्यय की अधिकता के कारण नये नोट छापना।

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Practice Questions)

1. आय में वृद्धि/ बचत में वृद्धि

2. प्रो0 लर्नर

3. डा0 बलजीत सिंह

4. कार्यात्मक वित्त में व्यय को केन्द्र माना गया है जबकि कार्यशील वित्त में उत्पादन को केन्द्र माना गया है। जबकि कार्यशील वित्त में उत्पादन को केन्द्र माना गया है।

8.13 संदर्भ ग्रंथ सूची (References/Bibliography)

- बी0 पी0 त्यागी :- लोक वित्त, जय प्रकाश एवं कम्पनी, मेरठ, 2004 |
- डा0 वी0सी0सिन्हा एवं पुष्पा सिन्हा - अर्थशास्त्र, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स,आगरा, 2003
- टी०एन०हजेला – राजस्व के सिद्वान्त, कोणार्क पब्लिशर्स प्रा0 लि0 दिल्ली 2004
- जे0सी0वार्ष्णेय – लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2003
- डा0 जे0सी0पन्त एण्ड प्रो0 जोशी – राजस्व, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 2002
- वार्ष्णेय एवं श्रीवास्तव – राजस्व, एस0 बी0पी0डी0 पब्लिकेशन्स, आगरा, 2003

8.14 सहायक/ उपयोगी ग्रंथ सूची (Useful/Helpful Text)

- Houghton, E. W. (Ed.) (1988), Public Finance, Penguin, Baltimore.
- Jha, R. (1998), Modern Public Economics, Routledge, London.
- Mithani, D. M. (1998), Modern Public Finance, Himalaya Publishing House. Mumbai.
- Musgrave, R. A. and P. B. Musgrave (1976), Public Finance in Theory and Practice McGraw Hill, Kogakusha, Tokyo.

8.15 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

प्रश्न 1. कार्यात्मक वित्त क्या है ?आधुनिक आर्थिक विकास में यह किस प्रकार उपयोगी है ?

प्रश्न 2. कार्यात्मक वित्त और कार्यशील वित्त में भेद स्पष्ट कीजियें ? क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि विकसित एवं अर्द्धविकसित देशों में राजकोषीय नीति के उददेश्य में भिन्नता होती है।

प्रश्न 3.मुद्रा प्रसार व मुद्रा संकुचन में वित्त की क्या भूमिका है ?

इकाई 9- करारोपण के सिद्धान्त एवं वर्गीकरण

(Canons and Classification of Taxation)

9.1 प्रस्तावना(Introduction)

9.2 उद्देश्य (Objectives)

9.3 करारोपण एवं सिद्धान्त

9.3.1 करारोपण का आशय

9.3.2 करारोपण के सिद्धांत: संबंध और अनुप्रयोग

9.4 करारोपण के सिद्धान्त

9.4.1 करारोपण के आधारभूत सिद्धांत: संरचना और महत्व

9.4.2 करारोपण के न्याय सम्बन्धी सिद्धान्त

9.4.3 करारोपण के अन्य सिद्धन्त

9.5 करारोपण की श्रेणियाँ और उनके विश्लेषण

9.6 करारोपण की आवश्यकता

9.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

9.8 सारांश(Summary)

9.9शब्दावली(Glossary)

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची(References/Bibliography)

9.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ(Useful / Helpful text)

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह नवीं इकाई, तीसरे खंड, "लोक राजस्व " पर केंद्रित है, जिसमें करारोपण के सिद्धांत और वर्गीकरण शामिल हैं। इससे पहले की इकाई में आपने राजस्व से संबंधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया होगा। इस इकाई के अंतर्गत, आप लोक सत्ताओं या सरकारों द्वारा लगाए गए विभिन्न करों से संबंधित सिद्धांतों को समझ पाएंगे।

सर्वप्रथम, आप करारोपण का अर्थ समझेंगे और करारोपण और इसके लिए आवश्यक सिद्धांतों के बीच संबंधों का अध्ययन करेंगे। करारोपण के विभिन्न सिद्धांत राजस्व और सार्वजनिक उद्देश्यों के विभिन्न पहलुओं से संबंधित होते हैं। इस इकाई के माध्यम से, आप करारोपण के मुख्य सिद्धांतों और सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक

सिद्धांतों को अच्छे से समझ सकेंगे। इसके अलावा, आप करारोपण के अन्य सिद्धांतों का भी अध्ययन करेंगे जो एक अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

करारोपण के सिद्धान्तों को भली-भाँति समझने के बाद आप करारोपण के वर्गीकरण को समझेंगे जो करों की प्रकृति एवं आवश्यकता के आधार पर किये गये हैं। आपको यह विदि हो कि करारोपण के द्वारा सरकाकर किन-किन उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहती है। इसे भली-भाँति समझने के लिए प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत करारोपण की आवश्यकता को भी स्पष्ट किया गया है। करारोपण के सिद्धान्तों एवं वर्गीकरण की उपयोगिता किसी एक देश की सरकार के लिए ही नहीं अपितु समस्त प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के कुशल संचालन के लिए अत्यन्त आवश्यक समझी गयी है।

9.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई 'करारोपण के सिद्धान्त एवं वर्गीकरण' के अन्तर्गत आप समझ सकेंगे कि :

- ✓ करारोपण की अवधारणा तथा इसका विस्तृत अर्थ क्या
- ✓ किसी भी सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था के सफल एवं कुशल क्रियान्वयन के लिए राजस्व की पूर्ति के करारोपण किन सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए।
- ✓ आप समझ सकेंगे कि करारोपण का सामाजिक न्याय तथा आर्थिक स्थिरता से क्या सम्बन्ध है जो किसी भी देश की सरकार के लिए अत्यन्त उपयोगी है।
- ✓ करारोपण का वर्गीकरण क्या है तथा यह वर्गीकरण किन आधारों पर किये गये हैं तथा अर्थव्यवस्था के लिए इनकी क्या प्रासंगिकता है।
- ✓ आप अध्ययन कर समझ सकेंगे कि करारोपण की आवश्यकता किसी देश की सरकारों एवं लोकसत्ताओं के लिए क्यों होती हैं।

9.3 करारोपण एवं सिद्धान्त

इस इकाई के इस भाग के अन्तर्गत आप अध्ययन कर सकेंगे कि करारोपण का क्या आशय है? एवं करारोपण के साथ इससे सम्बन्धित सिद्धान्तों के मध्य क्या अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

9.3.1 करारोपण का आशय- यहाँ पर आपको स्पष्ट रूप से समझना होगा कि कर और करारोपण एक ही शब्द नहीं हैं। करारोपण को अक्सर कर के रूप में परिभाषित किया जाता है। लेकिन कर और करारोपण एक दूसरे का एक हिस्सा ही हैं। कर जनता पर लगाया जाता है,जो सरकार द्वारा अनिवार्य रूप से एकत्रित किया जाता है और सार्वजनिक सेवाओं पर अक्सर खर्च किया जाता है।

डॉल्टन के अनुसार, ‘‘कर किसी सार्वजनिक सत्त द्वारा लगाया गया एक अनिवार्य अंशदान है भले ही इसके बदले में करदाताओं को उतनी सेवाएँ प्रदान की गयी हों अथवा नहीं। यह किसी कानूनी अपराध के दण्डस्वरूप नहीं लगाया जा सकता।’’

बेस्टेबिल (Bastable) के शब्दों में कर को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है, "कर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की सम्पत्ति का वह भाग होता है जो सार्वजनिक सेवाओं को चलाने के लिए अनिवार्य रूप से बसूल किया जाता है।"

अर्थशास्त्री शिराज ने भी कर को निम्नवत स्पष्ट किया है, ‘‘कर सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा बसूल किया जाने वाला वह अनिवार्य भुगतान है जो सार्वजनिक भलाई के खर्च को पूरा करने के लिए लिया जाता है और उसका किसी विशेष लाभ से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।" कर की अवधारणा को स्पष्ट करके आपको करारोपण की अवधारणा को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

9.3.2 करारोपण के सिद्धांत: संबंध और अनुप्रयोग

सरकारों की गतिविधियों में समय के साथ लगातार वृद्धि हुई है, जिससे उनके उद्देश्यों में भी बदलाव देखा गया है। अर्थव्यवस्था के संचालन के लिए सरकार विभिन्न वित्तीय उपायों का उपयोग करती रही है, जिनमें से करारोपण (आवंटन) एक प्रमुख उपाय के रूप में जाना जाता है।

जैसे-जैसे सरकार की जिम्मेदारियाँ बढ़ती जा रही हैं, यह जानना आवश्यक हो जाता है कि सरकार की नीतियों से किस वर्ग या व्यक्ति को सबसे अधिक लाभ हुआ है और कौन सा वर्ग किसी भी प्रकार के लाभ से वंचित रह गया है। वित्तीय स्थिरता बनाए रखने के साथ-साथ सरकार को कानून-व्यवस्था और सामाजिक सुरक्षा का भी ध्यान रखना पड़ता है।

इसलिए, करारोपण एक अत्यंत महत्वपूर्ण और विचारणीय विषय बन जाता है। सरकार की वित्तीय नीतियों को प्रभावी बनाने के लिए और जनता में शांति एवं सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए साधारण उपाय पर्याप्त नहीं हैं। करारोपण के विभिन्न सिद्धांत, सरकार और जनता से संबंधित सभी महत्वपूर्ण पहलुओं का गहन अध्ययन करके तैयार किए गए हैं। यही कारण है कि ये सिद्धांत प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रासंगिक बने हुए हैं।वर्तमान में कर प्रणाली इतनी विस्तृत है कि करारोपण के बिना सरकाकर के क्रियाकलापों को संचालित कर पाना सम्भव नहीं होगा। कल्याणकारी राज्यों में करारोपण के साथ-साथ करारोपण के सिद्धान्त भी समकक्ष रूप में देखे जाने लगे हैं। अतः सिद्धान्तों की अवहेलना करके करारोपण को सफल नहीं बनाया जा सकता है।

9.4 करारोपण के सिद्धान्त

करारोपण का आशय एवं सिद्धान्तों के साथ सम्बन्धों को समझने के बाद आपको यह भी भली-भाँति समझना आवश्यक होगा कि करारोपण के लिए उचित एवं अनुचित का निर्धारण

करने वाले सिद्धान्त कौन-कौन से हैं। अध्ययन की आसानी के लिए यहाँ पर करारोपण के सिद्धान्तों को तीन रूपों में स्पष्ट किया गया है। करारोपण के मुख्य सिद्धान्त, करारोपण के न्याय सम्बन्धी सिद्धान्त तथा कररोपण के अन्य सिद्धान्त।

9.4.1 करारोपण के आधारभूत सिद्धांत: संरचना और महत्व

करारोपण के मुख्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे जिनको करारोपण के समय मुख्य रूप से ध्यान में रखा जाता है। ये मुख्य सिद्धान्त निम्नवत रूप से स्पष्ट किये जा सकते हैं :-

(1) एडम स्मिथ के करारोपण के सिद्धान्त:- 1776 में प्रकाशित पुस्तक 'राष्ट्रों के धन के स्वरूप एवं कारणों की खोज' (An Enquiry into the Nature and Causes of Wealth of Nations) में एडम स्मिथ ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, वे निम्नवत् हैं:-

A. **निश्चितता का सिद्धान्त (Canon of Certainty) :-** एडम स्मिथ के ही शब्दों में, "प्रत्येक व्यक्ति को जो कर देना है, वह निश्चित होना चाहिए मनमानापन नहीं। भुगतान का समय, भुगतान की जाने वाली राशि, करदाता तथा प्रत्येक अन्य व्यक्ति को स्पष्ट होना चाहिए।" यह सिद्धान्त इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि करारोपण के द्वारा सरकार एवं करदाता दोनों में से किसी को कोई असुविधा का सामना न करना पड़े। कर की राशि, समय, तथा अन्य महत्वपूर्ण तथ्य स्थिर तथा स्पष्ट हो ताकि कर के संग्रहण में अनावश्यक विवादों से बचा जा सके। कर देने वाले एवं कर लेने वाले दोनों को कर के बारे में पूर्ण एवं स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए।
B. **समानता का सिद्धान्त (Canon of Equality) :-** करारोपण के इस सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "प्रत्येक राज्य की प्रजा को सरकार के लालन-पालन के लिए, जहाँ तक सम्भव हो, अपना अंशदान अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार देना चाहिए अर्थात् उस आय के अनुपात में जिसका आनन्द वे राज्य की संरक्षता में प्राप्त करते हैं।' यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि कर देने वाले व्यक्ति पर अनावश्यक या आवश्यकता से अधिक करारोपण नहीं करना चाहिए। राज्य का संरक्षण से प्राप्त लाभों के आधार पर ही करारोपण का आकार निश्चित होना चाहिए। इस सिद्धान्त में राज्य की संरक्षता तथा कर की मात्रा के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट करना एक कठिन कार्य है। इसके साथ कर पर प्रतिफल की बाध्यता लागू करने के सम्बन्ध में भी यह सिद्धान्त न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है। देश में गरीब, बेरोजगार, बीमार व्यक्ति राज्य की संरक्षता के अनुपात में कर का भुगतान करने में समर्थ नहीं कहे जा सकते हैं।
C. **मितव्ययिता का सिद्धान्त (Canon of Economy) :-** एडम स्मिथ के इस सिद्धान्त को शुद्ध आर्थिक सिद्धान्त कहा जा सकता है। एडम स्मिथ के अनुसार, "प्रत्येक कर इस तरह लगाया और बसूल किया जाना चाहिए कि उसके द्वारा सरकारी कोष में जितना द्रव्य आए उससे बहुत अधिक मात्रा में जनता की जेब से द्रव्य न निकाला जाय, अथवा जनता द्वारा दिये जाने वाले कर का सरकारी कोष में आने वाली रकम से आधिक्य न्यूनतम हो।"

D. **सुविधा का सिद्धांत :-** इस सिद्धान्त की वास्तविकता में जाने पर आप समझेंगे कि सरकार के पास अत्यधिक मात्रा में करारोपण से प्राप्त राशि अनावश्यक नहीं आनी चाहिए अन्यथा उस राशि का प्रयोग पूर्ण कुशलता के साथ नहीं हो सकेगा। यह सिद्धान्त सरकार की कार्यकुशलता पर नियंत्रण रखने पर ध्यान देता है। इस सिद्धान्त के अनुसार करदाता को कर देने में किसी भी प्रकार की असुविधा नहीं होनी चाहिए। यह करदाता को कर के भगतान में किसी भी प्रकार की असुविधा होने पर करदाता को कर का भार अधिक सहना पड़ता है। एडम स्मिथ के अनुसार, "प्रत्येक कर ऐसे समय और इस ढंग से लगाया जाय कि करदाता को भुगतान की सुविधा हो। प्रायः देखा जा सकता है कि प्रत्येक करदाता कर का सुविधाजनक रूप से भुगतान करना चाहता है।"

(2) लोच का सिद्धान्त: अर्थव्यवस्थाओं के विकास एवं प्रकृति के अनुसार लोच का सिद्धान्त अत्यन्त उपयोगी तथा महत्वपूर्ण रूप में देखा जा सकता है। अर्थव्यवस्थाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप सरकारें करारोपण में आवश्यक परिवर्तन कर सकती हैं। ताकि देश में आर्थिक संकट का सामना न करना पड़े। कर प्रणाली में लोच की कमी के कारण करदाता एवं सरकार दोनों को ही अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

(3) उत्पादकता का सिद्धान्त :- इस सिद्धान्त के अनुसार कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि उससे अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव उत्पादकता को बढ़ा दें। कर प्रणाली केवल कर देने और एकत्र करने तक ही सीमित नहीं रह जाती, बल्कि यह एक अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा है। कर एकत्रण की लागत पर कर प्राप्त की राशि अधिक होने पर भी उत्पादकता के रूप में देखा जाता है। साथ ही, उत्पादकता सिद्धान्त का लक्ष्य भविष्य में करारोपण की प्रवृत्ति को बनाए रखना है। यह सिद्धान्त उपभोग, आय, बचत और उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति पर भी सकारात्मक प्रभाव डालता है।

(4) विविधता का सिद्धान्त :- वर्तमान में गतिशील अर्थव्यवस्थाओं में कार्पोरेशन विविधता का सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि एक स्रोत से सरकारी कार्यों के लिए पूरी तरह से वित्त व्यवस्था नहीं की जा सकती, सरकारें करारोपण के लिए केवल किसी एक मद पर ही निर्भर नहीं रह सकती हैं। यह सिद्धान्त कहता है कि कर प्रणाली में अलग-अलग प्रकार के कर लगाए जा सकते हैं जो जनता की आर्थिक स्थिति के अनुसार अलग-अलग व्यक्तियों और वस्तुओं पर लगाए जा सकते हैं। इससे करारोपण का प्रभाव पूरी अर्थव्यवस्था पर फैलता है। अर्थव्यवस्था का कुछ हिस्सा कर प्रणाली से बाहर ही रहेगा, जिससे सरकार को एक नई समस्या मिलेगी।

9.4.2 करारोपण के न्याय सम्बन्धी सिद्धान्त

समय-समय पर अर्थशास्त्रियों द्वारा जनता के साथ आर्थिक रूप से न्याय बनाये रखने के लिए अनेक प्रयास किये गये हैं। न्याय सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया गया है जो मुख्य रूप से निम्नवत हैं :

1.कर देय योग्यता सिद्धान्त सिद्धान्त (Ability to pay theory):- "करारोपण के मुख्य और प्राचीन सिद्धांतों में से एक 'कर देय योग्यता' सिद्धांत (Ability to Pay Theory) है, जिसका प्रतिपादन 16वीं सदी में

जॉन बोर्डिन और 18वीं सदी में विलियम पेटी और एडम स्मिथ ने किया था। इस सिद्धांत के संदर्भ में एडम स्मिथ का एक महत्वपूर्ण कथन है: 'प्रत्येक राज्य की जनता को राज्य की सहायता के लिए अपनी क्षमता के अनुसार योगदान देना चाहिए, अर्थात् उस आय के अनुपात में देना चाहिए जो वे राज्य के संरक्षण में प्राप्त करते हैं।'

इस सिद्धांत के अनुसार, करारोपण उस व्यक्ति की कर देने की योग्यता का मूल्यांकन करके किया जाना चाहिए, ताकि वह कर का भुगतान आसानी से कर सके। यह सामान्य सत्य है कि निर्धन वर्ग की कर देने की क्षमता सीमित होती है। इसलिए, निर्धनों पर कर का आरोपण कम मात्रा में किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, संपन्न वर्ग की कर देने की क्षमता अधिक होती है, और इसलिए उनसे अधिक कर प्राप्त किया जाना चाहिए। सरकार को एक कुशल शासन चलाने के लिए यह सुनिश्चित करना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं के अनुसार कर अदा करे या उसे कर एकत्रित किया जाए। कर देय योग्यता का निर्धारण करने के लिए भावनात्मक और आंतरिक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।"

2. सेवा लागत सिद्धान्त (Cost Of Service Principle) :- "आप जानते हैं कि लोक सत्ताएँ सार्वजनिक कार्यों का निष्पादन करती हैं और समाज के कल्याण के लिए निरंतर प्रयासरत रहती हैं। समाज के कल्याण के लिए सार्वजनिक कार्यों को पूरा करने पर सरकारों या लोक सत्ताओं को एक निश्चित लागत उठानी पड़ती है, जिसे नागरिकों से ही वसूल किया जा सकता है, क्योंकि ये सत्ताएँ इन्हीं नागरिकों के कल्याण के लिए काम करती हैं।

इस सिद्धांत के अनुसार, समाज की सेवा पर आने वाली लागत के बराबर समाज द्वारा सत्ताओं को कर देना चाहिए। सेवा लागत के सिद्धांत के बारे में डॉल्टन ने लिखा है कि, "सेवा लागत का सिद्धांत डाक सेवाओं, विद्युत आपूर्ति आदि की लागत पर लागू किया जा सकता है। इन सेवाओं की कीमत इस सिद्धांत के आधार पर निर्धारित की जा सकती है।" प्रोफेसर ब्यूहलर ने इस सिद्धांत के बारे में कहा है कि, "कई लेखकों का सुझाव है कि करों को सरकार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की लागत के आधार पर ही लगाया जाना चाहिए, ताकि नागरिकों को सरकारी सेवाओं को चुनने या रद्द करने की पूरी स्वतंत्रता मिल सके।"

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि करों की अदायगी पर प्रतिफल की आशा नहीं की जानी चाहिए। यह सिद्धांत वास्तव में करारोपण का सिद्धांत न होकर, सेवाओं की प्राप्ति की कीमत पर आधारित शुल्क आरोपण के रूप में देखा जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार, जिन लोगों को सेवाएँ प्राप्त नहीं होतीं, उनके लिए करारोपण की बात भी स्वीकार की जाती है।"

3. अधिकतम कल्याण का सिद्धान्त (The Principle of Maximum Social advantage):- "करारोपण व्यवस्था में कल्याण आधारित सिद्धांत को एजवर्थ और पीगू ने अत्यंत महत्वपूर्ण माना है। इस सिद्धांत के अनुसार, करारोपण की व्यवस्था इस तरह से की जानी चाहिए कि व्यक्तियों का अधिकतम कल्याण सुनिश्चित हो सके। एजवर्थ के अनुसार, 'करारोपण की नीति को समान सीमान्त त्याग पर आधारित करने के बाद ही समाज को अधिकतम कल्याण प्राप्त हो सकता है।'

इसी संबंध में, पीगू ने एक तथ्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है: 'सभी इस बात से सहमत हैं कि सरकार की क्रियाएँ इस तरह से संचालित होनी चाहिए कि नागरिकों का कल्याण अधिकतम हो। यही सरकार की कानूनी प्रक्रिया की कसौटी है और करारोपण के क्षेत्र में यही न्यूनतम त्याग का सिद्धांत है।'

यह सिद्धांत इस अवधारणा पर आधारित है कि जैसे-जैसे व्यक्ति की आय बढ़ती है, उसकी आय की सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है। इसलिए, बढ़ी हुई आय पर घटती दर से करारोपण किया जाना चाहिए। पीगू ने स्पष्ट किया कि न्यूनतम त्याग के लिए यह आवश्यक है कि करदाताओं द्वारा भुगतान की गई राशि की सीमान्त उपयोगिता समान होनी चाहिए।"

डॉल्टन तथा मसग्रेव ने भी अधिकतम कल्याण के सिद्धानत से सम्बन्धित न्यायपूर्ण वितरण की समस्या को समान सीमान्त त्याग तथा समान सीमान्त कल्याण की तलना करके हल करने का प्रयास किया। करारोपण से अधिकतम कलयाण की स्थिति को उस समय प्राप्त किया जा सकता है जब सरकार द्वारा प्रत्येक मद पर किये गये व्यय से समाज को समान सीमान्त कल्याण प्राप्त हो तथा करारोपण से जनता को होने वाला सीमान्त त्याग समान हो।

4. करारोपण के आय सिद्धान्त (Income principle of taxation):- करारोपण के आय सिद्धान्त का प्रतिपादन इटली के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डि मार्को द्वारा किया गया। इस सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। यह सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति की आय के अनुपात के आधार पर करारोपण करने पर जोर देता है। डि मार्को के अनुसार, "जितनी अधिक आय एक व्यक्ति की होती है, उसे उतना ही अधिक कर देना चाहिए, क्योंकि उतनी ही अधिक सेवाओं का उपयोग उसने किया है। अतः धनवान व्यक्ति अधिक तथा निर्धन व्यक्ति कम कर देगा। इस प्रकार करों का निर्धारण आय के अनुपात में किया जाना चाहिए।" यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से आय कर से सम्बन्धित है यदि सम्पूर्ण कर व्यवस्था के लिए आय को आधार बनाया जाय तो अर्थव्यवस्था का संचालन के लिए सरकार की वित्त व्यवस्था अत्यन्त संकुचित रूप में ही रह जायेगी तथा अन्य क्षेत्र करारोपण से बाहर ही रह जायेंगे।

5. करारोपण का वित्तीय सिद्धान्त (Principles of taxation):- "करारोपण का वित्तीय सिद्धांत कॉलबर्ट के कथन 'बत्तख को इस प्रकार नोचो कि वह कम से कम शोर मचाए' पर आधारित है। प्राचीन काल में सरकारों के सामने मुख्य समस्या अधिकतम आय अर्जित करने की थी, न कि जनता के कल्याण में वृद्धि करने या आर्थिक स्थिरता की। इसलिए, इस सिद्धांत के अनुसार, सरकार को करारोपण के माध्यम से अधिकतम संभव आय प्राप्त करनी चाहिए। आजकल, हालांकि, सरकारों के सामने आय अर्जित करने के साथ-साथ समाज के कल्याण, त्याग, और अर्थव्यवस्था में समान वितरण से संबंधित समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।"

9.4.3 करारोपण के अन्य सिद्धान्त

"करारोपण के अन्य सिद्धांतों में एडोल्फ वैगनर (Adolph Wagner) द्वारा प्रस्तुत सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत और सैलिगमैन का हितप्राप्ति सिद्धांत शामिल हैं।

सामाजिक-राजनीतिक सिद्धांत के अनुसार, करों का निर्धारण सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों के आधार पर किया जाना चाहिए, न कि केवल व्यक्तिगत उद्देश्यों के आधार पर। वैगनर का कहना है कि सम्पत्ति और उत्तराधिकार की सुरक्षा केवल सरकार द्वारा संभव है।

हितप्राप्ति सिद्धांत के अनुसार, सरकार समाज को विभिन्न सामाजिक और प्रशासनिक सेवाएँ प्रदान करती है, और समाज की जीवन, धन, और सम्पत्ति की रक्षा बिना सरकारी हस्तक्षेप के संभव नहीं है। इसलिए, इन सेवाओं की लागत के बदले समाज को करों के रूप में भुगतान करना चाहिए, और यह वित्तीय भार सेवाओं की प्राप्ति के अनुपात में ही वहन किया जाना चाहिए।"

9.5 करारोपण की श्रेणियाँ और उनके विश्लेषण

विभिन्न करारोपण अर्थशास्त्रियों के सिद्धांतों का अध्ययन करने के बाद, आपको यह समझना अनिवार्य है कि करारोपण का वर्गीकरण कैसे किया गया है।

1. प्रत्यक्ष कर तथा परोक्ष कर

2. एकल एवं बहुकर प्रणाली

3. करों की दर की स्थिति के आधार पर वर्गीकरण

4. विशिष्ट कर एवं मूल्यानुसार कर

5. लोक सत्ताओं के आधार पर कर-केन्द्रीय कर, राज्यीय कर, स्थानीय

6. अन्य वर्गीकरण

करों के उक्त वर्गीकरणों के अन्तर्गत निर्धारित किये जाने वाले करों की विस्तृत व्याख्या के आधार पर आप इन वर्गीकरणों के बारे में भली-भाँति समझ सकेंगे।

(1) प्रत्यक्ष कर तथा परोक्षकर (Direct and Indirect Tax)

"अर्थशास्त्रियों के बीच एक लंबे समय से यह विवादास्पद विषय रहा है कि किन करों को प्रत्यक्ष कर माना जाए और किन्हें परोक्ष कर की श्रेणी में रखा जाए। डॉल्टन ने प्रत्यक्ष और परोक्ष करों के बारे में लिखा है कि, 'एक प्रत्यक्ष कर वास्तव में उसी व्यक्ति द्वारा भुगतान किया जाता है जिस पर वैधानिक रूप से वह लगाया जाता है, जबकि अप्रत्यक्ष कर वह है जो किसी व्यक्ति पर लगाया जाता है और पूरी तरह या आंशिक रूप से अन्य व्यक्ति द्वारा चुकाया जाता है, जैसा कि अनुबंध और सौदा की शर्तों के परिणामस्वरूप होता है।'

जे.एस. मिल ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों के बारे में लिखा है कि, 'एक प्रत्यक्ष कर वह है जो उसी व्यक्ति से लिया जाता है जो उसे भुगतान करने की इच्छा या इरादा रखता है, जबकि एक अप्रत्यक्ष कर वह है जो एक व्यक्ति से इस आशा पर लिया जाता है कि वह दूसरों की लागत पर इसकी भरपाई करेगा।'

सामान्यतः करों को प्रत्यक्ष और परोक्ष श्रेणियों में उनके कर आघात और कर के आयतन के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। प्रत्यक्ष करों के मामले में कर आघात और कर का भुगतान एक ही इकाई या व्यक्ति पर पड़ता है, जबकि परोक्ष करों के मामले में कर आघात और कर का भुगतान अलग-अलग इकाइयों या व्यक्तियों पर होता है। इस प्रकार, प्रत्यक्ष करारोपण के अंतर्गत कर विवर्तन नहीं होता, जबकि परोक्ष करारोपण में कर का विवर्तन किया जाता है।

आय, व्यय, धन, सम्पत्ति, उपहार, उत्तराधिकार, पूंजी आय, और व्याज पर करारोपण प्रत्यक्ष कर की श्रेणी में आता है, जबकि उत्पादन शुल्क, बिक्री कर, और सीमा शुल्क परोक्ष कर की श्रेणी में आते हैं।"

(2) एकल एवं बहुकर प्रणाली (Single and multiple tax system)

सामान्य रूप एकल करारोपण की स्थिति में कर प्रणाली के अन्तर्गत केवल एक ही कर अस्तित्व में पाया जाता है। साधारण जीवन की अर्थव्यवस्था में इस कर प्रणाली को अपनाया जा सकता है जिसमें एक ही कर से अर्थव्यवस्था संचालन के लिए वित्त की व्यवस्था आसानी से हो सके।

लेकिन अर्थव्यवस्थाओं के विकास एवं अनेक जटिलताओं के चलते एकल कर प्रणाली से काम चलने वाला नहीं है। इस कर प्रणाली से न तो सरकार सभी को कर सीमा में ला सकती है और न ही सार्वजनिक कार्य पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में राजस्व की आपूर्ति को जुटा पा सकती है।

बहुकर प्रणाली के अन्तर्गत एक ही कर प्रणाली में एक साथ एक से अधिक कर अस्तित्व में पाये जाते हैं। इस कर प्रणाली में अधिकांशतः सभी को किसी न किसी कर की सीमा में लाया गया है तथा सरकार के लिए सार्वजनिक कार्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में राजस्व को जुटाया जा सका है। बहुकर प्रणाली से कर प्रणाली के अन्तर्गत पैदा होने वाली अनेक समस्याओं को हल किया जा सकता है।

एकल कर प्रणाली में अर्थव्यवस्था में आवश्यकतानुसार सुधारों की सम्भावनायें समाप्त हो जाती हैं तथा अर्थव्यवस्था में स्थिरता या ठहराव की स्थिति पैदा हो जाती है। इसके साथ बहुकर प्रणाली में लोचता की अधिकता के कारण अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं।

(3) करों की दर की स्थिति के आधार पर कर (Tax Rate Depending on the basis of State)

आपको यहाँ पर ध्यान देना होगा कि करों की दरों की स्थिति में अन्तर के आधार पर करों को अनेक रूपों में रखा जा सकता है।

- **आनुपातिक कर (Proportional Tax) :** एक प्रकार का कर है जिसमें कर दर निश्चित होती है और यह आय या मूल्य के किसी भी स्तर पर समान अनुपात में लागू होती है। इसका मतलब है कि किसी व्यक्ति की आय या सम्पत्ति की मात्रा चाहे कितनी भी हो, उसे कर की दर एक समान ही लागू होती है।
- **प्रगतिशील कर (Progressive Tax) :** एक ऐसा कर प्रणाली है जिसमें कर की दर आय या सम्पत्ति की मात्रा के बढ़ने के साथ बढ़ती जाती है। इसका मतलब है कि उच्च आय या सम्पत्ति वाले व्यक्तियों पर उच्च कर दर लागू होती है, जबकि निम्न आय या सम्पत्ति वाले व्यक्तियों पर कम कर दर लागू होती है।
- **प्रतिगामी कर (Regressive Tax) :** एक ऐसी कर प्रणाली है जिसमें कर की दर आय या सम्पत्ति की मात्रा के बढ़ने के साथ घटती जाती है। इसका मतलब है कि कम आय या सम्पत्ति वाले व्यक्तियों पर कर का प्रतिशत अधिक होता है, जबकि उच्च आय या सम्पत्ति वाले व्यक्तियों पर कर का प्रतिशत कम होता है।
- **अधोगामी कर (Degressive Tax) :** एक ऐसा कर प्रणाली है जिसमें कर की दरें निम्न आय या सम्पत्ति वर्ग के लिए अधिक होती हैं और उच्च आय या सम्पत्ति वर्ग के लिए कम होती हैं। इस प्रकार के कर में कम आय वाले व्यक्तियों पर उच्च दर से कर लगाया जाता है, जबकि उच्च आय वाले व्यक्तियों पर कम दर लागू होती है। हालांकि, "अधोगामी कर" एक आमतौर पर उपयोग में आने वाला टर्म नहीं है, लेकिन इसे समझने के लिए इसे "प्रतिगामी कर" के रूप में समझा जा सकता है। प्रतिगामी कर के सिद्धांत में कम आय वाले व्यक्तियों पर उच्च प्रतिशत के कर की दरें लागू होती हैं, जो इस बात को दर्शाता है कि यह कर प्रणाली समग्र वित्तीय स्थिति के प्रति संवेदनशील होती है और गरीब वर्ग पर अधिक वित्तीय दबाव डालती है। विशेषताओं के आधार पर व्युत्पन्न किया गया है।

(4) विशिष्ट कर एवं मूल्यानुसार कर

विशिष्ट कर वे कर कहलाते हैं जिन्हें किसी वस्तु के भार आकार या इकाईयों की संख्या के आधार पर लगाया जाता है, जबकि मल्यानसार कर वह कर है जिसे वस्त के मूल्य के आधार पर लगाया जाता है। सामान्य रूप से मूल्यानुसार कर को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

(5) लोक सत्ताओं के आधार पर कर

लोक सत्ताओं के अधिकार के आधार पर करों को निम्न रूपों में विभाजित किया जा सकता है -

- केन्द्रीय सरकार के कर : जो कर किसी देश की केन्द्रीय सरकार द्वारा लगाये जाते हैं जैसे भारत में आय कर जो देष की संघीय सरकार द्वारा लगाया जाता है।

- राज्य सरकार के कर : किसी देश के अन्दर वहाँ की अलग-अलग राज्य सरकारों द्वारा लगाये जाने वाले कर इस श्रेणी में आते हैं, जैसे भारत में कृषि तथा मनोरंजन कर आदि राज्यों की सरकारों द्वारा लगाये जाते हैं।
- स्थानीय कर : ये कर स्थानीय सरकारों जैसे - नगर निगम, पंचायत द्वारा लगाये जाते हैं जैसे पथकर, गृहकर, जलकर आदि।

6. अन्य वर्गीकरण

करों के अन्य वर्गीकरणों में व्यक्ति कर तथा वस्तु कर, अस्थायी तथा स्थायीकर एवं सम्पत्ति कर तथा वस्तुकर (Tax on Property and Tax on Commodity) को भी शामिल किया गया है।

9.6 करारोपण की आवश्यकता

इस बिंदु के अंतर्गत यह समझना महत्वपूर्ण है कि किसी राजसत्ता या सरकार को करारोपण की आवश्यकता क्यों पड़ती है। क्या अन्य साधनों से करारोपण से प्राप्त राजस्व की भरपाई नहीं की जा सकती? किसी अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा करारोपण की आवश्यकता को निम्न बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है:

- **सामाजिक कार्यों के लिए आय प्राप्ति:** सरकार के लिए सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता अपने सामाजिक कार्यों के लिए आवश्यक व्यय की पूर्ति के लिए आय प्राप्त करना है। यह आवश्यकता प्राचीन काल से ही सार्वभौमिक रूप में देखी गई है।
- **विकास और अर्थव्यवस्था का संतुलन:** विकास के दौर में सरकारों को अपनी अर्थव्यवस्थाओं को संतुलित स्तर पर बनाए रखने की चुनौती का सामना करना पड़ता है। अर्थव्यवस्थाओं के नियमन और नियंत्रण के लिए सरकारें करारोपण का सहारा लेती हैं। व्यापारिक चक्रों की स्थिति, विदेशी प्रभाव आदि से बचने के लिए भी करारोपण एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में अपनाया गया है।
- **सामाजिक विसंगतियों का समाधान:** समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को दूर करने के लिए भी सरकारें समय-समय पर करारोपण की पद्धति का सहारा लेती हैं। धन के असमान वितरण की समस्या का सामना करने वाली अर्थव्यवस्थाओं में करारोपण की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

प्रोफेसर राजा चलैया के एक कथन से करारोपण की आवश्यकता को स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है:

"एक विकासशील देश में एक प्रभावी कर पद्धति का कार्य यह होना चाहिए कि वह उन आर्थिक संसाधनों को गतिशील करे जो अर्थव्यवस्था में हाल ही में उत्पन्न हुए हैं। आर्थिक संसाधन से तात्पर्य उस अंतर को है जो वास्तविक चालू उपज और वास्तविक चालू उपभोग के बीच पाया जाता है। भारत जैसे देशों में आर्थिक संसाधनों का एक बड़ा भाग कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होता है। ये संसाधन किसानों, व्यापारियों और अन्य लोगों द्वारा अपने पास

रख लिए जाते हैं और ये लोग इन्हें उत्पादक उपयोग में लगाने के लिए अभ्यस्त नहीं होते। आर्थिक विकास की दृष्टि से कर नीति का कार्य यह है कि वह इन संसाधनों को गतिशील करे, उन्हें उत्पादक स्रोतों की ओर मोड़े और उनके आकार में निरंतर वृद्धि करे।"इस प्रकार आर्थिक विकास के लिए करारोपण की आवश्यकता भी अहम भूमिका अदा करती है।

9.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्र.1 करारोपण से आप क्या समझते हैं?

प्र.2 "कर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की सम्पत्ति का वह भाग होता है जो सार्वजनिक सेवाओं को चलाने के लिए अनिवार्य रूप से वसूल किया जाता है। यह कर सम्बन्धी परिभाषा किस अर्थषास्त्री द्वारा दी गयी?

प्र.3 एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित करारोपण के सिद्धान्त कौन-कौन से हैं?

प्र.4. 'करारोपण का उत्पादकता का सिद्धान्त' उत्पादन क्षमता पर कैसा प्रभाव डालता है?

प्र.5 कर देय योग्यता सिद्धान्त का प्रतिपादन किस अर्थषास्त्री द्वारा किया गया?

प्र.6 आय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया -

(i) मार्षल द्वारा (ii) पीगू द्वारा

(iii) डि मार्को द्वारा (iv) रोबिन्स द्वारा

प्र.7 एडोल्फ वैगनर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त है -

(i) आय सिद्धान्त (ii) सामाजिक राजनैतिक सिद्धान्त

(iii) हित प्राप्ति सिद्धान्त (iv) उत्पादकता का सिद्धान्त

प्र.8 विषिष्ट कर क्या है?

प्र.9 स्थानीय करों से आप क्या समझते हैं?

प्र.10 सही/गलत का चयन कीजिए -

(i) आय कर राज्य सरकार का कर है।

(ii) बिक्री कर परोक्ष कर की श्रेणी में आता है।

(iii) मूल्यानुसार कर वस्तु के मूल्य के आधार पर लगाया जाता है।

(iv) प्रत्यक्ष कर के अन्तर्गत कराघात एवं कर का भार एक ही व्यक्ति पर हाता है।

प्र.11 कर की दर के आधार पर करारोपण कितने प्रकार से किया जाता है?

9.8 सारांश (Summary)

करारोपण एक अत्यंत प्राचीन अवधारणा है। सरकारों को अपने सार्वजनिक कार्यों को पूरा करने के लिए करारोपण के माध्यम से आवश्यक धनराशि प्राप्त करनी होती है, जिसे जनता द्वारा अदा किया जाता है। करारोपण की प्रक्रिया सरकार द्वारा मनमाने तरीके से नहीं की जा सकती। इसके लिए विभिन्न करारोपण सिद्धांतों का सहारा लिया जाता है, लेकिन यह प्रक्रिया देश की अर्थव्यवस्था की प्रकृति पर निर्भर करती है।

एडम स्मिथ, विलियम पेटी, डि-मार्को, डॉल्टन, मसग्रेव, कॉलवर्ट, वैगनर, और सैलिगमैन जैसे अर्थशास्त्रियों ने करारोपण के लिए विभिन्न सैद्धांतिक विचारों का प्रतिपादन किया है।

करारोपण का वर्गीकरण भी विभिन्न आधारों पर किया जाता है। किसी देश की सरकार अपनी आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के आधार पर विभिन्न प्रकार के करों का चयन करती है। सामान्यतः करों का वर्गीकरण प्रत्यक्ष कर, परोक्ष कर, एकल कर, बहुकर, और कर दर के आधार पर किया जाता है।

सरकार के कार्यों की पूर्ति गैर-कर राजस्व से पूरी नहीं की जा सकती, इसीलिए करारोपण की आवश्यकता होती है। अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करने और उसे संतुलित रखने के लिए भी करारोपण का सहारा लिया जाता है।

9.9 शब्दावली (Glossary)

- कर – सरकार द्वारा जनता से अनिवार्य रूप से वसूला जाने वाला अंशदान ।
- सार्वजनिक सत्ता – सरकार
- करदाता – कर को अदा करने वाले व्यक्ति/संस्था करदाता कहलाता है।
- मिव्ययता – कम या आवश्यकतानुसार खर्च करने की प्रवृत्ति ।
- द्रव्य - मुद्रा की राशि।
- लोचता – लचीला पन।

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- वार्ष्णेय, जे0सी0 (1997), राजस्व (Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स,आगरा।
- पंत, जे0सी0 (2005), राजस्व (Public Finance), द्वादष संस्करण, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, प्रकाशक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।

- भाटिया एच0एल0 (2008), लोकवित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- मिश्रा एवं पुरी (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

9.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- Agarwal, R.C. (2006), Public Finance, Lakshmi Narayan Agarwal, Agra.
- रुद्र, दत्त एवं के0पी0एम0 सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द एण्ड कं0 लि0, रामनगर, नई दिल्ली।
- सेठी, टी0टी0 (2008), मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type Questions)

प्रश्न 1. करारोपण से आप क्या समझते हैं? करारोपण के सिद्धान्तों की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 2. करारोपण के सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 3. करारोपण का वर्गीकरण कीजिए?

प्रश्न 4. करारोपण की आवश्यकता की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए?

प्रश्न 5. प्रत्यक्ष तथा परोक्ष करों को स्पष्ट करते हुए उनके गुण-दोषों की विवेचना कीजिए?

इकाई 10 करारोपण का प्रभाव - उत्पादन, वृद्धि, वितरण और संसाधनों के आवंटन पर

(Effects of Taxation on Production, Growth, Distribution and Allocation of Resources)

10.1 प्रस्तावना(Introduction)

10.2 उद्देश्य(Objectives)

10.3 करारोपण के अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

10.3.1 करारोपण का उत्पादन पर प्रभाव

10.3.2 करारोपण का वृद्धि पर प्रभाव

10.4 करारोपण: वितरण और संसाधन आवंटन पर प्रभाव

10.4.1 करारोपण का वितरण पर प्रभाव

10.4.2 करारोपण और संसाधनों का आवंटन: प्रभाव और प्रबंधन

10.4.3 करारोपण के प्रभाव एवं भारतीय अर्थव्यवस्था

10.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

10.6 सारांश (Summary)

10.7 शब्दावली(Glossary)

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची(References/Bibliography)

10.9 सहायक/ उपयोगी ग्रन्थ(Useful / Helpful text)

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

पूर्व की इकाई में आपने करारोपण के सिद्धांतों का अध्ययन किया होगा और उनकी उपयोगिता तथा प्रासंगिकता को समझा होगा। आपने करारोपण के विभिन्न वर्गीकरणों को भी भलीभांति समझा होगा, जो विभिन्न आधारों पर निर्धारित किए गए हैं। प्रस्तुत इकाई लोक राजस्व और बजटिंग ब्लॉक से संबंधित दसवीं इकाई है, जो करारोपण के प्रभावों पर केंद्रित है।

इस इकाई के अंतर्गत, आप करारोपण के अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रभावों का विस्तृत अध्ययन करेंगे। करारोपण के प्रभावों को उत्पादन, वृद्धि, वितरण और संसाधनों के आवंटन पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों दृष्टिकोणों से स्पष्ट किया जाएगा, जो आपके लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होंगे।

करारोपण के प्रभाव एकतरफा नहीं होते, बल्कि बहुपरकारी होते हैं, जो किसी भी अर्थव्यवस्था को विभिन्न रूपों में प्रभावित करते हैं और सरकार या लोकसत्ताओं के उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक होते हैं। इसलिए, करारोपण के प्रभाव सरकार द्वारा पूर्व निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार तय किए जाते हैं। साथ ही, अर्थव्यवस्था की प्रकृति और सरकार की कार्यान्वयन नीतियाँ भी करारोपण के प्रभावों को विभिन्न दिशाओं की ओर मोड़ने में सहायक होती हैं।

10.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि :

- ✓ करारोपण के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव किन-किन दिशाओं में क्रियाशील होते हैं?
- ✓ आप अध्ययन कर सकेंगे कि करारोपण के द्वारा उत्पादन किस प्रकार तथा किस दिशा में प्रभावित होता है।
- ✓ करारोपण से उत्पादन प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से किस प्रकार प्रभावित होता है?
- ✓ करारोपण का वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभावों को भी आप इस इकाई के द्वारा भलीभांतिसमझ सकेंगे?
- ✓ आप समझ सकेंगे कि करारोपण द्वारा किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये आय का पूर्ववितरण किस प्रकार किया जाता है तथा यह किस रूप में प्रभावित होता है?
- ✓ करारोपण से संसाधनों के आवंटन पर पड़ने वाले प्रभावों का भी आप भलीभांति अध्ययन कर सकेंगे।

10.3 करारोपण के अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

वर्तमान में करारोपण का महत्व अर्थव्यवस्थाओं के लिए और भी अधिक बढ़ गया है, क्योंकि यह अर्थव्यवस्था को विभिन्न दिशाओं में प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक निश्चित समयावधि में अर्थव्यवस्था की रोजगार, विकास, वृद्धि, सामाजिक न्याय, और आर्थिक समानता जैसी स्थितियों के आधार पर करारोपण से जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें करारोपण के प्रभावों के रूप में देखा जा सकता है।

आर्थिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन न केवल देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है, बल्कि सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं में भी बदलाव ला सकता है। हालांकि, इस इकाई में मुख्यतः करारोपण के आर्थिक पहलुओं पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

प्रोफेसर लर्नर ने करारोपण के प्रभावों पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं "कर नीति बनाते समय केवल आर्थिक लाभ या आय प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य नहीं होना चाहिए, बल्कि अर्थव्यवस्था में स्थिरता बनाए रखने

और तेजी या मंदी को रोकने पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। कर प्रणाली का उद्देश्य आर्थिक स्थिरता बनाए रखना होना चाहिए।"

इस प्रकार, यह कहना उचित होगा कि करारोपण के प्रभावों को किसी एक विशेष आयाम के साथ सीमित नहीं किया जा सकता। करारोपण के माध्यम से अर्थव्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं में परिवर्तन किया जाता है, जिन्हें सामूहिक रूप से करारोपण के प्रभावों के रूप में देखा जा सकता है।

10.3.1 करारोपण का उत्पादन पर प्रभाव

उत्पादन किसी भी अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिस पर करारोपण के प्रभाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। करारोपण का उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना निम्नवत रूप में की जा सकती है।

1. कार्य क्षमता इच्छा पर प्रभाव
2. बचत करने की क्षमता इच्छा पर प्रभाव
3. उत्पादनों के संसाधनों पर प्रभाव
4. उत्पादन तकनीकी पर प्रभाव
5. उत्पादन पर अन्य प्रभाव

1. कार्यक्षमता एवं इच्छा पर प्रभाव : करारोपण व्यक्ति की कार्य क्षमता और कार्य करने की इच्छा पर विभिन्न तरीकों से प्रभाव डालता है।

- ✓ कार्य करने की क्षमता पर प्रभाव: करारोपण की प्रकृति सीधे तौर पर व्यक्ति की कार्य करने की क्षमता को प्रभावित करती है। प्रत्यक्ष करों की तुलना में परोक्ष कर, विशेष रूप से निर्धन वर्ग की कार्यक्षमता पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं। इसके अलावा, आवश्यक वस्तुओं पर लगाए गए कर व्यक्ति की कार्यक्षमता को और अधिक प्रभावित कर सकते हैं, जबकि लोचदार या विलासिता की वस्तुओं पर लगाए गए कर का कार्यक्षमता पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
- ✓ कार्य करने की इच्छा पर प्रभाव: करारोपण व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा को भी प्रभावित करता है। प्रोफेसर मिल के अनुसार, "व्यक्ति केवल धनी नहीं होना चाहता, बल्कि दूसरों से अधिक धनी होना चाहता है।" यदि आनुपातिक कर प्रणाली अपनाई जाती है, तो कार्य करने की इच्छा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। हालांकि, अन्य कर प्रणालियाँ कार्य करने की इच्छा को विभिन्न तरीकों से प्रभावित कर सकती हैं।
- ✓ मानसिक प्रभाव:करारोपण व्यक्ति को मानसिक रूप से भी प्रभावित करता है, जिसका सीधा संबंध उसकी कार्य करने की क्षमता से होता है। बेलोचदार मांग में करारोपण कार्य करने की इच्छा पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। यदि आय की मांग लोच इकाई के बराबर होती है, तो व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन यदि आय की मांग लोचदार होती है, तो करारोपण

व्यक्ति की कार्य करने की इच्छा को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है, जिससे उत्पादन पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

2. बचत करने की क्षमता एवं इच्छा पर प्रभाव : बचत करने की क्षमता और बचत करने की इच्छा दोनों ही एक महत्वपूर्ण सीमा तक करारोपण द्वारा प्रभावित होती हैं।

- ✓ **बचत करने की क्षमता पर प्रभाव**: धनी वर्ग की बचत करने की क्षमता निर्धन वर्ग की तुलना में अधिक होती है। यदि कर की दरें प्रगतिशील होती हैं, तो बचत करने की क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उच्च कर दरों के कारण बचत करने की प्रेरणा घट जाती है। इसके विपरीत, यदि कर प्रणाली अधिक सहायक होती है, तो निम्न आय वर्ग की बचत करने की क्षमता बढ़ सकती है। करारोपण का प्रयोग वितरणीय असमानताओं को कम करने के लिए किया जा सकता है, जिससे समाज के सभी वर्गों की बचत करने की क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जो उत्पादन से भी जुड़ा होता है।

- ✓ **2. बचत करने की इच्छा पर प्रभाव**: बचत करने की इच्छा भी करारोपण द्वारा प्रभावित होती है। कर की प्रकृति, आकार और स्वरूप के आधार पर बचत करने की इच्छा विभिन्न स्तरों पर प्रभावित हो सकती है। विशेष रूप से, ब्याज पर कर और लाभ-आय पर उच्च दर से बचत करने की इच्छा प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है, जिससे उत्पादन पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

3. उत्पादन के संसाधनों पर प्रभाव : उत्पादन के संसाधनों पर करारोपण का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। कर नीति के माध्यम से सरकारें विभिन्न संसाधनों के उपयोग को प्रोत्साहित या हतोत्साहित कर सकती हैं।

- ✓ **प्रत्यक्ष कर:** प्रत्यक्ष करों का उत्पादन के संसाधनों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अगर इन करों की दरें अधिक होती हैं, तो यह पूंजी निर्माण और निवेश को प्रभावित कर सकती हैं, जिससे उत्पादन के संसाधनों की उपलब्धता घट सकती है।
- ✓ **परोक्ष कर:** परोक्ष करों का असर संसाधनों की मांग और आपूर्ति पर पड़ता है। यदि आवश्यक वस्तुओं पर अधिक कर लगाया जाता है, तो यह उनके उत्पादन के लिए आवश्यक संसाधनों की मांग को कम कर सकता है।
- ✓ **अन्य कर:** इसके अलावा, आय, संपत्ति, और बिक्री पर लगाए गए कर भी उत्पादन के संसाधनों के वितरण और उपयोग को प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार, करारोपण के माध्यम से संसाधनों का आवंटन और उपयोग प्रभावित होता है, जो उत्पादन की दिशा और उसकी मात्रा पर असर डालता है।

4. उत्पादन तकनीकी पर प्रभाव : करारोपण का उत्पादन तकनीकों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। सरकारें कर नीति के माध्यम से विभिन्न उत्पादन तकनीकों को प्रोत्साहित या हतोत्साहित कर सकती हैं।

- ✓ **प्रगतिशील कर:** यदि सरकार उच्चतम तकनीकों पर आधारित उत्पादन को प्रोत्साहित करना चाहती है, तो वह उन कंपनियों को कर में राहत दे सकती है जो अत्याधुनिक तकनीक का उपयोग करती हैं। इससे कंपनियां अधिक तकनीकी नवाचार की ओर अग्रसर होती हैं।
- ✓ **उत्पाद शुल्क और परोक्ष कर:** उत्पादन तकनीक पर परोक्ष करों का भी प्रभाव पड़ता है। यदि किसी विशेष उत्पादन विधि में उपयोग किए जाने वाले संसाधनों पर कर लगाया जाता है, तो कंपनियां उत्पादन के वैकल्पिक और सस्ते तरीकों की खोज कर सकती हैं।
- ✓ **हरित कर:** पर्यावरणीय कर, जो प्रदूषण फैलाने वाली तकनीकों पर लगाया जाता है, उत्पादन इकाइयों को स्वच्छ और पर्यावरण के अनुकूल तकनीकों का उपयोग करने के लिए प्रेरित कर सकता है।

इस प्रकार, करारोपण न केवल उत्पादन की मात्रा और दिशा को प्रभावित करता है, बल्कि यह यह तय करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है कि कौन सी उत्पादन तकनीकें अपनाई जाएंगी।

5. उत्पादन पर अन्य प्रभाव : करारोपण का उत्पादन पर कई अन्य महत्वपूर्ण प्रभाव भी पड़ता है, जो आर्थिक गतिविधियों और व्यावसायिक निर्णयों को प्रभावित करता है।

- ✓ **उत्पादन की लागत:** करारोपण से उत्पादन की कुल लागत में वृद्धि हो सकती है। यदि कर की दरें उच्च हैं, तो उत्पादन की लागत बढ़ जाती है, जिससे उत्पाद की कीमत में वृद्धि हो सकती है और मांग में कमी आ सकती है।
- ✓ **उत्पादकता:** कर नीति उत्पादकता को भी प्रभावित कर सकती है। उच्च कर दरें और जटिल कर संरचनाएं उत्पादकता को हतोत्साहित कर सकती हैं, जबकि स्पष्ट और सरल कर नीतियां उत्पादकता में वृद्धि कर सकती हैं।
- ✓ **उत्पादन के क्षेत्रीय वितरण:** करारोपण का एक प्रभाव यह भी है कि यह उत्पादन के क्षेत्रीय वितरण को प्रभावित कर सकता है। उच्च कर दरों वाले क्षेत्रों में उत्पादन कम हो सकता है, जबकि कम कर दरों वाले क्षेत्रों में निवेश और उत्पादन बढ़ सकता है।
- ✓ **उत्पादन का विस्तार:** अगर करारोपण की नीति व्यवसायों के लिए अनुकूल होती है, तो वे अपने उत्पादन को बढ़ाने के लिए प्रेरित हो सकते हैं। इसके विपरीत, करारोपण की प्रतिकूल नीतियां उत्पादन में विस्तार को सीमित कर सकती हैं।
- ✓ **नवाचार और अनुसंधान:** यदि सरकार अनुसंधान और विकास पर कर प्रोत्साहन देती है, तो कंपनियां अधिक नवाचार और नई तकनीकों के विकास में निवेश करने के लिए प्रेरित होती हैं। इससे उत्पादन के तरीकों में सुधार और दक्षता में वृद्धि हो सकती है।

इस प्रकार, करारोपण न केवल उत्पादन की मात्रा, बल्कि इसकी गुणवत्ता, वितरण और दीर्घकालिक विकास पर भी गहरा प्रभाव डालता है।

10.3.2 करारोपण का वृद्धि पर प्रभाव

प्रस्तुत खण्ड के अन्तर्गत करारोपण का वृद्धि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया है जो वृद्धि के आकार एवं स्वरूप को निम्नवत प्रभावित करता है।

- ✓ **वृद्धि के आकार पर प्रभाव** करारोपण वृद्धि दर को सीधे और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में प्रभावित करता है। वृद्धि दर को उच्च और स्थिर बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि देश में मुद्रास्फीति की दर सामान्य स्तर पर रहे। मंदी और तेजी की स्थितियाँ अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक हो सकती हैं, जिससे वृद्धि दर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वृद्धि की गति को स्थिर और निरंतर बनाए रखने के लिए सरकार को करारोपण की नीति का सहारा लेना पड़ता है। जब करों की दरें अधिक होती हैं, तो अक्सर वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं, जिससे जनता की क्रयशक्ति घट जाती है और देश की अर्थव्यवस्था पर दबाव बढ़ता है। इसके विपरीत, मंदी की स्थिति में करारोपण की दरें घटाकर जनता की क्रयशक्ति बढ़ाई जाती है, जिससे उत्पादन की मांग में वृद्धि होती है और वृद्धि दर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। किसी विशेष क्षेत्र में वृद्धि दर को बढ़ावा देने के लिए उत्पादकों को करों में छूट दी जाती है। जिन क्षेत्रों में करों की दरें अधिक और जटिल होती हैं, वहाँ की वृद्धि दरें नकारात्मक रूप से प्रभावित होती हैं।
- ✓ **वृद्धि के स्वरूप पर प्रभाव** अर्थव्यवस्थाओं को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है, जैसे प्राथमिक क्षेत्र, विनिर्माण क्षेत्र, और सेवा क्षेत्र। सरकार का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना होता है कि सभी क्षेत्रों का संतुलित विकास हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र की वृद्धि दर को बढ़ाने के प्रयास किए जाएं। जिन क्षेत्रों में वृद्धि दर की अधिक आवश्यकता होती है, उन क्षेत्रों में करारोपण की नीति को उदार बनाया जाता है और वृद्धि दर के अनुकूल समायोजन किया जाता है। इसके साथ ही, वृद्धि के निरंतर बने रहने के लिए भी करारोपण का उपयोग किया जाता है, ताकि उत्पादक वर्ग को इसका लाभ मिल सके। वृद्धि दर में होने वाले उतार-चढ़ाव का प्रभाव उत्पादन की लागत और आपूर्ति पर पड़ता है, जो उत्पादक और उपभोक्ता दोनों वर्गों के लिए हानिकारक हो सकता है, जिससे अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर बाधित होती है। सफल करारोपण नीति देशों की वृद्धि दर को उच्च स्तर पर ले जाने में सहायक होती है। साथ ही, करारोपण से प्राप्त राजस्व का उपयोग आवश्यक वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए किया जाता है, जिससे देश के विकास को बढ़ावा मिलता है। यदि इस राजस्व का उपयोग उत्पादक कार्यों में नहीं किया जाता है, तो वृद्धि दर नकारात्मक रूप से प्रभावित हो सकती है।

10.4 करारोपण: वितरण और संसाधन आवंटन पर प्रभाव

करारोपण के इन प्रभावों को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है :

10.4.1 करारोपण का वितरण पर प्रभाव

करारोपण के माध्यम से किसी भी देश में वितरण पर पड़ने वाले प्रभावों का अवलोकन किया जा सकता है। अर्थव्यवस्था की प्रकृति के आधार पर कुछ देशों में करारोपण का आय के वितरण पर स्वतः ही प्रभाव पड़ता है, जबकि अन्य देशों में इस वितरण को प्रभावित करने के लिए विशेष कर नीति बनाई जाती है। जिन देशों में आय की वितरणात्मक समस्या न्यून होती है, वहाँ करारोपण का वितरण पर प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है और इसे विशेष महत्व नहीं दिया जाता। परंतु अधिकांश देशों, विशेषकर पिछड़े और विकासशील देशों में, वितरण की समस्या एक प्रमुख चुनौती के रूप में उभरती है, और इसका आम जनता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस समस्या को हल करने के लिए सरकार को करारोपण का सहारा लेना पड़ता है, जिसके प्रभाव करारोपण की दर, स्वरूप, और प्रकृति पर निर्भर करते हैं। इसके साथ ही, वितरण की समस्या को कम करने की आवश्यकता का स्तर भी करारोपण के प्रभावों को निर्धारित करता है।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि सरकार के लिए केवल आय की वितरणात्मक समस्या को हल करना ही पर्याप्त नहीं है। इस वितरण को कम करने के प्रयास में बचत की क्षमता, निवेश की इच्छा और दिशा जैसे अन्य कारक भी महत्वपूर्ण होते हैं। इसलिए, सरकार को ऐसी राजकोषीय नीति का सहारा लेना पड़ता है, जो न केवल वितरण की समस्याओं को कम करे, बल्कि धनी वर्ग पर बचत और निवेश के संदर्भ में कोई नकारात्मक प्रभाव भी न डाले। देश में करारोपण की संरचना विभिन्न प्रकार से वितरण को प्रभावित करती है।

बेस्टेबल ने करारोपण और वितरण की समस्या पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, "धन की असमानताओं को ठीक करने के साधन के रूप में करारोपण को मानने की धारणा बहुत ही दृढ़ है| वित्तीय नीति की शक्ति के भीतर यह संभव है कि कर की दरों और स्वरूपों को इस प्रकार चुना जाए कि बिना किसी वर्ग पर अनुचित दबाव डाले आवश्यक धन प्राप्त किया जा सके। लेकिन यदि धन के वितरण पर ध्यान देना है और इस दिशा में कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कदम उठाने हैं, तो यह कार्य अत्यंत जटिल हो जाता है। यदि उद्देश्य समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना है, तो करारोपण में सूझबूझ से व्यवस्था करने के बजाय अधिक प्रत्यक्ष और प्रभावशाली विधियाँ उपलब्ध हैं।"

इसी संदर्भ में प्रो0 पीगू ने लिखा है, "यदि राष्ट्रीय लाभांश की मात्रा में कमी न हो, तो धन के वितरण में प्रत्येक ऐसा सुधार, जिससे निर्धनों के पास जाने वाली मात्रा में वृद्धि हो, सामूहिक कल्याण की अभिवृद्धि करेगा।"इस प्रकार स्पष्ट है कि करारोपण का आय के वितरण पर अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों ही दिशाओं में प्रभाव पड़ता है जो अर्थव्यवस्था की स्थिति तथा आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होता है।

करों के प्रकारों के सम्बन्ध में आप समझेंगे कि प्रगतिशील कर आय की वितरणीय असमानताओं को कम करने में सहायक होता है जबकि अधोगामी या प्रतिगामी करों का वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जोएकअर्थव्यवस्था के लिए नुकसानदायक होता है।

इस प्रकार प्रगतिशील करारोपण द्वारा धनी वर्ग से धन का प्रवाह निर्धन तथा गरीब वर्ग की ओर हो जाता है। इसी प्रकार परोक्ष करों की अपेक्षा प्रत्यक्ष करों का वितरण पर अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है। परोक्ष करों का वितरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है कयोंकि अन्ततः करारोपण का भार निम्न वर्ग तथा मध्यम वर्ग पर ही पड़ता है तथा धनी वर्ग इस प्रभाव से अलग रह जाता है। इसी प्रकार सबसे अच्छा कर आय कर है जो वितरण पर सबसे अधिक अनकल प्रभाव डालता है।

इसी क्रम में सम्पत्ति कर का भी वितरण पर अनुकूल प्रभावों को देखा जा सकता है। धनी तथा अधिक सम्पत्ति के मालिकों से कर की वसूली करके निर्धनों के सामाजिक कल्याण पर व्यय किया जा सकता है तथा निर्धनों की स्थिति में सुधार करने का प्रयास किया जा सकेगा। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि देश में पूँजी निवेश के लिये धनी वर्ग द्वारा ही बचतें काम आती हैं इसीलिए करारोपण से धनी वर्ग की उस राशि का ही प्रवाह निर्धनों की ओर किया जाना चाहिए जो देश के लिए निवेश या पूँजी के लिए सुरक्षित नहीं किया जा सकता है।

10.4.2 करारोपण और संसाधनों का आवंटन: प्रभाव और प्रबंधन

उत्पादन प्रक्रिया में संसाधनों का आवंटन इस प्रकार करना एक चुनौती होती है कि उनका उपयोग अधिकतम कुशलता से हो सके और उत्पादन की मात्रा बढ़ाई जा सके। साथ ही, सामाजिक लाभ में भी वृद्धि हो। देश में उत्पादन के स्वरूप, उपयोगिता, और आकार के आधार पर, संसाधनों के पुनः आवंटन की आवश्यकता अक्सर होती है। इस चुनौती से निपटने के लिए करारोपण का सहारा लिया जाता है। करारोपण का संसाधनों के आवंटन पर प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक, दोनों रूपों में हो सकता है, जो कर और उत्पादन की प्रकृति पर निर्भर करता है।

उदाहरण के लिए, समाज के लिए हानिकारक वस्तुओं के उत्पादन पर उच्च कर लगाकर, उनकी कीमतें बढ़ाई जाती हैं, जिससे उनका उपभोग कम हो जाता है। इससे उन वस्तुओं के उत्पादन में लगे संसाधनों को अधिक उपयोगी और उच्च मांग वाली वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में स्थानांतरित किया जा सकता है। यह प्रक्रिया न केवल राष्ट्रीय आय में वृद्धि करती है, बल्कि सामाजिक कल्याण को भी बढ़ाती है। इस प्रकार, करारोपण के माध्यम से हानिकारक वस्तुओं के उत्पादन से श्रम, पूंजी और अन्य संसाधनों को हटाकर, उन्हें लाभकारी वस्तुओं के उत्पादन में लगाया जाता है। इसे करारोपण का आवंटन पर सकारात्मक प्रभाव माना जा सकता है, जो अर्थव्यवस्था और सरकार दोनों के लिए लाभकारी होता है।

इसके साथ यह भी पाया गया है कि सकरार कर राजस्व को अधिक मात्रा में जुटाने के लिए आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन एवं बिक्री कर अधिक कर लगाती है जिससे इन वस्तुओं की मांग कम होती है तथा समाज में उपभोग भी घटता है या निर्धन वर्ग को हानि होती है तो ऐसे उद्योगों से संसाधनों का स्थानान्तरण नुकसानदाय उद्योगों की ओर होने लगता है जो राष्ट्रीय हित के लिए घातक ही कहा जायेगा। इसके साथ देश में संसाधनों का आवंटन कुशलता के साथ नहीं हो पाता और करारोपण का सहारा पुनः आवंटनात्मक कुशलता पैदा करने के लिए किया जाता है।

अत्यधिक करारोपण द्वारा उत्पादन के संसाधनों का प्रवाह अपने देश से विदेशों की ओर भी होने लगता है जो देश के लिए नुकसानदायक सिद्ध होता है और देश में पूँजी की कमी पैदा होती है जो आर्थिक विकास को अवरूद्ध करती है। सरकार विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिए एक सफल करारोपण की नीति का सहारा लेती है तथा इसका क्रियान्वयन बड़ी सावधानीपूर्वक करती है। कभी-कभी करारोपण की ऊँची दर उपभोग को कुछ समय के लिये रोक देती है तथा उसको भविष्य के लिए सुरक्षित किया जाता है। ऐसी स्थिति में संसाधनों का आवंटन वर्तमान समय से भविष्य के उत्पादन के लिए किया जाता है।

10.4.3 करारोपण के प्रभाव एवं भारतीय अर्थव्यवस्था

करारोपण के उत्पादन और वृद्धि पर प्रभावों का अध्ययन करने के बाद, आपने वितरण और संसाधनों के आवंटन पर करारोपण के प्रभावों का भी विश्लेषण किया है। इस बिंदु के अंतर्गत, आप करारोपण के विभिन्न क्षेत्रों में पड़ने वाले प्रभावों को समग्र रूप से समझ सकेंगे और भारतीय अर्थव्यवस्था में इन प्रभावों की प्रासंगिकता को भलीभांति जान सकेंगे।

आपको यह जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि भारत में बहुकर प्रणाली का प्रचलन है, जिसमें केन्द्र और राज्य सरकारें कुछ मदों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कर लगाती हैं। भारतीय कर प्रणाली पर राजनैतिक प्रभावों की भी अनदेखी नहीं की जा सकती है। भारत की विशालता और विविधता के कारण, राजनैतिक एकता और समरूपता प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। करारोपण के संदर्भ में, त्रिस्तरीय व्यवस्था विद्यमान है - केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें, और स्थानीय सरकारें/संस्थाएं सभी अपने-अपने कर प्रणालियों के साथ काम करती हैं।

भारतीय कर प्रणाली की प्रासंगिकता को प्रभावी बनाने के लिए समय-समय पर विभिन्न कमेटियों और आयोगों का गठन किया गया है। हालांकि, भारतीय कर प्रणाली की जटिल और विस्तृत नीतियों के कारण इन प्रभावों को एक सुसंगत दिशा में नहीं डाला जा सका है। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था के कारण, करारोपण के प्रभाव बहुदिशीय बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त, भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसी चुनौतियाँ भी हैं जो करारोपण के प्रभावों और सरकार की नीतियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में बाधक बनती हैं। आइए, इन मुद्दों पर गहराई से विचार करें।

1. विकास की तीव्र दर और आय वितरण की असमानताओं को कम करना
2. निजीकरण की प्रक्रिया और सामाजिक कल्याण
3. आर्थिक स्थिरता और निजी क्षेत्र में लाभ की दर
4. अंतर्राष्ट्रीय साख और गरीबी-लागत की समस्या
5. कर राजस्व और राजनीतिक लाभ की प्राप्ति
6. राज्यों और केन्द्र के बीच अच्छे संबंधों की कमी

ऊपर दिए गए छह बिंदुओं पर गहराई से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था वर्तमान कर प्रणाली और उसके प्रभावों के बीच तालमेल स्थापित करने में कठिनाई का सामना कर रही है। सरकारें समय-समय पर कर, मौद्रिक, और राजकोषीय नीतियों के बीच सामंजस्य बनाने के प्रयास करती रहती हैं। इन मुद्दों को सुलझाने के लिए करारोपण प्रणाली को एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में अपनाया जाता है। तीव्र आर्थिक विकास के लिए पूंजी का संकेन्द्रण और आय की वितरणीय असमानताओं को दूर करने के लिए पूंजी का प्रसरण आवश्यक है, और इसके लिए करारोपण के प्रभावों का सही ढंग से विभाजन आवश्यक है। केवल एक दिशा में करारोपण के प्रभावों से इस समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता है।

अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदलना भारत की अर्थव्यवस्था के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। आखिरकार, तेज आर्थिक विकास कब तक होगा? सामाजिक कल्याण के खर्चों पर आर्थिक विकास की चर्चा करके करारोपण के प्रभावों को न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता। राजनैतिक दृष्टिकोण से करारोपण के अलग-अलग प्रभावों के औचित्य को राजनेताओं और उद्योगपतियों के पक्ष में बनाये रखना मुश्किल होता है। करारोपण का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव केवल उसके आकार पर नहीं निर्भरता; इसकी संरचनात्मक प्रणाली और रूप भी महत्वपूर्ण होती है। जब एक उत्पाद क्रेताओं की रुचि को बदलता है, तो दूसरा उत्पाद वस्तुओं और सेवाओं की मांग को बदलता है।

आपको यह ध्यान में रखना चाहिए कि वर्तमान में राजकोषीय नीति केवल विकास, रोजगार और अर्थव्यवस्था के नियंत्रण के साथ-साथ राजनैतिक नियंत्रण का भी एक उपकरण बन गई है। करों में छूट और उदारता की प्रवृत्ति, साथ ही राजकोषीय घाटे की समस्या, करारोपण के प्रभावों को सीमित कर देती है। भारत में आर्थिक विषमता करारोपण के प्रभावों के आंकलन के लिए एक महत्वपूर्ण मानक बन गई है। राजकोषीय नीति के प्रभावों को समझने के लिए करारोपण के प्रभावों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है।

भारत जैसी अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की लचीलापन की कमी पाई जाती है, और कुछ क्षेत्रों में एकाधिकारात्मक अनियमितताएँ भी मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में मंदी और मुद्रास्फीति जैसी समस्याएँ एक साथ उभर सकती हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए केवल करों में कमी या वृद्धि करना पर्याप्त नहीं है। इसके लिए करारोपण प्रणाली में समय-समय पर आवश्यक संशोधन की आवश्यकता होती है। कई बार सरकारों को कड़े उपायों को अपनाना पड़ता है। यदि इन कड़े उपायों को प्रारंभ से ही लागू किया जाए, तो राजकोषीय नीति से जुड़ी समस्याओं का समाधान संभव हो सकता है।

केन्द्र सरकार तथा केन्द्रीय बैंक की राजकोषीय नीति सम्बन्धी उपायों पर भले ही अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा प्रदान की जा सकती है किन्तु करारोपण व्यवस्था में राज्य सरकारों के हस्तक्षेप से भी करारोपण के प्रभावों में विरोधाभास की स्थिति पैदा हो जाती है। केन्द्र तथा विभिन्न राज्यों में अलग-अलग राजनैतिक दलों की सरकारों के अस्तित्व के कारण करारोपण के प्रभावों में समग्रता को नहीं देखा जा सकता। आपको यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि भारत में सभी राजनैतिक दलों के आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों में समरूपता का पाया जाना

आवश्यक नहीं है। जिसके आधार पर कर प्रणाली एवं करारोपा के प्रभाव दोनों को अलग-अलग दिशाओं में देखा गया है।

जब सरकार करारोपण की नीति बनाती है, तो यह अपेक्षा की जाती है कि एक क्षेत्र में करारोपण के बाद स्थिति जस की तस रहे और दूसरे क्षेत्र में वांछित परिवर्तन आएं। हालांकि, अगर एक क्षेत्र में करारोपण के सीधे प्रभाव नहीं दिखते, तो भी इसका परोक्ष असर दूसरे क्षेत्र में देखा जा सकता है। ये प्रभाव लोगों की जिज्ञासाओं, भावनाओं और मानसिकताओं पर आधारित होते हैं और इनमें वृद्धि हो सकती है। इसलिए, यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि करारोपण का प्रभाव सिर्फ एक विशेष क्षेत्र तक सीमित रहेगा। सरकार को कर प्रणाली का उपयोग एक नीतिशास्त्र के रूप में करना पड़ता है।

भारत में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार की कर प्रणालियाँ अपनाई जाती हैं। प्रत्यक्ष करों से बचने के लिए लोग अक्सर परोक्ष करों का सहारा लेते हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में कई नैतिक समस्याएँ भी हैं जो करारोपण के प्रभावों को सीमित कर देती हैं। कड़े नियम और उपाय इन प्रभावों को सही दिशा में ले जाने में मदद करते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में करारोपण के प्रभावों को सही दिशा में लागू करने में कई समस्याएँ आती हैं। इनमें से एक बड़ी समस्या करवंचना और कर-चोरी है। जब लोग या कंपनियाँ कर छुपाने की कोशिश करती हैं, तो इससे करारोपण के प्रभाव कम हो जाते हैं।

इसके अलावा, भारतीय कर प्रणाली का लचीलापन भी इन समस्याओं को बढ़ाता है। कर प्रणाली में बदलाव अक्सर लोगों और कंपनियों की योजनाओं को बदल देते हैं, जिससे करारोपण के प्रभाव सीमित हो जाते हैं। इसका मतलब है कि कर प्रणाली को नागरिकों के लाभ के लिए सही तरीके से लागू करना मुश्किल हो जाता है।

10.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्रश्न 1 प्रत्यक्ष कर वितरणीय असमानताओं को दूर करने में किस दिशा में कार्य करता है?

प्रश्न 2 आवश्यक वस्तुओं पर लगाये गये कर व्यक्ति की कार्यक्षमता को किस रूप में प्रभावित करते हैं?

प्रश्न 3 ब्याज पर कर की ऊँची दर बचत करने की इच्छा पर कैसा प्रभाव डालती है?

प्रश्न 4 सही या गलत का निशान लगाओ?

(i) यदि कर की दरें प्रगतिशील हैं तो बचत की क्षमता दुष्प्रभावित होती हैं।

(ii) कार्य क्षमता पर करारोपण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(iii) करारोपण के द्वारा वृद्धि दर को प्रभावित किया जाता है।

(iv) करों की राहत वृद्धि दर को प्रतिकूल दिशा में प्रभावित करती हैं।

प्रश्न 5 रिक्त पूर्ति करो?

(i) करारोपण वितरणीय ---- को कम करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

(ii) करारोपण का संसाधनों के आवंटन पर ----- तथा ----- दोनों ही प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं।

(iii) करारोपण व्यक्ति के कार्य ---- एवं ------ को प्रभावित करता है।

(असमानताओं, क्षमता-इच्छा, अनुकूल-प्रतिकूल)

10.6 सारांश (Summary)

आखिर में, कहा जा सकता है कि करारोपण का असर अर्थव्यवस्था के सभी मुख्य हिस्सों पर पड़ता है। करारोपण की प्रकृति कार्य करने की क्षमता और इच्छा को प्रभावित करती है, जिससे उत्पादन भी प्रभावित होता है।

बचत करने की क्षमता और इच्छा भी उत्पादन से जुड़ी होती है। इसके अलावा, उत्पादन के संसाधन भी करारोपण से प्रभावित होते हैं, और यही बात उत्पादन की तकनीकी के बारे में भी सही है।

उच्च कर दरें उत्पादन और वृद्धि पर बुरा असर डालती हैं, जबकि करों में छूट और कम दरें सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। करारोपण के जरिए समाज में आर्थिक असमानताओं को कम या ज्यादा किया जा सकता है, जो कर की प्रकृति पर निर्भर करता है।

उत्पादन के संसाधन और उनकी गतिशीलता भी करारोपण से प्रभावित होती है। भारत में करारोपण की लचीली प्रकृति करारोपण के प्रभावों को विभिन्न दिशाओं में बदल सकती है।

10.7 शब्दावली (Glossary)

उत्पादन - किसी वस्तु/सेवा को और अधिक उपयोगी बनाना उत्पादन कहलाता है। या किसी वस्तु या सेवा में उपयोगिता का सृजन करना ही उत्पादन होता है।

- वृद्धि – किसी देश के अन्तर्गत उत्पादन में दीर्घकालीन वृद्धि।
- विकास - उत्पादन में दीर्धकालीन वृद्धि के साथ संस्थागत परिवर्तनों का योग विकास कहलाता है।
- उत्पादन तकनीकी – उत्पादन को प्राप्त करने के लिए साधनों को समायोजित करने का तरीका।
- बचत - आय का वह भाग जिसे उपभोग पर व्यय नहीं किया जाता है
- साधन – उत्पादन में पाँच साधन – भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध, साहस ।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Refrences/Bibliography)

- भाटिया एच0एल0 (2006), लोकवित्त (Public Finance), विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- वार्ष्णेय, जे0सी0 (2001), राजस्व (Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- पंत, जे0सी0 (2001), राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, प्रकाषक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- मिश्रा एवं पुरी (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

10.9 सहायक/उपयोगी ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- रुद्र, दत्त एवं के. पी. एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कं. लि. , रामनगर, नई दिल्ली।
- Agarwal, R.C. (2006), Public Finance, Lakshmi Narayan Agarwal, Agra.
- सेठी, टी. टी. (2001), मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशन, आगरा ।

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

प्रश्न 1 करारोपण से आप क्या समझते हैं? करारोपण के सिद्धान्तों की आवश्यकता को स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 2 करारोपण आय की वितरणीय असमानताओं को किस सीमा तक कम करने में सहायक होता है? स्पष्ट कीजिए

प्रश्न 3 क्या करारोपण संसाधनों को कुशलतम प्रयोग को बढ़ावा देता है? इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए?

इकाई 11 करापात एवं कर-विवर्तन (Incidence and Shifting of Tax)

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 करापात की अवधारणा

11.3.1 करापात की परिभाषा

11.3.2 करापात के रूप

11.3.3 करापात एवं कराघात में अन्तर

11.4 कर विवर्तन की अवधारणा

11.4.1 करापात एवं करविवर्तन के सिद्धान्त

11.4.2 कर विवर्तन के प्रकार

11.4.3 विभिन्न बाजारों में कर विवर्तन

11.5 महत्वपूर्ण करों की स्थिति में कर-विवर्तन

11.6 अभ्यास प्रश्न

11.7 सारांश

11.8 शब्दावली

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.10 सहायक/ उपयोगी ग्रन्थ

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

यह इकाई 'लोक राजस्व' की ग्यारहवीं इकाई है, जिसमें हम करापात (Tax Incidence) और कर विवर्तन (Tax Shifting) के बारे में जानेंगे। इससे पहले की इकाई में आपने करारोपण (Taxation) के प्रभावों के बारे में पढ़ा था। करारोपण का प्रभाव केवल किसी एक क्षेत्र पर नहीं पड़ता, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था पर इसका असर होता है।

इस इकाई में, आप करापात और कर विवर्तन के विभिन्न पहलुओं को समझेंगे। सबसे पहले, हम करापात की अवधारणा और विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई करारोपण की परिभाषाओं को जानेंगे। इसके बाद, आप करापात के विभिन्न रूपों के बारे में पढ़ेंगे और कराघात (Tax Burden) और करापात के बीच के अंतर को भी समझ पाएंगे।

इसके बाद, हम कर विवर्तन की अवधारणा पर चर्चा करेंगे। आप इसके सिद्धांतों और प्रकारों को भी समझेंगे। कर विवर्तन कोई साधारण अवधारणा नहीं है, बल्कि यह अर्थव्यवस्था की प्रकृति और करों की स्थिति के आधार पर बदलती रहती है। इसलिए, इस इकाई के माध्यम से, आप किसी अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण करों के संदर्भ में कर विवर्तन की स्थिति को भी अच्छे से समझ पाएंगे।

11.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन आपके लिए अत्यन्त ही उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होगा क्योंकि :

- ✓ इस इकाई का अध्ययन करने से आप करारोपण के बाद करों के वास्तविक बोझ को समझ पाएंगे, जिससे आपको करापात की उपयोगिता और महत्व के बारे में जानकारी मिल सकेगी।
- ✓ आप समझ पाएंगे कि करापात जनता से किस प्रकार वसूला जाता है और इसे वसूलने का वास्तविक तरीका क्या होता है।
- ✓ सरकार द्वारा जनता पर लगाया जाने वाले कर के बारे में उत्पन्न विभिन्न प्रकार की भ्रांतियों से आप परिचित हो सकेंगे।

आप यह जान सकेंगे कि सरकार विभिन्न प्रकार के कर क्यों लगाती है और उनका वास्तविक बोझ जनता पर कहाँ और किस रूप में पड़ता है।

11.3 करापात की अवधारणा

जब सरकार किसी व्यक्ति या संस्था पर कर लगाती है, तो वह व्यक्ति या संस्था अक्सर इस कर की राशि को खुद नहीं चुकाना चाहता, बल्कि इसे दूसरों से वसूलकर सरकार को जमा करना चाहता है। कभी-कभी यह संभव होता है, और कभी-कभी ऐसा करना संभव नहीं होता। आमतौर पर, सरकार द्वारा लगाए गए कर की राशि जिसे अंततः जिस व्यक्ति या संस्था से वसूली जाती है, वही करापात कहलाता है।

इस प्रकार, करापात वह अंतिम चरण होता है जिसमें कर की राशि किसी अन्य आर्थिक इकाई से आगे वसूली नहीं जा सकती। इसलिए, हम कह सकते हैं कि सरकार द्वारा लगाए गए कर का वास्तविक बोझ जिस आर्थिक इकाई को अंत में उठाना पड़ता है, उसे ही करापात कहा जाता है।

11.3.1 करापात की परिभाषा

करापात को अनेक अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग रूप में परिभाषित किया है।

1. मसग्रेव के अनुसार:- "करभार शब्द, जिसका साधारणतः प्रयोग किया जाता है, कर के अन्तिम या प्रत्यक्ष मौद्रिक भार के स्थान से सम्बन्धित होता है।"

2. डॉल्टन के शब्दों में:- "कर के भार की समस्या इस बात से सम्बन्धित रहती है कि कौन उसका भुगतान करता है।"

3. प्रो. पीगू के अनुसार:- "जो धन सरकारी कोष में पहुँचता है वह किसकी जेब से निकलता है अथवा किसकी जेब में वह धन सुरक्षित रहता, यदि कर के रूप में सरकार उसे न ले लेती।" अतः कर भार के अन्तर्गत यह ज्ञात किया जाता है कि कर-विवर्तन के क्या कारण हैं और यह किस सीमा तक किया जा सकता है। कर भार उस व्यक्ति पर होता है, जो इसे और किसी पर टाल ही नहीं सकता।"

4. वान मेरिंग के अनुसार:- "कर भार वह बिन्दु है जहाँ पर कर का अन्तिम भार पड़ता है।"

5. प्रो. मेहता के अनुसार:- "कर का भार एक कर का प्रत्यक्ष मौद्रिक भार है।"

11.3.2 करापात के रूप

करापात की अवधारणा एवं परिभाषाओं को समझने के बाद आप करापात के विभिन्न रूपों का अध्ययन इस उपखण्ड में कर सकेंगे। सामान्यतः करापात को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है।

1. प्रत्यक्ष मौद्रिक भार :- इस करापात के रूप में उस वित्तीय भार को शामिल किया जाता है जिसे करदाताओं को मुद्रा के रूप में सरकार को जमा करना होता है। इस प्रकार, प्रत्यक्ष मौद्रिक भार कर राजस्व के बराबर होता है।

2. प्रत्यक्ष गैर-मौद्रिक भार :- प्रत्यक्ष गैर मौद्रिक कर भार से हमारा मतलब उस बोझ से है, जो जनता को करों के बाद सहना पड़ता है, लेकिन जिसे मुद्रा के रूप में मापा नहीं जा सकता। करापात के परिणामस्वरूप होने वाली गैर मौद्रिक हानियों को इसी श्रेणी में रखा जाता है।

3. वास्तविक प्रत्यक्ष भार:- करापात के द्वारा जनता द्वारा सहन करने वाले प्रत्यक्ष मौद्रिक भार तथा प्रत्यक्ष गैर मौद्रिक भारों का योग वास्तविक प्रत्यक्ष भारों के बराबर होता है।

4. अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार :- "अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार" से तात्पर्य उस वित्तीय बोझ से है, जिसे करदाताओं को सीधे तौर पर नहीं बल्कि किसी वस्तु या सेवा की कीमत में वृद्धि के रूप में वहन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी उत्पाद पर कर लगाया जाता है, तो उत्पाद की कीमत बढ़ सकती है, और यह अतिरिक्त लागत अंततः उपभोक्ताओं द्वारा चुकाई जाती है। यह बोझ प्रत्यक्ष नहीं होता, क्योंकि इसे सीधे कर के रूप में नहीं देखा जाता, बल्कि मूल्य वृद्धि के रूप में अनुभव किया जाता है।

5. अप्रत्यक्ष गैर-मौद्रिक भार:- करारोपण के बाद होने वाली हानियों के बाद जनता पर पड़ने वाले ऐसे भारों को जो गैर-मौद्रिक होते हैं, अप्रत्यक्ष गैर-मौद्रिक भार के रूप में जाना जाता है।

6. वास्तविक अप्रत्यक्ष भार:- करापात के इस रूप के अन्तर्गत अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार तथा अप्रत्यक्ष गैर मौद्रिक भारों के योग को शामिल किया जाता है। इस प्रभावों को प्रायः अर्थव्यवस्था में करापात के कारण उत्पन्न परिवर्तनों को शामिल किया जाता है।

11.3.3 करापात एवं कराघात में अन्तर

आप अब तक करापात की अवधारणा और इसके विभिन्न रूपों को अच्छी तरह समझ चुके होंगे। अब यह समझना भी बहुत महत्वपूर्ण है कि करापात और कराघात के बीच क्या मूलभूत अंतर होता है, ताकि किसी भी प्रकार का भ्रम दूर किया जा सके। करापात और कराघात के बीच के अंतर को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. कराघात उस व्यक्ति या आर्थिक इकाई से संबंधित होता है जो कर को सरकार के खाते में जमा करता है। इस व्यक्ति की पूर्ण जिम्मेदारी होती है कि सरकार द्वारा मांगी गई कर राशि को समय पर जमा करे। यह व्यक्ति न तो कर जमा करने से मना कर सकता है और न ही अपनी असमर्थता व्यक्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में, जिस व्यक्ति पर कर लगाया जाता है, उस पर पड़ने वाले दायित्व को कराघात कहा जाता है। कराघात उस व्यक्ति से संबंधित है जो अंततः सरकार द्वारा लगाए गए कर का बोझ उठाता है और जिससे अनिवार्य रूप से कर वसूला जाता है, चाहे वह खुद कर जमा करे या कोई और। करों की प्रकृति के आधार पर करापात की देयता तय की जाती है।

2. कराघात का सम्बन्ध सरकार द्वारा वसले जाने वाले उस भार से है जो मौद्रिक रूप में होता है जबकि करापात का सम्बन्ध मौद्रिक होने के साथ गैर-मौद्रिक होता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कर को वहन करने वाले को सहना होता है।

3. सामान्य रूप से कहा जा तो यह अत्यन्त आसान एवं सरल होगा कि करकाघात कर प्रणाली का प्रारम्भिक भाग है तो करापात कर प्रणाली का अन्तिम चरण होता है।

4. कराघात के बाद कर के भार का विवर्तन संभव होता है जबकि करापात स्वतः ही कर का विवर्तित रूप होता है।

5. सरकार को यह मालूम हो कि कर का विवर्तन किस दिशा में होगा तब ऐसी स्थिति में कराघात को कर प्रणाली का एक भाग माना जायेगा क्योंकि करारोपण के बिना कर का संग्रहण सम्भव नहीं हो सकता है। इसी क्रम में करापात सरकाकर की कर प्रणाली का उद्देश्य होता है जिससे सरकारी क्रियाकलापों का क्रियान्वयन एवं वित्तीय व्यवस्था प्रभावित होती है।

6. कराघात की एक वैधानिक अवधारणा है तथा कर देने वाले व्यक्ति या इकाई सरकार के प्रति जबावदेय होती है जबकि करापात का सम्बन्ध व्यक्तिगत रूप से होता है इसका सम्बन्ध सरकार के प्रति जबावदेयता से नहीं है।

11.4 कर-विवर्तन की अवधारणा

आप अब समझ गए होंगे कि कराघात और करापात के बीच का अंतर कैसे उत्पन्न होता है। कर विवर्तन की अवधारणा मुख्य रूप से कराघात और करापात के बीच के अंतर से संबंधित है। सामान्यतः, कर विवर्तन से हमारा मतलब उस प्रणाली से है जिसमें करदाता कर के बोझ को किसी अन्य व्यक्ति या इकाई पर डालने में सफल हो जाता है। करदाता यह तय करता है कि कर के कितने हिस्से को दूसरों पर डाला जा सकता है, यह कर की प्रकृति और वस्तु की कीमत की लोच पर निर्भर करता है।

कर विवर्तन को कराघात और करापात के बीच की एक कड़ी के रूप में देखा जा सकता है। जहां सरकार कर संग्रहण के लिए एक व्यक्ति या इकाई को आधार बनाती है (कराघात), वहीं करदाता कर के बोझ को दूसरों पर डालने के लिए कुछ व्यवस्थाओं का सहारा लेता है, ताकि वह कर जमा करने की प्रतिबद्धता पूरी करे, लेकिन अंतिम रूप से कर का बोझ खुद न उठाए (करापात)। इसके लिए वह कर का बोझ उन वस्तुओं या इकाइयों से संबंधित व्यक्तियों पर डालता है।

इस प्रकार, जब कराघात और करापात अलग-अलग व्यक्तियों या संस्थाओं पर लागू होते हैं, तो इस प्रक्रिया को कर विवर्तन कहा जाता है। कुछ करों की स्थिति में विवर्तन संभव होता है, जबकि कुछ करों की स्थिति में करापात को दूसरों पर नहीं डाला जा सकता।

11.4.1 करापात एवं कर विवर्तन के सिद्धान्त

सामान्य रूप से कर विवर्तन को दो सिद्धान्तों के आधार पर समभव बनाया गया है।

1. केन्द्रीयकरण का सिद्धान्त:- करापात का केन्द्रीयकरण सिद्धान्त के अनुसार सरकारक द्वारा किये जाने वाले करारोपण का भार अन्ततः एक ही स्थान पर आकर केन्द्रित हो जाता है। देश में किसी भी वस्तु या सेवा पर किसी भी प्रकार का कर लगाया जाय उसका समस्त भार अन्ततः भूमि/कृषि पर ही पड़ता है। करों का विवर्तन भी इसी प्रकार क्रियाशील होता है कि अन्तिम करापात भूमि पर ही पड़ता है।

2. कर-प्रसारण सिद्धान्त :- इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांसीसी अर्थशास्त्री केनार्ड द्वारा किया गया। यह सिद्धान्त केन्द्रीयकरण सिद्धान्त के विपरीत तथ्य पर आधारित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार करारोपण कहीं भी किया जाय परन्तु उसका प्रभाव अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों एवं भागों में फैल जाता है। अर्थात् करारोपण का भार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को वहन करना होता है। सर हैमिल्टन के अनुसार, "प्रसार के सिद्धान्त में कदाचित आशावादी सिद्धान्त से भी अधिक सच्चाई है, और वह यह कि करों की प्रवृत्ति फैलने तथा समान होने की होती है और वे निश्चितता तथा एकसारिता से लगाये जायें तो प्रसारित होकर प्रत्येक सम्पत्ति पर ही अपना भार डालेंगे।" कर का विवर्तन इस प्रकार होता है कि समय के साथ-साथ कर का भार सम्पूर्ण समाज में फैल जाता है।

11.4.2 कर विवर्तन के प्रकार

कर विवर्तन की अवधारणा को आप भली-भांति समझ गये होंगे। इसके बाद अब यह समझना भी आपके लिए अत्यन्त आवश्यक होगा कि कर विवर्तन कितने प्रकार का होता है। कर विवर्तन के निम्नलिखित प्रकारों के बारे में आप अच्छी तरह से अध्ययन कर सकेंगे :-

1. अग्रगामी कर-विवर्तन

2. पश्चगामी कर–विवर्तन

3. अग्रोन्मुखी कर-विवर्तन

अब आप कर विवर्तन के ऊपर लिखे प्रकारों के बारे में विस्तार से समझ सकेंगे।

1. अग्रगामी कर विवर्तन :-

अग्रगामी कर-विवर्तन से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें कर देने वाला व्यक्ति या संस्था कर का बोझ अगले संबंधित व्यक्ति पर डालने में सफल हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि बिक्री कर लगाया गया है, तो उस कर का भुगतान विक्रेता को करना होगा, लेकिन विक्रेता इसे अपनी जेब से नहीं भरेगा। इसके बजाय, विक्रेता वस्तु की कीमत बढ़ा देगा और इस बढ़ी हुई कीमत को क्रेता से वसूल करेगा, जिसे सामान्यतः उपभोक्ता कहा जाता है।

इस प्रकार, अग्रगामी कर विवर्तन में विक्रेता कर का बोझ वस्तु की कीमत बढ़ाकर उपभोक्ता पर डाल देता है, और उपभोक्ता इस बोझ को आगे नहीं बदल सकता। इसलिए, अग्रगामी कर विवर्तन में कराघात विक्रेता पर पड़ता है, जबकि करापात वस्तु के उपभोक्ता पर होता है।

2. पश्चगामी कर विवर्तन :- पश्चगामी कर विवर्तन, अग्रगामी कर विवर्तन की उलटी प्रक्रिया होती है। इसमें करदाता का बोझ उस वस्तु या सेवा से संबंधित पूर्ववर्ती व्यक्ति या इकाई पर डाला जाता है, और कर का बोझ पिछली इकाई द्वारा उठाया जाता है। जब कर भार को पीछे की ओर डाला जाता है, तो इसे पश्चगामी कर विवर्तन कहा जाता है।

उदाहरण के लिए, अगर सरकार उत्पादन कर लगाती है, तो कर का बोझ दो तरीकों से डाला जा सकता है। पहला तरीका यह है कि उत्पादन कर को उत्पादन की कीमत बढ़ाकर क्रेता से वसूला जाए। दूसरा तरीका यह है कि उत्पादन में प्रयुक्त कच्चे माल की कीमतों में कर की राशि के बराबर कमी कर दी जाए, ताकि कर का बोझ कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले पर डाला जाए।

इस प्रकार, पश्चगामी कर विवर्तन में करापात पिछली प्रक्रिया में शामिल होता है और उसे परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से वसूला जाता है।

3. अग्रोन्मुखी कर विवर्तन:- यह कर विवर्तन की वह अवस्था है जिसके अन्तर्गत करापात को आगे की ओर विक्रेता तथा उपभोक्ता के पूर्व के मध्यस्थों पर टाला जाता है। इस प्रक्रिया में कर भार को एक से अधिक क्रेताओं तथा छोटे विक्रेताओं पर टाला जाता है। इस प्रकार यह कर विवर्तन उपभोक्ता से पूर्व तक का अग्रगामी कर विवर्तन है।

11.4.3 विभिन्न बाजारों में कर विवर्तन

प्रस्तुत उपखण्ड के अन्तर्गत आप अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत विद्यमान विभिन्न बाजारों में कर–विवर्तन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर सकेंगे। यहाँ पर हम सामान्य रूप से पूर्ण प्रतियोगी बाजार, एकाधिकार बाजार तथा अपूर्ण प्रतियोगी बाजार के अन्तर्गत व्यक्ति या संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले कर–भार के विवर्तन की आलोचनात्मक व्याख्या करेंगे।

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कर–विवर्तन :-

कर विवर्तन की व्याख्या करते समय, हम पूर्ण प्रतियोगी बाजार में यह देख सकते हैं कि कर को किस प्रकार और कितनी सीमा तक स्थानांतरित किया जा सकता है। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में समरूप वस्तुएँ बिकती हैं और विक्रेता एवं क्रेताओं की संख्या अधिक होती है। यहाँ, सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि क्रेताओं को बाजार की पूरी जानकारी होती है और वस्तुओं की कीमतें समान रूप से वसूली जाती हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार में, विक्रेता और क्रेता दोनों का प्रयास होता है कि विक्रेता पर पड़ने वाले कराघात को क्रेता पर अधिकतम सीमा तक डाला जाए। वहीं, क्रेता का प्रयास होता है कि कर का बोझ विक्रेता तक ही सीमित रहे। अर्थात्, इस बाजार में विक्रेता और क्रेता दोनों कर के बोझ को कम से कम सहन करने की कोशिश करते हैं।

हालांकि, कर का विवर्तन बाजार की मांग की लोच और आपूर्ति की लोच पर निर्भर करता है। चलिए, हम वस्तु की मांग और आपूर्ति की अलग-अलग लोच की स्थितियों में कर का विवर्तन कैसे और किस दिशा में होता है, इसे समझते हैं।

1. वस्तु की मांग की लोच एवं कर विवर्तन :- पूर्ण प्रतियोगी बाजार में वस्तुओं पर लगाए गए कर का विवर्तन उसकी मांग की लोच से काफी हद तक प्रभावित होता है। सामान्यत: देखा गया है कि लोचदार कीमत मांग की स्थिति में कर का बोझ कम होता है, जबकि बेलोचदार कीमत मांग की स्थिति में कर का बोझ उपभोक्ताओं पर अधिक डाला जाता है। यहाँ हम मांग की कीमत लोच की विभिन्न श्रेणियों में कर का विवर्तन समझ सकते हैं

(i) लोचदार कीमत लोच और कर विवर्तन: जब कीमत की मांग लोच लोचदार होती है, तो कर का एक हिस्सा विक्रेता स्वयं उठाता है और एक हिस्सा उपभोक्ताओं पर डाला जाता है। इस स्थिति में, मांग में एकतरफा परिवर्तन संभव नहीं होता, इसलिए कर का विवर्तन केवल एक निश्चित सीमा तक ही संभव होता है।

(ii) अधिक लोचदार कीमत लोच और कर विवर्तन: जब कीमत की मांग अत्यधिक लोचदार होती है, तो कीमतों में वृद्धि के साथ वस्तुओं की मांग मात्रा में आनुपातिक रूप से अधिक कमी आ जाती है। इस स्थिति में, विक्रेताओं के लिए कर का विवर्तन उपभोक्ताओं पर बहुत कम किया जा सकता है। अधिकांश कर का बोझ विक्रेताओं को ही सहन करना पड़ता है।

(iii) पूर्ण लोचदार कीमत लोच और कर विवर्तन: जब कीमतों में मामूली वृद्धि पर वस्तु की मांग में अत्यधिक गिरावट आ जाती है, तो कर का बोझ उपभोक्ताओं पर डालना असंभव हो जाता है। उपभोक्ता कर के बोझ को अपने ऊपर डालने से रोकने में सफल हो जाते हैं।

(iv) बेलोचदार मांग और कीमत परिवर्तन: पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत, बेलोचदार मांग वाली वस्तुओं में कर का बोझ उपभोक्ताओं पर अधिक डाला जा सकता है। उपभोक्ता कर के बोझ को सहन करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

(v) पूर्ण बेलोचदार मांग और कर विवर्तन: पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत, जब कीमतों में कर के बोझ के परिणामस्वरूप मूल्य वृद्धि का वस्तुओं की मांग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो विक्रेता पूरी तरह से सफल होता है। इस स्थिति में, कर का पूरा बोझ उपभोक्ताओं को ही उठाना पड़ता है।2. पूर्ति की लोच एवं कर विवर्तन

वस्तुओं की मांग की कीमत लोच के कर विवर्तन पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने के बाद आप वस्तुओं की पूर्ति लोच के कर विवर्तन पर के आकार एवं दिशा पर पड़ने वाले प्रभावों को भलीभांति समझ सकेंगे। आपको ध्यान देना होगा कि अल्पकाल में पूर्ति की लोच बेलोचदार तथा दीर्घकाल में पूर्ति लोचदार स्थिति में पायी जाती है। क्योंकि दीर्घकाल में मांग की स्थिति के अनुसार पूर्ति में पर्याप्त तथा मांग के अनुसार परिवर्तन किया जा सकता है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कर के भार का विवर्तन समयानुसार कम या अधिक सीमा तक किया जा सकता है। यदि वस्तु की पूर्ति लोचदार या पूर्ण लोचदार है तब कर के भार का विवर्तन उपभोक्ताओं की ओर आसानी से किया जा सकता है तथा उपभोक्ता कर के नवीन भार को सहन करने में समर्थ होगा।

इसके विपरीत यदि पूर्ति की लोच बेलोचदार श्रेणी की है तब कर का भार उपभोक्ताओं की ओर विवर्तित नहीं किया जा सकता है तथा कर का नवीन भार की विक्रेताओं द्वारा ही वहन किया जायेगा। कर विवर्तन के सम्बन्ध में डॉल्टन ने स्पष्ट किया है कि, "विक्रेता पूर्ति को कम करके कर के भार को क्रेताओं पर ढकेलने का प्रयत्न करता है और क्रेता इसकी मांग कम करके विक्रेताओं पर विवर्तित करने का प्रयत्न करता है। इन दोनों की सफलता इनकी सापेक्षित शक्तियों पर निर्भर करती है।"

इस प्रकार मांग-पूर्ति की लोच सम्बन्धी शक्तियाँ कर विवर्तन को पूर्ण रूप से प्रभावित करने का कार्य करती है। मांग तथा पूर्ति की लोच समबन्धी विचार धारा के सम्बन्ध में डाल्टन का यह कथन अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सिद्ध होता है "किसी भी वस्तु पर लगाये गये कर का प्रत्यक्ष दायित्व भार विक्रेताओंके मध्य लगायी गयी वस्तु की मांग व पूर्ति की लचक के अनुपात पर निर्भर रहता है।"

3. अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में कर विवर्तन

पूर्ण प्रतियोगी और एकाधिकार बाजार को अक्सर काल्पनिक स्थितियाँ माना जाता है, जबकि व्यवहार में आमतौर पर अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पाई जाती है, जो पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार के बीच की स्थिति होती है। अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में वस्तुओं की कीमत, रंग, आकार (स्वरूप) और गुणवत्ता में विभिन्नता होती है। इसलिए, इस प्रकार के बाजार में कर का विवर्तन निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करता है:

- **एकाधिकार प्रतियोगी बाजार:** इस बाजार में उत्पादन की पूर्ति और कीमत संबंधी नीतियों के कारण कर का विवर्तन बहुत सीमित होता है। कर विवर्तन की सीमा और दिशा उत्पादकों के संयुक्त व्यवहार और उनकी नीतियों पर निर्भर करती है। हालांकि, उपभोक्ता कर के बोझ से अपेक्षाकृत कम प्रभावित रहते हैं, क्योंकि अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में उपभोक्ताओं को निकटवर्ती वैकल्पिक वस्तुएँ आसानी से मिल जाती हैं। वस्तुओं की गुणवत्ता और उत्पादकों की विक्रय रणनीति कर विवर्तन में सहायक होती हैं।

- **एकाधिकार बाजार:** इस बाजार में, कर विवर्तन वस्तु की मांग और आपूर्ति की लोच के आधार पर किया जाता है। एकाधिकार में केवल एक ही उत्पादक और विक्रेता होता है, जिससे कर का विवर्तन अधिक मात्रा में संभव होता है। एकाधिकार पूर्ति का निर्धारक भी होता है, जिससे कर का बोझ उपभोक्ताओं पर आसानी से डाला जा सकता है।

  यदि कर एकमुश्त लगाया जाता है, तो उत्पादक इसे स्थायी लागत के साथ जोड़ लेता है, जिससे वस्तु की सीमान्त लागत में वृद्धि नहीं होती। इस स्थिति में कर का बोझ उपभोक्ताओं पर नहीं डाला जाता।

  यदि कर मात्रा के आधार पर लगाया जाता है, तो बिक्री की मात्रा के अनुसार कर की राशि घटती या बढ़ती रहती है। इस स्थिति में, कर का बोझ उपभोक्ताओं पर डाला जाता है, क्योंकि वस्तु की सीमान्त लागत बढ़ जाती है, और लाभ की मात्रा घट जाती है। इसलिए, उत्पादक वस्तुओं की कीमत बढ़ाकर कर का बोझ उपभोक्ताओं पर डालते हैं।

टेलर का कथन: "दूसरे वर्ग के करों (वे कर जिनकी कुल मात्रा उत्पादन या विक्रय की मात्रा के अनुसार बदलती है, लेकिन प्रति इकाई प्रमुख लागत में स्थायी वृद्धि होती है) को सामान्यतः आगे की ओर विवर्तित किया जा सकता है। क्योंकि सम्पूर्ण तालिका में एक ही दर से सीमान्त लागत बढ़ जाती है, जिससे सीमान्त लागत, लाभ और सीमान्त का नया संतुलन स्थापित होता है।"

11.5 महत्वपूर्ण करों की स्थिति में कर विवर्तन

करापात एवं कर विवतन से सम्बन्धित विभिन्न महत्वपूर्ण तथ्यों का अध्ययन करने के बाद अब आप समझ सकेंगे कि कुछ महत्वपूर्ण करों की स्थिति में कर विवर्तन के द्वारा करापात की क्या स्थिति होती है। यहाँ पर कुछ महत्वपूर्ण करों के सम्बन्ध में कर विवर्तन एवं करापात की विवेचना करेंगे।

- **आय कर:** कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि विशिष्ट परिस्थितियों में आय कर का विवर्तन संभव हो सकता है, लेकिन सामान्यतः आय कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता। व्यक्तिगत आय पर लगाए गए कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता है। व्यावसायिक आय कर के मामले में भी अर्थशास्त्री एकमत नहीं हैं। मुख्यतः दोनों प्रकार की आय कर की स्थिति में कर विवर्तन की संभावना बहुत कम होती है।
- **बिक्री कर और उत्पादन कर:** बिक्री कर और उत्पादन कर के मामले में कर का विवर्तन संभव होता है। कर की मात्रा वस्तु और सेवा की मांग और पूर्ति की लोच के आधार पर तय की जाती है। कर लगने से वस्तु या सेवा की कीमत बढ़ जाती है, जिसे उपभोक्ताओं से वसूलने का प्रयास किया जाता है। यदि मांग की कीमत लोच बेलोचदार है, तो कर का बोझ उपभोक्ताओं पर अधिक डाला जाता है। अगर मांग की कीमत लोच लोचदार है, तो कर का बोझ पूरी तरह उपभोक्ताओं पर नहीं डाला जा सकता। इसके विपरीत, यदि पूर्ति लोच लोचदार है, तो कर का बोझ उपभोक्ताओं पर डाला जा सकता है, जबकि पूर्ति की लोच बेलोचदार होने पर कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता।

- **गृह कर:** गृह कर के मामले में कर का विवर्तन संभव भी हो सकता है और नहीं भी। अगर घर में केवल गृह स्वामी का परिवार रहता है, तो कर का बोझ गृह स्वामी को ही सहन करना पड़ेगा और कर का विवर्तन नहीं होगा। अगर मकान में किरायेदार भी रहते हैं, तो कर का बोझ मकान मालिक और किरायेदार पर संयुक्त रूप से पड़ेगा, क्योंकि किराए में वृद्धि की जाएगी। यदि मकान में केवल किरायेदार ही रहते हैं, तो गृह कर का पूरी तरह विवर्तन किरायेदार पर होगा।
- **सीमा शुल्क:** आयात और निर्यात किए जाने वाले माल और सेवाओं की कीमत की लोच के आधार पर करों का विवर्तन किया जा सकता है। अगर आयातित सामान की मांग और आपूर्ति बेलोचदार है, तो कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता। वहीं, यदि निर्यात की वस्तुओं की मांग लोचदार है, तो कर का विवर्तन किया जा सकता है। यदि निर्यात के लिए वैकल्पिक वस्तुएं उपलब्ध हैं, तो कर का बोझ निर्यातक को ही सहन करना होगा।
- **भूमि कर:** भूमि कर के मामले में कर का विवर्तन संभव भी हो सकता है और नहीं भी। यदि किसान अपनी फसल की कीमत बढ़ाने में सफल होता है, तो कर का विवर्तन कृषि उत्पादन को खरीदने वालों पर किया जा सकता है। अगर कर को मात्रा के आधार पर लगाया जाता है, तो कर का विवर्तन नहीं किया जा सकता और इसका बोझ भूमि स्वामी को ही सहन करना होगा। कृषि उत्पादन की मांग की लोच के आधार पर भी कर का विवर्तन किया जा सकता है। यदि उत्पादन की मांग की लोच बेलोचदार है, तो कर का विवर्तन आसानी से किया जा सकता है, लेकिन यदि लोच इकाई से अधिक है, तो कर का बोझ किसानों को ही सहन करना होगा।
- **सम्पत्ति कर**: सम्पत्ति कर के मामले में कर विवर्तन की स्थिति जटिल हो सकती है। सामान्यतः कर का बोझ सम्पत्ति मालिक को ही सहन करना पड़ता है। यदि सम्पत्ति का प्रत्यक्ष उपभोग किया जा सकता है, तो सम्पत्ति कर का विवर्तन उपभोक्ताओं पर किया जा सकता है। अगर सम्पत्ति का उपयोग उत्पादन कार्य में किया जाता है, तो उत्पादन की मांग और पूर्ति की लोच के आधार पर कर का विवर्तन किया जा सकता है।
- **लाभ कर**: लाभ कर के मामले में भी कर का बोझ व्यावसायिक निगमों के मालिकों को ही सहन करना पड़ता है, क्योंकि यह आय कर के समान समझा जाता है। इसलिए, लाभ कर का विवर्तन करना सामान्यतः संभव नहीं होता।

11.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

प्रश्न 1 करापात को परिभाषित कीजिए?

प्रश्न 2 "कर के भार की समस्या इस बात से सम्बन्धित रहती है कि कौन उसका भुगतान करता है?" यह कथन किस अर्थशास्त्री का है?

प्रश्न 3 करापात के कितने रूप होते हैं?

प्रश्न 4 सत्य तथा असत्य का चयन कीजिए?

(i) करापात एवं कराघात एक ही अवधारणा है।

(ii) वास्तविक प्रत्यक्ष भार प्रतयक्ष मौद्रिक तथा प्रत्यक्ष अमौद्रिक भार है।

(iii) कराघात एवं कानूनी दायित्व है।

(iv) कर विवर्तन सभी प्रकार के करों के लिए किया जाता है।

प्रश्न 5 सही विकल्प का चयन कीजिए?

कर प्रसरण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया -

i) मार्षल द्वारा (ii) केनार्ड द्वारा

(iii) हिक्स द्वारा (iv) एडम स्मिथ द्वारा

प्रश्न 6 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(i) प्रत्यक्ष करों में करापात एवं कराघात ---- ही व्यक्ति पर होता है।

(ii) कर विवर्तन वस्तु की मांग की ---- पर निर्भर करता है।

(iii) केन्द्रीयकरण सिद्धान्त में कर का अन्तिम भार ----- पर ही पड़ता है।

(iv) अग्रग्रामी कर विवर्तन में वस्तु की कीमतें ----- जाती हैं।

(v) आय कर के सम्बन्ध में कर विवर्तन ----- नहीं होता है।

(लोच, एक, भूमि/कृषि, समीव, बढ़)

प्रश्न 7 मात्रा के आधार पर कराकरोपण में कर का विवर्तन किस दिषा में होता है?

11.7 सारांश (Summary)

सारांश में, करारोपण के माध्यम से एकत्र की जाने वाली राशि का अंतिम रूप से वहन करने वाले व्यक्ति या संस्था पर जो मौद्रिक भार पड़ता है, उसे करापात कहा जाता है। अर्थशास्त्रियों जैसे मसग्रेव, डॉल्टन, पीगू, और प्रोफेसर

मेहता ने करापात की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। करापात के कई रूप होते हैं, जो न केवल मौद्रिक होते हैं बल्कि गैर-मौद्रिक रूप में भी अंतिम व्यक्ति या संस्था को प्रभावित कर सकते हैं।

करापात और कराघात के बीच अंतर को स्पष्ट करने का मुख्य आधार कर विवर्तन है। करापात और कराघात में कानूनी दायित्व भी शामिल होते हैं, जो कर विवर्तन के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। कर विवर्तन के औचित्य को समझने के लिए केन्द्रीयकरण सिद्धांत और कर प्रसरण सिद्धांत का भी सहारा लिया जाता है। कर विवर्तन की प्रकृति और स्वरूप किसी भी दिशा में क्रियाशील हो सकता है, और कर विवर्तन तथा करों की प्रकृति के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध होता है।

11.8 शब्दावली (Glossary)

- अवधारणा - संकल्पना मौद्रिक - मुद्रा के रूप में।
- पूर्ववर्ती – पहले वाला।
- लोचदार माँग – कीमत की अपेक्षा मांग में आनुपातिक रूप से अधिक परिवर्तन ।
- बेलोचदार माँग - कीमत की अपेक्षा माँग में आनुपातिक रूप में कम परिवर्तन।
- बाजार – अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत वह क्षेत्र जहाँ तक किसी वस्तु को क्रय तथा विक्रय करने वाली षक्तियाँ फैली होती हैं।

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- पंत, जे0सी0 (2005), राजस्व (Public Finance), लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, प्रकाषक एवं विक्रेता, अनुपम प्लाजा, संजय प्लेस, आगरा।
- भाटिया एच0एल0 (2006), लोकवित्त (Public Finance), विकास पब्लिपिंग हाउस प्रा0 लि0, जंगपुरा, नई दिल्ली।
- वार्ष्णेय, जे0सी0 (1997), राजस्व (Public Finance), साहित्य भवन पब्लिकेषन्स, हास्पीटल रोड, आगरा।
- मिश्र, जगदीष नारायण (2011), भारतीय अर्थव्यवस्था, किताब महन पब्लिषर्स, हरिसदन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

11.10 सहायक/ उपयोगी ग्रन्थ (Useful/Helpful Text)

- भारतीय अर्थव्यवस्था, मासिक पत्रिका, उपकार प्रकाशन, आगरा।
- पुरी एवं मिश्रा (2011), भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- दत्त एवं सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस०चन्द एण्ड कलि0, नई दिल्ली।
- सेठी, टी0टी0(2008, मुद्रा बैंकिंग एवं लोकवित्त, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पुस्तक विक्रेता एवं प्रकाशन, आगरा।

11.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

प्र.1 करापात से आप क्या समझते हैं? कराघात एवं करापात में अन्तर को स्पष्ट करो? ।

प्र.2 कर विवर्तन से आप क्या समझते हैं तथा कर विवर्तन के विभिन्न रूपों को समझाइये?

प्र.3 करापात एवं कर विवर्तन के मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए? तथा विभिन्न करों के सम्बन्ध में कर विवर्तन किस दिषा में होता है? स्पष्ट कीजिए?

प्र.4 मांग तथा पूर्ति की लोच की विभिन्न श्रेणियाँ कर विवर्तन को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?

प्र.5 अपूर्ण प्रतियोगी बाजार में कर विवर्तन की विवेचना कीजिए?

इकाई - 12 लोक ऋण का अर्थशास्त्र एवं प्रकार

(Economics of Public Debts and Types)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

12.2 उद्देश्य (Objectives)

12.3 लोक ऋण का अर्थ एवं प्रकृति लोक ऋण का अर्थ एवं प्रकृति (Meaning and Nature of Public Debt)

12.4 लोक ऋण में वृद्धि के कारक (Factors causing increase in public debt)

12.5 विकासशील देशों में लोक ऋण की प्रासंगिकता (Relevance of public debt in developing countries)

12.5.1 आन्तरिक ऋण का महत्व एवं सम्भावना (Importance of Possibility of Internal Debts)

12.5.2 विकासशील देशों के आर्थिक विकास में बाह्य ऋण की भूमिका (Role of external debt in economic development of developing countries)

12.5.3 विदेशी ऋणों के उपयोग की शर्तें एवं सीमाएँ (Terms and limitations of use of foreign loans)

12.6 लोक ऋण के प्रकार (Types of public debt)

12.7 अभ्यास प्रश्न(Practice Questions)

12.8 सारांश (Summary)

12.9 शब्दावली (Glossary)

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री(Useful / Helpful text)

12.12 निबंधात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

इस इकाई में हम लोक ऋण से संबंधित प्रमुख विषयों का अध्ययन करेंगे, जैसे लोक ऋण का अर्थ, देशों में लोक ऋण का महत्व और लोक ऋण का वर्गीकरण। वर्तमान समय में, लोक ऋण न केवल विकासशील देशों के लिए बल्कि विकसित देशों के लिए भी आवश्यक बन चुका है। यदि किसी देश के पास संसाधनों की कमी है और वह विकास की प्रक्रिया में दुनिया के विकसित देशों की बराबरी करना चाहता है, तो उसे आंतरिक और बाह्य दोनों

प्रकार के ऋण लेने होंगे। आंतरिक ऋण निष्क्रिय संसाधनों को सक्रिय बनाता है, जबकि बाह्य ऋण विकास की गति को तेज करने और आवश्यकताओं की पूर्ति करने में मदद करता है।

12.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप

- ✓ लोक ऋण का अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण में वृद्धि के कारण को समझ सकेंगे।
- ✓ विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व को समझ सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण के मुख्य एवं अन्य प्रकारों को जान सकेंगे।

12.3 लोक ऋण का अर्थ एवं प्रकृति (Meaning and Nature of Public Debt)

जब सरकार अपने सार्वजनिक व्यय की आवश्यकताओं को कराधान के माध्यम से पूरा नहीं कर पाती है (क्योंकि एक निश्चित सीमा के बाद ऊंची कर दरें असंतोष उत्पन्न कर सकती हैं और काम करने की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं), और न ही घाटे की वित्तीय व्यवस्था का सहारा ले पाती है (क्योंकि उसे 'सुरक्षित सीमा' के भीतर रखना आवश्यक होता है ताकि अत्यधिक मुद्रास्फीति से अर्थव्यवस्था को नुकसान न पहुंचे), तो ऐसी स्थिति में सरकार सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक आय के बीच के अंतर को उधार लेकर, यानी ऋण के माध्यम से, पूरा करने का प्रयास करती है। इसे ही लोक ऋण कहा जाता है। इस प्रकार, लोक ऋण का अर्थ सरकार द्वारा लिए गए ऋण से होता है। यह ऋण सरकार द्वारा अपने देश के भीतर या अन्य देशों से लिया जा सकता है। लोक ऋण आंतरिक या विदेशी सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से लिया जा सकता है।

किसी अवधि में बजट घाटा (Budget Deficit) उस समय के व्यय के राजस्व से अधिक होने को कहा जाता है। किसी विशेष समय में ऋण पिछले सभी बजट घाटों का योग होता है। इस प्रकार, ऋण पिछले राजस्व से अधिक व्यय का संचयी योग होता है। ऋण एक स्थिर चर (Stock Variable) है, जिसकी माप किसी समय के विशेष बिंदु पर होती है, जबकि बजट घाटा एक प्रवाह चर (Flow Variable) है, जिसकी माप समय की एक अवधि में होती है। उदाहरण के लिए, मान लें कि 2010 के दौरान सरकार को 25,000 करोड़ रुपये का घाटा होता है, तो इस स्थिति में लोक ऋण के भंडार में इस राशि को जोड़ दिया जाएगा। इसके विपरीत, मान लें कि 2008 में सरकार को 18,000 करोड़ रुपये का अधिशेष प्राप्त हुआ, तो लोक ऋण के भंडार में 7,000 करोड़ रुपये की कमी हो जाएगी।

वर्तमान में, राज्य की भूमिका इतनी व्यापक हो गई है कि सरकारें बिना ऋण के अपने कार्यों को पूरा नहीं कर सकतीं। लोक ऋण को सार्वजनिक आय की दृष्टि से 'असाधारण वित्त' (Extraordinary Finance) कहा जाता है, क्योंकि सरकार असाधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण लेती है। आजकल, मुद्रा बाजार के विकास

और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में वृद्धि के कारण लोक ऋण की प्रक्रिया काफी सुविधाजनक हो गई है। वर्तमान में, लोक ऋण सरकार की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है, लेकिन बहुत बड़ी मात्रा में सार्वजनिक ऋणों से आय स्रोत प्राप्त करना उचित नहीं है।

बैस्टेबल के अनुसार, "जिस प्रकार एक व्यक्ति हमेशा ऋण की सहायता से अपना काम नहीं चला सकता, उसी प्रकार सरकार भी हमेशा ऐसे साधनों से काम नहीं चला सकती।" वर्तमान में, सरकारें आंतरिक और बाह्य ऋण दोनों लेकर अपनी कई विकास योजनाओं को पूरा कर रही हैं।

सरकार जो राशि ऋण द्वारा किसी वर्ष में प्राप्त करती है, वह उस वर्ष की आय का हिस्सा बन जाती है। यह आय स्थायी नहीं होती क्योंकि इसे कुछ समय के बाद वापस करना होता है। अतः ऋण को सरकार की अल्पकालिक आय का साधन कहा जाता है। दीर्घकालिक दृष्टि से इसे आय नहीं कहा जा सकता। सरकार की आय में केवल उसी आय को शामिल करना उचित होगा जो सदैव सरकार के उपयोग में रहे और जिसे सरकार को वापस न लौटाना पड़े। सार्वजनिक आय के विपरीत, सार्वजनिक ऋणों पर एक निर्धारित अवधि तक ब्याज देना पड़ता है और ऋण की अवधि समाप्त होने पर ऋण राशि का भुगतान करना आवश्यक होता है। इस प्रकार, लोक ऋण की प्रकृति सार्वजनिक आय की प्रकृति से सर्वथा भिन्न होती है।

प्रोफेसर जे. के. मेहता के अनुसार, "सार्वजनिक आय वह प्राप्ति है जिसे सरकार के लिए उसके भुगतानकर्ताओं को वापस लौटाना आवश्यक नहीं होता, जबकि इसके विपरीत, लोक ऋण के संबंध में सरकार इस बात के लिए बाध्य होती है कि वह इस धन को ऋणदाताओं को वापस कर दे।" वस्तुतः, ऋण एक प्रकार का आर्थिक बोझ होता है, इसलिए सामान्य परिस्थितियों में ऋण लेना उचित नहीं समझा जाता।

सकल ऋण (Total Debt) और निवल ऋण (Net Debt) में अंतर किया जाता है। निवल ऋण को जनता द्वारा धारण किया गया ऋण (Debt held by the public) भी कहा जाता है, जिसमें स्वयं सरकार द्वारा धारण किए गए ऋण को शामिल नहीं किया जाता। व्यक्ति या परिवार, बैंक, व्यवसायी, विदेशी और अन्य गैर-संघीय हस्तियां निवल ऋण के स्वामी होते हैं। सकल ऋण निवल ऋण और सरकार के स्वामित्व में बॉन्ड का योग होता है। (Gross Debt = Net Debt + Bonds owned by the government)

12.4 लोक ऋण में वृद्धि के कारक (Factors causing increase in public debt)

वर्तमान समय में अधिकांश देशों में लोक ऋण की मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, विशेष रूप से विकासशील देशों में लोक ऋण तेजी से बढ़ा है। लोक ऋण में इस वृद्धि के मुख्य कारक निम्नलिखित हैं:

- **कल्याणकारी राज्य का विस्तार:** कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के कारण सरकार के कार्यक्षेत्र में वृद्धि हुई है, जिससे उसके व्यय में भी भारी वृद्धि हुई है। इसके साथ ही, सरकार को युद्ध और युद्ध की

तैयारी के लिए भी भारी खर्च करना पड़ता है, जो कि अनुत्पादक व्यय होता है। इन खर्चों की पूर्ति के लिए सरकार को ऋण लेना पड़ता है।

- **घाटे का बजट:** आजकल सरकारें सामान्यतया घाटे के बजट पेश करती हैं। बजट प्रस्तुत करते समय जिस व्यय को बिना वित्तीय व्यवस्था के छोड़ दिया जाता है, उसकी पूर्ति बाद में लोक ऋण से की जाती है।
- **सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर व्यय:** वर्तमान में, कल्याणकारी राज्य की स्थापना और लोगों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि के लिए सरकार को सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर भारी व्यय करना पड़ता है, जैसे - सड़कों, रेल, बाँध, नहरों, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि। इन कार्यों की वित्तीय व्यवस्था काफी हद तक ऋणों से की जाती है।
- **योजनाबद्ध आर्थिक विकास:** योजनाबद्ध आर्थिक विकास की विभिन्न परियोजनाओं के लिए बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है, जिसकी व्यवस्था लोक ऋण द्वारा की जाती है। इससे लोक ऋण में वृद्धि होती है।
- **आर्थिक अस्थिरता:** देश में मुद्रा-स्फीति और आर्थिक मंदी के कारण अर्थव्यवस्था में अस्थिरता आ जाती है, जिसका देश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि देश में आर्थिक स्थिरता बनी रहे। मंदी को दूर करने के लिए सरकार अपने व्यय की पूर्ति लोक ऋण से करती है।

इस प्रकार, उपरोक्त कारणों से स्पष्ट है कि लोक ऋण की मात्रा में काफी अधिक वृद्धि हुई है।

12.5 विकासशील देशों में लोक ऋण की प्रासंगिकता (Relevance of public debt in developing countries)

विकासशील देशों की प्रमुख समस्या तेजी से आर्थिक विकास करना है, लेकिन इसके लिए पूंजी-संचय और पूंजी निर्माण की उच्च दर होना आवश्यक है। विकासशील देशों में निम्न उत्पादकता और कम आय के कारण बचत का स्तर कम रहता है, जिससे आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त पूंजी उपलब्ध नहीं हो पाती। इसलिए, ऐसी स्थिति में प्रत्येक विकासशील देश की सरकार को ऋण लेना पड़ता है, चाहे वह आंतरिक ऋण हो या बाहरी ऋण। इन देशों में लगातार बढ़ते विकास व्यय के लिए वित्त जुटाना एक अत्यधिक कठिन चुनौती होती है।

वित्तीय साधनों को जुटाने के संदर्भ में कर की भूमिका पर जोर दिया जाता है, लेकिन कराधान की सीमाएं भी होती हैं। इन सीमाओं को पार करने के बाद आर्थिक प्रेरणा से संबंधित समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे कि स्वैच्छिकता की कमी या भुगतान की प्रत्याशा। इन समस्याओं के कारण कराधान के विपरीत, लोक ऋण का आर्थिक प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव कम होता है। लोक ऋण को इसीलिए उपयुक्त माना जाता है, क्योंकि इसके

माध्यम से पूंजीगत वस्तुओं का सृजन होता है। लोक ऋण के द्वारा ऐसी बचतों को उत्पादक कार्यों में लगाया जा सकता है, जो इसकी अनुपस्थिति में बेकार पड़ी रहती या जमीन और बहुमूल्य धातुओं जैसे अनुत्पादक व्ययों पर खर्च हो जातीं।

लोक ऋण के माध्यम से सार्वजनिक निवेश के स्तर को बढ़ाया जा सकता है, जिससे कुल निवेश का स्तर भी ऊंचा हो जाएगा, जो केवल कराधान से संभव नहीं हो सकता। लोक ऋण एक अन्य तरीके से भी आर्थिक विकास में योगदान देता है। लोग अपनी संपत्ति का एक हिस्सा सुरक्षित निवेश में रखना चाहते हैं, जिससे स्थिर आय प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य से लोग स्थिर आय वाले सरकारी बांड में निवेश करने का विचार करते हैं।

संक्षेप में, विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में लोक ऋणों का महत्व निम्नलिखित है:

1. यदि ऋणों का विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग किया जाए, तो इससे उत्पादकता में वृद्धि होती है।
2. संकट के समय का सामना करने के लिए लोक ऋण का महत्व निर्विवाद है।
3. विकासशील देशों में आर्थिक विकास के लिए लोक ऋण का विशेष महत्व है, विशेष रूप से इसलिए कि इन सरकारों के पास पूंजी की कमी रहती है।
4. एक देश की जनता को लोक ऋणों के माध्यम से सुरक्षित निवेश का एक अच्छा साधन मिल जाता है, क्योंकि सरकार को ऋण देना सुरक्षित माना जाता है।
5. लोक ऋणों के माध्यम से भुगतान संतुलन की समस्या को ठीक किया जा सकता है।
6. लोक ऋणों के माध्यम से युद्ध जैसी आपात स्थितियों के लिए भी वित्त जुटाया जा सकता है।

उपर्युक्त महत्व के साथ, लोक ऋणों के कुछ नुकसान भी हैं, जैसे कि इसका भार देश की भविष्य की पीढ़ियों पर पड़ता है। सरकार द्वारा ऋण की राशि का अपव्यय हो सकता है और विदेशी ऋण लेने पर ऋणदाता देश अनावश्यक हस्तक्षेप और राजनीतिक दबाव डाल सकते हैं। हालांकि, जहां तक ऋणों के अपव्यय का प्रश्न है, अगर सरकार विवेकपूर्ण तरीके से खर्च करे तो इसे टाला जा सकता है। विदेशी ऋणों को अनुचित शर्तों के साथ नहीं लेना चाहिए, जो देश की राजनीतिक स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं।

12.5.1 आन्तरिक ऋण का महत्व एवं सम्भावना (Importance of Possibility of Internal Debts)

विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है, जिसे सार्वजनिक आय के नियमित स्रोतों से पूरा नहीं किया जा सकता। इसलिए, विकास वित्त की दृष्टि से सरकार को अधिक मात्रा में ऋण लेने की आवश्यकता होती है। हालांकि, आन्तरिक ऋण की पूर्ति मनचाही मात्रा में नहीं हो पाती, क्योंकि ऋण हमेशा बचतों से दिया जाता है और इन देशों में लोगों की आय कम होने के कारण बचत की दर भी बहुत कम होती है।

सरकार कुछ हद तक बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर सकती है, लेकिन इन देशों में मुद्रा और पूंजी बाजार के कम विकसित होने के कारण ये स्रोत भी प्रभावी ढंग से काम नहीं कर पाते। इस प्रकार, जबकि

आन्तरिक ऋण का विकासशील देशों के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान है, इसका क्षेत्र अत्यधिक सीमित रहता है।

12.5.2 विकासशील देशों के आर्थिक विकास में बाह्य ऋण की भूमिका (Role of external debt in economic development of developing countries)

आंतरिक संसाधनों की कमी के कारण विकासशील देशों के पास बाहरी ऋण के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं रह जाता। हालांकि कुछ विशेषज्ञ अतिरिक्त कराधान और बेहतर प्रबंधन की सिफारिश करते हैं, लेकिन यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये उपाय मुद्रा स्फीति के रूप में विकास की लागत को और बढ़ा देते हैं। इस प्रकार, विदेशी ऋण विकासशील देशों के आर्थिक विकास के लिए एक अपरिहार्य तत्व बन जाता है।

विदेशी ऋण इन देशों में घरेलू बचत और आवश्यक निवेश की दर के बीच के अंतर को पूरा करके पूंजी निर्माण में सहायता प्रदान करते हैं। इसके अलावा, ये ऋण प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, आधारभूत उद्योगों की स्थापना, तकनीकी ज्ञान प्राप्ति, विशेष पूंजीगत उपकरणों की उपलब्धता, और आर्थिक संरचना के विकास के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। संक्षेप में, विदेशी ऋण देश में उत्पादकता, आय और रोजगार को बढ़ाकर आर्थिक विकास को संभव बनाते हैं।

12.5.3 विदेशी ऋणों के उपयोग की शर्तें एवं सीमाएँ (Terms and limitations of use of foreign loans)

यह निर्विवाद है कि विदेशी ऋण आर्थिक विकास के लिए अत्यंत लाभकारी हो सकते हैं, लेकिन हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विदेशी ऋणों का वास्तविक और मौद्रिक भार आंतरिक ऋणों की तुलना में बहुत अधिक होता है, क्योंकि ये विदेशी भुगतान की आर्थिक सीमाएँ उत्पन्न कर सकते हैं। एक तो विदेशी मुद्रा के आदान-प्रदान में कठिनाई होती है, और दूसरे, विदेशी ऋणों की अदायगी का मतलब होता है कि राष्ट्रीय आय में कमी आती है और देश के स्वर्ण और विदेशी मुद्रा के स्रोतों को नुकसान होता है। इसलिए, यह आवश्यक है कि विदेशी ऋणों को बहुत सोच-समझकर लिया जाए।

विदेशी ऋणों का अधिकतम लाभ उठाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं:

1. **उत्पादक कार्यों के लिए उपयोग:** विदेशी ऋणों का उपयोग केवल उत्पादक परियोजनाओं के लिए किया जाना चाहिए।
2. **आर्थिक संवृद्धि को प्रोत्साहन:** ऋणों का उपयोग ऐसी परियोजनाओं में किया जाना चाहिए जो सीधे देश की आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा दें, जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो और भविष्य में मूलधन और ब्याज की अदायगी संभव हो सके।

3. **भविष्य के भुगतान संतुलन का ध्यान:** विदेशी ऋणों का उपयोग इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि भविष्य में भुगतान संतुलन अनुकूल रहे।
4. **पूंजी अवशोषण क्षमता:** विदेशी ऋणों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए देश की पूंजी अवशोषण क्षमता पर्याप्त होनी चाहिए।

उल्लेखनीय है कि ऋण ऐसा लिया जाना चाहिए कि ऋणी देश उसे पूरी तरह से उपयोग करने की क्षमता रखता हो। ऐसे देशों को तब तक विदेशी ऋण नहीं प्राप्त करना चाहिए जब तक उनके आंतरिक संसाधन अपर्याप्त न हों और जब तक वे इन ऋणों का उचित उपयोग करने की स्थिति में न हों। विकासशील देशों में सामान्यत: तकनीकी कमी, कुशल और प्रशिक्षित श्रम की कमी, श्रम की गतिशीलता में कमी, अधूरी आर्थिक संरचना, मुद्रास्फीति और प्रतिकूल भुगतान संतुलन जैसे कारक पूंजी अवशोषण क्षमता को सीमित कर देते हैं। इसलिए, इन देशों को अपनी क्षमता के अनुसार ही ऋण लेना चाहिए, अन्यथा ऋण का भार इतना बढ़ सकता है कि वह देश को दिवालिया बना सकता है।

संक्षेप में, विकासशील देशों का उद्देश्य केवल आर्थिक स्थायित्व प्राप्त करना नहीं, बल्कि आर्थिक संवृद्धि प्राप्त करना भी है। इसलिए, सरकार को ऋण, व्यय और ऋण के भुगतान के बीच एक संतुलन स्थापित करना चाहिए और विदेशी ऋणों को तभी प्राप्त करना चाहिए जब इसके बिना आर्थिक विकास संभव न हो।

12.6 लोक ऋण के प्रकार (Types of public debt)

लोक ऋण का वर्गीकरण निम्न आठ आधारों पर किया जा सकता है:-

1. स्रोत के आधार पर ऋण – ऋण कहाँ से प्राप्त किया गया है, के आधार पर लोक ऋण दो प्रकार के हो सकते हैं:

- **आन्तरिक ऋण (Internal Debt) -** जब सरकार अपने देश में नागरिकों को प्रतिभूतियाँ बेचकर ऋण प्राप्त करती है, तो इसे आंतरिक ऋण कहा जाता है। प्रोडाल्टन के अनुसार ., "एक ऋण आंतरिक होता है यदि यह उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र में रहते हैं, जिसे ऋण लेने वाली लोक सत्ता द्वारा नियंत्रित किया जाता है।"
- **बाह्य ऋण (External Debt) -** यदि लोक ऋण विदेशों में रहने वाले व्यक्तियों, संस्थाओं, या सरकारों से प्राप्त किया जाता है, तो उसे बाहरी ऋण कहा जाता है। डाल्टन के अनुसार, "ऋण बाहरी होगा यदि यह उन व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा दिया जाता है जो उस क्षेत्र से बाहर रहते हैं, जिसे ऋण लेने वाली लोक सत्ता द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाता है।" उदाहरण के लिए, भारत द्वारा अमेरिका, जापान, इंग्लैंड, और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक से लिया गया ऋण बाहरी या विदेशी ऋण है।

2. उपयोग के आधार पर ऋण- ऋणों के उपयोग के आधार पर लोक ऋण को उत्पादक तथा अनुत्पादक ऋणों में विभाजित किया जा सकता है।

- **उत्पादक ऋण (Productive Loans) -** उत्पादक ऋण वे होते हैं जिनका उपयोग ऐसे उत्पादक कार्यों में किया जाता है जो इतनी आय उत्पन्न करें कि ऋण के मूलधन और ब्याज का भुगतान किया जा सके। इन्हें सक्रिय ऋण भी कहा जाता है, क्योंकि ये देश में धन, उत्पादन, राष्ट्रीय लाभांश, और करदाता क्षमता में वृद्धि करते हैं। डाल्टन के अनुसार, "उत्पादक ऋण वह ऋण है जिसकी पूर्ति समान मूल्य की संपत्ति से होती है।" इसी तरह, शिराज के अनुसार, "उत्पादक ऋण वे हैं जिनसे बराबर या अधिक मूल्य की संपत्ति का निर्माण होता है और उसी संपत्ति की आय से ब्याज का भुगतान किया जाता है।" **अनुत्पादक ऋण (Unproductive loans) -** उन ऋणों को अनुत्पादक कहते हैं जिनके प्रयोग से सरकार को कोई आय प्राप्त नहीं होती अथवा बराबर सम्पत्ति का निर्माण नहीं होता। इन्हें निष्क्रिय ऋण भी कहा जाता है। प्रो. डाल्टन के अनुसार, ‘‘वह ऋण अनुत्पादक होता है, जिसके पीछे कोई वर्तमान सम्पत्ति नहीं होती।’’ इसे दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि युद्ध, बाढ़ अथवा अकाल इत्यादि पर व्यय के लिए जो ऋण लिया जाता है वह अनुत्पादक होता है।

3. प्राप्ति की प्रकृति के आधार पर ऋण- इस आधार पर लोक ऋण को दो भागों में बांटा जाता है –

- **ऐच्छिक ऋण (Voluntary Debt) -** ऐच्छिक ऋण वे होते हैं जिन्हें सरकार ऋणदाताओं की इच्छा से लेती है, यानी ऋणदाताओं को ऋण देने के लिए बाध्य नहीं किया जाता। बाहरी ऋण आमतौर पर ऐच्छिक होते हैं। सरकार देशवासियों से भी ऐच्छिक ऋण लेती है, जहाँ वह ऋण की अवधि, राशि और ब्याज दर का विज्ञापन करती है, और इच्छुक व्यक्तियों द्वारा ऋणपत्र खरीदे जाते हैं।
- **अनिवार्य ऋण (Compulsory Debt) -** अनिवार्य ऋण वे होते हैं जिनके लिए सरकार देश के नागरिकों को ऋण देने के लिए बाध्य करती है। ये ऋण आंतरिक होते हैं, क्योंकि सरकार विदेशी नागरिकों या सरकारों को ऋण देने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। भारत में अनिवार्य जमा योजना इसका उदाहरण है। डाल्टन के अनुसार, "आधुनिक राजस्व में अनिवार्य ऋण का महत्व बहुत कम रह गया है।"

4. अवधि के आधार पर ऋण - ऋण की अवधि के आधार पर भी लोक ऋण को दो भागों में बांटा जाता है।

- **अल्पकालीन या निश्चित कालीन अथवा अनिधिक ऋण (Short Term or Unfunded Debt) -** अल्पकालिक ऋण वे होते हैं जिनकी अवधि सामान्यतः एक वर्ष तक होती है। इन्हें सरकारें नियमित खर्चों के लिए लेती हैं, विशेष उद्देश्यों के लिए नहीं। चूंकि सरकारें इन ऋणों की अदायगी के लिए किसी विशेष कोष की व्यवस्था नहीं करतीं, इन्हें अनिधिक ऋण भी कहा जाता है। राजकोषीय पत्र (Treasury Bills) पर आधारित ये ऋण 6 महीने के भीतर शोधनीय होते हैं।

- **दीर्घकालीन या अनिश्चित कालीन अथवा निधिक ऋण (Long Term or Funded Debt) –** लंबी अवधि के लिए लिए गए ऋणों को स्थायी या निधिक ऋण कहा जाता है। इनकी अदायगी, अवधि, और अन्य शर्तें पहले से तय की जाती हैं, और अदायगी के लिए एक विशेष कोष की स्थापना की जाती है। सरकार इस कोष में प्रतिवर्ष एक निश्चित राशि जमा करती है, इसलिए इन्हें कोषित ऋण भी कहा जाता है। ये ऋण आमतौर पर स्थायी निर्माण कार्यों जैसे नहरें, सड़कें, और रेल के लिए होते हैं। इसके विपरीत, अल्पकालिक ऋणों के लिए कोई विशेष कोष नहीं बनाया जाता और इनका भुगतान चालू आय या नए ऋणों से किया जाता है।

5. भुगतान के आधार पर ऋण- भुगतान के आधार पर ऋणों का भुगतान निम्न दो प्रकार से किया जा सकता है

- **प्रतिदेय अथवा शोध्य ऋण (Redeemable Debt)-** प्रतिदेय ऋण वे होते हैं जिनका भुगतान सरकार द्वारा एक निश्चित भविष्य तिथि पर किया जाता है। प्रो. जे.के. मेहता के अनुसार, "प्रतिदेय ऋण वे हैं जिनका भुगतान सरकार एक निर्धारित भविष्य तिथि पर करने का वचन देती है।"
- **अप्रतिदेय अथवा अशोध्य ऋण (Irredeemable Debt) -** अप्रतिदेय ऋण वे ऋण होते हैं जिनके मूलधन के भुगतान की कोई तिथि नहीं होती किन्तु ब्याज के भुगतान की गारण्टी सरकार द्वारा दी जाती है। इस ऋण को सार्वकालिक (Perpetual) ऋण अथवा बेमियादी ऋण भी कहते हैं।

6. ब्याज के आधार पर ऋण:- ब्याज के आधार पर भी लोक ऋण को दो भागों में विभाजित किया जाता है-

- ब्याज सहित ऋण - जिस ऋण की अदायगी में मूलधन के साथ ब्याज का भुगतान भी किया जाता है उसे ब्याज सहित ऋण कहते हैं। सामान्य रूप से ऋणों की यही प्रकृति होती है।
- ब्याज रहित ऋण - जिस ऋण की अदायगी के समय केवल मूलधन की वापसी की जाती है तथा ब्याज का भुगतान नहीं किया जाता है ऐसे ऋण को ब्याज रहित ऋण कहते हैं। ऋण लेते समय ही यह निश्चित कर लिया जाता है कि इस ऋण पर ब्याज नहीं लिया जाएगा। कुछ विशेष परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थाओं द्वारा इस प्रकार के ऋण दिए जाते हैं।

7. विपणन योग्य और विपणन अयोग्य ऋण (Marketable and Non-Marketable Debt)- विक्रय योग्य ऋण वे होते हैं जिनमें सरकारी प्रतिभूतियाँ स्वतंत्रता से खरीदी और बेची जा सकती हैं, जैसे डाकखाने के बचत पत्र। वर्तमान में अधिकांश ऋण इसी श्रेणी में आते हैं। इसके विपरीत, कुछ ऋण विपणन योग्य नहीं होते।

8. **सकल ऋण एवं शुद्ध ऋण (Gross and net Debt) -** किसी समय विशेष में सरकार के जितने ऋण होते हैं, उन सबके योग को सकल ऋण कहा जाता है। यदि सरकार ऋणों का भुगतान करने के लिए कोई विशेष कोष एकत्र करती है तो उस कोष को कुल ऋण राशि में से निकाल कर जो कुछ शेष बचत है वह शुद्ध ऋण कहलाता है।

12.7 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. निम्न पर टिप्पणी लिखें -

A. लोक ऋण से अभिप्राय।
B. ऋण और कर में भेद।
C. लोक ऋण के प्रमुख उद्देश्य।
D. निजी ऋण तथा लोक ऋण में भेद।
E. आन्तरिक एवं बाह्य ऋण मे अन्तर।
F. शोध्य एवं अशोध्य ऋण

12.8 सारांश (Summary)

आपने देखा कि इस इकाई में लोक ऋण के अर्थशास्त्र और वर्गीकरण को विस्तार से समझाया गया है। इस शीर्षक के अंतर्गत प्रस्तावना, उद्देश्य, लोक ऋण का अर्थ और प्रकृति, लोक ऋण में वृद्धि के कारण, लोक ऋण का औचित्य, विकासशील देशों में लोक ऋण का महत्व, और लोक ऋण के प्रति दृष्टिकोण जैसे प्रमुख विषयों को शामिल किया गया है और लोक ऋण के विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

इस तरह, इस इकाई के माध्यम से लोक ऋण की प्राथमिक जानकारी प्राप्त होती है, जिससे लोक ऋण का प्रारंभिक ज्ञान मिलता है। लोक ऋण के वर्गीकरण को आंतरिक और बाह्य ऋण, उत्पादक और अनुत्पादक ऋण, ऐच्छिक और अनिवार्य ऋण, अल्पकालीन और दीर्घकालीन ऋण, शोध्य और अशोध्य ऋण, ब्याज सहित और ब्याज रहित ऋण, विपणन योग्य और अयोग्य ऋण, और सकल और शुद्ध ऋणों के आधार पर समझाया गया है।

संक्षेप में, इस इकाई का अध्ययन करने से लोक ऋण के आधारभूत पहलुओं की जानकारी प्राप्त होती है, जिससे आगामी इकाइयों में लोक ऋण के प्रभाव, भार और प्रबंधन को समझने में सहूलियत होगी।

12.9 शब्दावली (Glossary)

- **व्यय का आधिक्य-** "व्यय का आधिक्य" का अर्थ है कि किसी समयावधि में कुल व्यय, कुल आय से अधिक हो। इसे बजट घाटा (Budget Deficit) भी कहा जाता है।
- **संचयी आधिक्य -** एक निश्चित समयावधि में प्राप्त कुल आय का, कुल व्यय से अधिक होना, और इस अतिरिक्त राशि का संचय होता है। इसे बजट अधिशेष (Budget Surplus) भी कहा जाता है।
- **प्रवाह चर -** वह आर्थिक मात्रा या इकाई होती है जिसे एक निश्चित समयावधि में मापा जाता है। इसका मूल्य समय के दौरान बदलता रहता है और इसे एक समय सीमा के भीतर ही नापा जा सकता है।
- **असाधारण वित्त-** असाधारण वित्त" (Extraordinary Finance) से तात्पर्य उन वित्तीय साधनों और उपायों से है जो सामान्य बजट प्रक्रियाओं और नियमित राजस्व से बाहर होते हैं और विशेष या असाधारण परिस्थितियों में उपयोग किए जाते हैं।
- **आय सृजन -** आय सृजन" (Income Generation) से तात्पर्य उस प्रक्रिया या गतिविधि से है जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति, परिवार, संस्था, या सरकार के लिए आर्थिक संसाधन उत्पन्न किए जाते हैं। इसका उद्देश्य पैसे या संसाधनों की प्राप्ति करना होता है ताकि खर्चे या निवेश को पूरा किया जा सके।
- आन्तरिक ऋणों का भार - आन्तरिक ऋणों का भार" (Burden of Internal Debt) से तात्पर्य उन आर्थिक दबावों और चुनौतियों से है जो एक सरकार को अपने देश के भीतर से प्राप्त ऋणों के भुगतान के दौरान उठानी पड़ती हैं।

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Agarwal, R.C. (2007) Public Finance—Theory and Practice, Lakshmi Naraian Agarwal, Agra
- Atkinson, A. B. and J. E. Stiglitz (1980) Lectures on Public Economics, Tata McGraw Hill, New York
- Auerbach, A. J. and M. Feldstern (Eds.) (1985) Handbooks of Public Economics, Vol. 1, NorthHolland, Amsterdam
- Buchanan, J.M. (1970) The Public Finances, Richard D, Irwin, Homewood
- Chaudhury, R.K. (2008) Public Finance and Fiscal Policy, Kalyani Publishers, Ludhiana
- Dalton, H. (2004) Principles of Public Finance, Allied Publishers Private Limited, New Delhi

- Goode, R. (1986) Government Finance in Developing Countries, Tata McGraw Hill, New Delhi
- Houghton, E. W. (Ed.) (1988) Public Finance, Penguin, Baltimore.
- Jha,R. (1998) Modern Public Economics, Routledge, London
- Mcnutt,P. (2002) The Economics of Public Choice, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.
- Mithani, D.M. (1998) Modern Public Finance, Himalaya Publishing House, Mumbai
- Mueller, D. C. (1979) Public Choice, Cambridge University Press, Cambridge
- Musgrave, R. A. (1959) The Theory of Public Finance, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo
- Sury, M.M. (2010) Finance Commissions and Fiscal Federalism in India, New Century Publications, New Delhi

12.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- डॉ. एस. के. सिंहः लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी : लोक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र : राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल: लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी

12.12 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. लोक ऋण क्या होता है? लोक ऋण की परिभाषा दीजिए एवं उसके उद्देश्य और महत्व बताइए।

3. लोक ऋण के महत्व व आवश्यकता की विवेचना कीजिए। कर की तुलना में ऋण की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

4. असाधारण वित्त के प्रमुख स्रोत कौन-कौन से होते हैं और ये किस प्रकार से सरकारी बजट को प्रभावित करते हैं?

5. आन्तरिक ऋणों के ब्याज भुगतान और मूलधन की अदायगी का दबाव सरकार के बजट पर कैसे प्रभाव डालता है?

6. ऐच्छिक ऋण क्या होता है और यह अनिवार्य ऋण से किस प्रकार भिन्न है?

इकाई - 13 लोक ऋण के प्रभाव एवं भार

(Effects and Burden of Public Debts)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

13.2 उद्देश्य (Objectives)

13.3 लोक ऋण के आर्थिक प्रभाव (Economic effects of Public Debt)

13.3.1 उत्पादन पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on production)

13.3.2 उपभोग पर प्रभाव पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on consumption)

13.3.3 वितरण पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on distribution)

13.3.4 विनियोग पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on investment)

13.3.5 व्यापार क्रिया और रोजगार पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on Business Activity and Employment)

13.4 लोक ऋण भार की अवधारणा (Concept of the burden of Public Debt)

13.5 लोक ऋणों के भारों के प्रकार (Types of Public Debt)

13.5.1 आन्तरिक ऋण का भार (Internal Debt Burden)

13.5.2 बाह्य ऋण का भार (External Debt Burden)

13.5.3 लोक ऋण की वृद्धि और इसके प्रभाव (Growth of Public Debt and its Effects)

13.6 अभ्यास प्रश्न(Practice Questions)

13.7 सारांश (Summary)

13.8 शब्दावली (Glossary)

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची(References/Bibliography)

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (References/Bibliography)

13.11 निबंधात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाई में, आपने लोक ऋण का परिचय प्राप्त किया और इसके विभिन्न प्रकारों का अध्ययन किया, जिसमें लोक ऋण की मूल अवधारणाओं को शामिल किया गया था। इनमें लोक ऋण का अर्थ, उद्देश्य, करों के साथ इसका संबंध, इसकी उपयोगिता, और विभिन्न आधारों पर इसके वर्गीकरण की चर्चा की गई थी।

लोक ऋण आधुनिक अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण और विवादास्पद विषय है, जो सरकारी वित्तीय प्रबंधन और आर्थिक स्थिरता से सीधे जुड़ा हुआ है। यह अध्याय लोक ऋण के प्रभाव और उसके भार की अवधारणा पर केंद्रित है, और इसका उद्देश्य उन विभिन्न पहलुओं की जांच करना है जो लोक ऋण के साथ जुड़े होते हैं।

लोक ऋण, जिसे सार्वजनिक ऋण भी कहा जाता है, वह ऋण होता है जो सरकार द्वारा विभिन्न परियोजनाओं और सार्वजनिक व्यय के वित्तपोषण के लिए लिया जाता है। यह ऋण आन्तरिक (घरेलू) या बाह्य (विदेशी) स्रोतों से प्राप्त किया जा सकता है, और इसकी अदायगी व ब्याज भुगतान के लिए सरकार को विभिन्न करों का संग्रह करना पड़ता है। लोक ऋण की प्रक्रिया और इसके प्रभाव समाज और अर्थव्यवस्था पर गहरा असर डालते हैं, इसलिए इसका विश्लेषण करना आवश्यक है।

इस अध्याय में, हम पहले लोक ऋण की परिभाषा और प्रकारों को स्पष्ट करेंगे, जिसमें आन्तरिक और बाह्य ऋण के भेद की चर्चा की जाएगी। इसके बाद, हम लोक ऋण के विभिन्न प्रभावों का विश्लेषण करेंगे, जिसमें वित्तीय और वास्तविक भार शामिल होंगे। हम यह भी देखेंगे कि आन्तरिक ऋण समाज के विभिन्न वर्गों पर कैसे प्रभाव डालता है, और बाह्य ऋण का देश की आर्थिक स्थिति पर क्या असर पड़ता है।

अध्याय में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि लोक ऋण का कितना हिस्सा उत्पादक कार्यों पर व्यय किया जाता है और कितना अनुत्पादक परियोजनाओं पर, और इससे समाज और अर्थव्यवस्था पर क्या असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त, हम लोक ऋण से संबंधित प्रमुख विवादों और चिंताओं पर भी चर्चा करेंगे, जैसे कि ब्याज का भुगतान और ऋण जाल की समस्या।

अंततः, यह अध्याय लोक ऋण के प्रभावों का समग्र विश्लेषण प्रदान करेगा और सुधारात्मक नीतियों की सिफारिश करेगा, ताकि लोक ऋण का प्रबंधन अधिक प्रभावी और समाज के लिए लाभकारी हो सके। इस प्रकार, इस अध्याय का उद्देश्य लोक ऋण की जटिलताओं को समझना और इसके प्रभावों का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है।

13.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उद्देश्य -

- ✓ इस अध्याय का पहला उद्देश्य लोक ऋण के विभिन्न पहलुओं, प्रकारों, और इसके वित्तपोषण के स्रोतों को स्पष्ट करना है।
- ✓ लोक ऋण के समाज पर प्रभाव का विश्लेषण
- ✓ आन्तरिक ऋण के समाज पर प्रभाव को समझना
- ✓ बाह्य ऋण के प्रभाव की समीक्षा: बाह्य ऋण के आर्थिक और सामाजिक प्रभावों की समीक्षा करना
- ✓ लोक ऋण के आर्थिक स्थिरता और विकास पर प्रभाव का अध्ययन

13.3 लोक ऋण के आर्थिक प्रभाव (Economic effects of Public Debt)

लोक ऋण के आर्थिक प्रभाव, करारोपण और सार्वजनिक व्यय के समान होते हैं, क्योंकि इसमें भी क्रय-शक्ति का हस्तांतरण शामिल होता है। जब सरकार ऋण लेती है, तो मुद्रा का हस्तांतरण ऋणदाता से सरकार की ओर होता है, और जब इस धन का उपयोग किया जाता है, तो इसका हस्तांतरण उन व्यक्तियों की ओर होता है, जिन पर व्यय किया जाता है। इस प्रकार, लोक ऋण के प्रभाव व्यापक होते हैं, जो ऋण प्राप्ति और उसके उपयोग दोनों पर निर्भर करते हैं।

लोक ऋण का प्रभाव न तो स्वाभाविक रूप से अच्छा है और न बुरा। इसके प्रभाव कई कारकों पर निर्भर करते हैं, जैसे कि ऋण का उद्देश्य, शर्तें, ऋण का ढांचा, स्रोत, और देश की आर्थिक, राजनीतिक, तथा सामाजिक स्थिति। लोक ऋण के प्रभावों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है:- प्रारंभिक प्रभाव (आय और व्यय से जुड़े) और स्थायी प्रभाव (सम्पति और हस्तांतरण प्रभाव)।

प्रारंभिक प्रभाव में ऋण प्राप्ति से उत्पन्न आय प्रभाव और इस धन के व्यय से उत्पन्न व्यय प्रभाव शामिल होते हैं। आय प्रभाव के कारण व्यक्ति अपने बजट में परिवर्तन करते हैं, जिससे व्यय में कमी आ सकती है। वहीं, व्यय प्रभाव से सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है, जिससे समाज को लाभ होता है। लोक ऋण का स्थायी प्रभाव तब तक बना रहता है जब तक ऋण का अंतिम भुगतान नहीं हो जाता, और इससे संपत्ति और हस्तांतरण प्रभाव उत्पन्न होते हैं। इन सभी प्रभावों का अध्ययन करते समय, हमें उत्पादन, उपभोग, वितरण, विनियोग, व्यापार और रोजगार पर लोक ऋण के प्रभावों पर ध्यान देना चाहिए।

13.3.1 उत्पादन पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on production)

लोक ऋण का उत्पादन पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ता है:-

A. **कार्य करने एवं बचत करने की योग्यता पर प्रभाव:** यदि सरकार लोक ऋण से प्राप्त राशि को ऐसी योजनाओं पर खर्च करती है जो उत्पादकता बढ़ाती हैं, तो इससे लोगों की कार्य करने और बचत करने की क्षमता में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, यदि ऋण का उपयोग गरीबों की आय बढ़ाने के लिए किया जाता है, तो उनकी कार्यक्षमता में सुधार होता है, जिससे समग्र कार्य करने की शक्ति बढ़ती है।
इसके विपरीत, यदि सरकार ऋण के ब्याज और मूलधन की अदायगी के लिए कर लगाती है और ये कर उत्पादन को प्रोत्साहित करने वाले व्यय को रोकने के लिए लगाए जाते हैं, तो इससे कार्य और बचत की क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

B. कार्य करने एवं बचत करने की इच्छा पर प्रभाव: सार्वजनिक ऋण का कार्य और बचत की इच्छा पर समग्र रूप से नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। हालाँकि, कुछ लोग सरकारी प्रतिभूतियों को सुरक्षित निवेश समझ सकते हैं और अधिक बचत के लिए प्रेरित हो सकते हैं। लेकिन, मूलधन और ब्याज भुगतान के लिए लगाए गए कर, कार्य करने और बचत करने की इच्छा को कम कर सकते हैं। सरकारी प्रतिभूतियों के सुरक्षित आय स्रोत के कारण, इन्हें खरीदने वालों की कार्य करने की इच्छा भी घट सकती है।

C. साधनों के स्थानांतरण पर प्रभाव: लोक ऋण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव साधनों के स्थानांतरण पर होता है। जब सरकार ऋण लेती है, तो मुद्रा का हस्तांतरण निजी व्यक्तियों से सरकार की ओर होता है। यदि इस धन को उन परियोजनाओं पर खर्च किया जाता है जो उत्पादन बढ़ाती हैं, तो ऐसा स्थानांतरण उचित माना जाता है। लेकिन, यदि ऋण का उपयोग चालू घाटे की पूर्ति या शुद्ध व्यय के लिए किया जाता है, तो यह उत्पादन को हतोत्साहित कर सकता है।

संक्षेप में, लोक ऋण का उत्पादन या उत्पादन क्षमता पर प्रभाव दो मुख्य कारकों पर निर्भर करेगा:-

- **सम्पत्ति प्रभाव:** जो एक लगान भोगी वर्ग को जन्म दे सकता है।
- **हस्तांतरण प्रभाव:** जिसके कारण ब्याज और मूलधन के भुगतान के लिए अधिक कर लगाना पड़ सकता है।

प्रो. काल्डोर के अनुसार, लोक ऋण की मात्रा और ब्याज के दायित्व के बजाय, यह देखना महत्वपूर्ण है कि ब्याज का दायित्व राष्ट्रीय आय के अनुपात में कितना है। यदि राष्ट्रीय आय की तुलना में ब्याज का दायित्व तेजी से बढ़ रहा हो, तो उत्पादन क्षमता में गिरावट आ सकती है। इसके विपरीत, यदि ब्याज दर में कमी हो रही है, तो लोक ऋण से उत्पादन और उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सकती है। डोमर भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं कि ब्याज दर की प्रवृत्ति के आधार पर लोक ऋण का प्रभाव उत्पादन पर निर्भर करेगा।

13.3.2 उपभोग पर प्रभाव पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on consumption)

जब लोग अपनी पिछली बचतों से सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदते हैं, तो उनके वर्तमान उपभोग में कोई कमी नहीं आती और उनका उपभोग स्थिर रहता है। लेकिन यदि वे इन प्रतिभूतियों को अपनी वर्तमान आय से खरीदते हैं, तो

उनका उपभोग और कार्यक्षमता कम हो सकती है। इसी प्रकार, सरकार द्वारा ऋण चुकाने के लिए लगाए गए करों का भी उपभोग पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि कर लगने से लोगों की आय और उपभोग का स्तर घट जाता है। हालांकि, समृद्धिकाल में चुकाए गए ऋणों का उत्पादन और उपभोग पर खास असर नहीं पड़ता, क्योंकि इस समय आय और कीमतें ऊँची होती हैं, जिससे ऋण का भार कम महसूस होता है।

उपभोग पर लोक ऋण के प्रभाव को तीन मुख्य कारकों के संयुक्त प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है: प्रारंभिक प्रभाव, संपत्ति प्रभाव, और हस्तांतरण प्रभाव। सामान्यतः, लोक ऋण वर्तमान उपभोग को अधिक प्रभावित नहीं करता, क्योंकि सरकार जब जनता से ऋण लेती है, तो यह आमतौर पर ऐच्छिक होता है और लोग अपनी बचत से इसे देते हैं, उपभोग में कटौती करके नहीं। केवल आपातकालीन स्थितियों में, जब सरकार लोगों को ऋण देने के लिए मजबूर करती है, तब वर्तमान उपभोग में कमी आ सकती है।

हालाँकि, लोक ऋण भविष्य के उपभोग को अवश्य प्रभावित करता है। करारोपण वर्तमान उपभोग को प्रभावित करता है, जबकि लोक ऋण भावी उपभोग पर असर डालता है, क्योंकि लोक ऋण से उत्पन्न संपत्ति प्रभाव और हस्तांतरण प्रभाव दोनों ही भविष्य के उपभोग को प्रभावित करते हैं।

सरकार को ऋण के मूलधन और ब्याज का भुगतान करना होता है, जो अंततः जनता की जिम्मेदारी बनती है। सरकार इसके लिए कर लगाएगी, जिससे उपभोग में कमी आ सकती है। उपभोग में कितनी कमी या वृद्धि होगी, यह इस पर निर्भर करता है कि कर किससे लिया जा रहा है और ब्याज के रूप में किसे दिया जा रहा है। यदि कर का बोझ गरीबों पर अधिक हो और उन्हें ब्याज के रूप में कुछ भी न मिले, तो उपभोग में कमी आएगी। लेकिन यदि कर प्रणाली प्रगतिशील हो और जिन लोगों को ब्याज मिलता है, उनसे ही कर वसूल किया जाए, तो उपभोग में कमी नहीं होगी।

उपभोग पर संपत्ति प्रभाव भी पड़ता है। संपत्ति का उपभोग पर दो प्रकार का प्रभाव हो सकता है: पहला, जैसे-जैसे संपत्ति बढ़ती है, उपभोग की प्रवृत्ति भी बढ़ सकती है क्योंकि संपत्ति से सन्तुष्टि मिलती है। दूसरा, लोक ऋण देने वालों को एक निश्चित आय मिलती रहती है, जिससे उनकी बचत की प्रवृत्ति बढ़ सकती है और उपभोग की प्रवृत्ति कम हो सकती है।

इसके अलावा, उपभोग पर व्यय का भी प्रभाव पड़ता है। जब सरकार लोक ऋण से प्राप्त राशि को खर्च करती है, तो अर्थव्यवस्था में आय का सृजन होता है, जो गुणक प्रभाव के कारण और भी बढ़ जाता है। इससे उपभोग में वृद्धि होती है। इस प्रकार, लोक ऋण का वर्तमान उपभोग पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता, लेकिन भविष्य का उपभोग संपत्ति प्रभाव, हस्तांतरण प्रभाव, और व्यय प्रभाव के आधार पर बदल सकता है।

13.3.3 वितरण पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on distribution)

लोक ऋण के परिणामस्वरूप क्रय-शक्ति का स्थानांतरण एक समूह से दूसरे समूह में होता है। अगर यह क्रय-शक्ति धनी वर्ग से निर्धन वर्ग की ओर स्थानांतरित होती है, तो आय वितरण में सुधार होता है। लेकिन यदि

इसके विपरीत, क्रय-शक्ति निर्धन वर्ग से धनी वर्ग की ओर जाती है, तो आय वितरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वास्तविकता में, सरकारी प्रतिभूतियाँ अधिकतर धनी वर्ग द्वारा खरीदी जाती हैं, जिससे ऋण भुगतान के लिए लगाए गए करों का भार निर्धन वर्ग पर अधिक पड़ता है। इस प्रकार, सार्वजनिक ऋणों का सामान्य प्रभाव असमानता को बढ़ाने वाला होता है, जिसे डाल्टन ने "प्रत्यक्ष वास्तविक भार" (Direct Real Burden) कहा है।

फिण्डले शिराज के अनुसार, "सार्वजनिक ऋणों की प्रवृत्ति आय को करदाताओं से ऋणदाताओं की ओर स्थानांतरित करने की होती है।" हालांकि, अगर सरकारी ऋण का उपयोग उत्पादक कार्यों या निम्न आय वर्ग के आर्थिक कल्याण के लिए किया जाता है, तो यह आय के समान वितरण को प्रोत्साहित कर सकता है। इसके विपरीत, यदि सरकारी ऋण अनुत्पादक कार्यों जैसे युद्ध या आकस्मिक संकटों के लिए प्राप्त किए जाते हैं, तो इसका भार निर्धन वर्ग को ही सहना पड़ता है।

विकासशील देशों में, जहाँ अप्रत्यक्ष करों का प्रचलन अधिक होता है, ऋण के भुगतान का भार मुख्यतः निर्धन वर्ग पर पड़ता है। इससे आय वितरण में असमानता और भी बढ़ जाती है। जब तक लोक ऋण का कुल प्रभाव निर्धन वर्ग के पक्ष में नहीं होता, इसे सामाजिक दृष्टिकोण से अच्छा नहीं माना जा सकता।

युद्ध के लिए लिए गए ऋणों का भार करदाताओं पर अधिक पड़ता है, क्योंकि युद्ध के समय उच्च मूल्य-स्तर के कारण ऊँचे कर लगाए जाते हैं, जो युद्ध के बाद भी जारी रहते हैं, जबकि कीमतें गिर जाती हैं। हालांकि, ब्याज दर में कमी नहीं होती, जिससे आय की असमानता और बढ़ जाती है। संक्षेप में, अगर लोक ऋण को उत्पादक कार्यों पर व्यय किया जाता है, तो इसका वितरण पर प्रतिगामी (Regressive) प्रभाव नहीं पड़ता।

13.3.4 विनियोग पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on investment)

सामान्यतः लोक ऋण का विनियोग पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जब सरकार निजी व्यक्तियों की बचतों से लोक ऋण प्राप्त करती है, तो इससे उनके पास संचित धन की मात्रा कम हो जाती है, जिससे उनकी विनियोग की प्रेरणा कमजोर होती है।

यदि सरकार नए बॉन्ड जारी करती है और इससे ब्याज दरों में वृद्धि होती है, तो इसका विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ब्याज दर में जितनी अधिक वृद्धि होगी, विनियोग में उतनी ही अधिक कमी आने की संभावना होती है। हालांकि, अगर धन प्रभाव के कारण उपभोग में अत्यधिक वृद्धि होती है, तो विनियोग पर पड़ने वाला यह नकारात्मक प्रभाव कुछ हद तक कम हो सकता है।

इसके अलावा, जब सरकार बैंकों से ऋण प्राप्त करती है, तो इससे बैंकों की साख निर्माण की क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बैंकों द्वारा सरकार को दिया गया ऋण जनता की अतिरिक्त क्रय शक्ति और निजी विनियोग को सीधे प्रभावित नहीं करता, लेकिन अगर ब्याज दर स्थिर है और बॉन्ड में ब्याज का विशेष आकर्षण नहीं है, तो निजी विनियोग में कमी की संभावना कम हो जाती है।

संक्षेप में, सार्वजनिक ऋणों का विनियोग पर सामान्यतः नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ब्याज दर में परिवर्तन के अतिरिक्त, अन्य तरीकों से भी विनियोग पर प्रभाव पड़ता है। यदि सरकारी प्रतिभूतियाँ उन वाणिज्यिक बैंकों और अन्य संस्थाओं को बेची जाती हैं जिनके पास अतिरिक्त रिजर्व नहीं है, तो इससे विनियोग पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

13.3.5 व्यापार क्रिया और रोजगार पर लोक ऋण का प्रभाव (Effect of public debt on Business Activity and Employment)

सरकार सार्वजनिक ऋणों के माध्यम से देश में रोजगार और आर्थिक स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन ला सकती है। राज्य व्यापार, उद्योग, रोजगार, और मूल्य स्तर को अपने व्यय के माध्यम से नियंत्रित करती है, और इस व्यय के लिए सार्वजनिक ऋणों द्वारा धन जुटाने को अर्थव्यवस्था में विशेष महत्व दिया जाता है।

जब सरकार गैर-बैंकिंग स्रोतों से ऋण लेती है, तो इसका प्रभाव मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने में सहायक होता है। वहीं, यदि सरकार बैंकिंग स्रोतों से ऋण प्राप्त करती है, तो इससे साख का विस्तार होता है, जो अतिरिक्त मुद्रा जारी करने के समान प्रभाव डालता है। जब सरकार केंद्रीय बैंक से ऋण लेती है, तो देश में मुद्रा की मात्रा बढ़ती है, जिससे घाटे की वित्त व्यवस्था की नींव रखी जाती है। अगर इन कोषों का विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग किया जाता है, तो इससे उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती है। साथ ही, अगर केंद्रीय बैंक खुले बाजार में सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदता है, तो इससे भी साख का विस्तार होता है।

मंदी के समय, जब अर्थव्यवस्था में निराशा और उदासीनता का माहौल हो, उत्पादन और आय का स्तर गिर जाए, बेरोजगारी बढ़ जाए, और विनियोग कम होने लगे, उस समय सरकार ऋणों के माध्यम से सार्वजनिक निर्माण कार्यों को शुरू करके रोजगार के अवसर पैदा कर सकती है। इससे लोगों के पास धन पहुँचने से उनकी क्रय शक्ति बढ़ती है, माँग बढ़ने से मूल्य स्तर में वृद्धि होती है, और व्यापारिक गतिविधियों में फिर से सुधार आता है। इस तरह मंदी का प्रभाव कम हो जाता है। कीन्स ने इसे 'नल विस्फोटक क्रिया (Pump Priming)' कहा है और इसे मंदी के दौरान महत्वपूर्ण बताया है।

इसी प्रकार, मुद्रास्फीति के दौरान सरकार लोगों से ऋण लेकर उनकी क्रय शक्ति को सीमित कर देती है, जिससे वस्तुओं की माँग में कमी आती है और मूल्य स्तर में गिरावट आती है, जिससे मुद्रास्फीति पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

13.4 लोक ऋण भार की अवधारणा (Concept of the burden of Public Debt)

लोक ऋण का भार उन लागतों और कठिनाइयों को दर्शाता है जो समाज को तब सहनी पड़ती हैं जब लोक व्यय का वित्तपोषण कर राजस्व के बजाय लोक ऋण के माध्यम से किया जाता है। इस अवधारणा को

समझना विवादास्पद है, और इसके दो प्रमुख मुद्दे हैं: **भार की धारणा और भावी पीढ़ी पर भार का स्थानांतरण।**

वणिकवादी अर्थशास्त्रियों से लेकर आधुनिक समय तक, लोक ऋण के भार की व्याख्या में विवाद रहा है। 1930 के दशक में कीन्सियन क्रांति के बाद इस मुद्दे पर स्थिरता आई, लेकिन 1958 में जेम्स एम. बुकानन की पुस्तक 'Principles of Public Debt' ने इस विवाद को पुनः जीवित कर दिया। आज भी इस विषय पर स्पष्ट निष्कर्ष पर पहुँचना मुश्किल है।

लोक ऋण के भार को दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है:

i. **प्रारंभिक या वित्तीय भार**: यह उन लागतों को संदर्भित करता है जो लोगों की आय में कमी के रूप में उत्पन्न होती हैं, जब ऋण से जुड़े व्यय जैसे कि ब्याज के भुगतान के लिए कर लगाए जाते हैं। इसमें यह देखा जाता है कि राष्ट्रीय मौद्रिक आय का कितना हिस्सा ब्याज के रूप में चला जाता है।
ii. **द्वितीयक या वास्तविक भार:** यह उस प्रभाव को दर्शाता है जो करारोपण के कारण लोगों की कार्य करने की इच्छा और क्षमता पर पड़ता है। यह वास्तविक भार इस बात को स्पष्ट करता है कि कैसे करों के कारण लोगों की उत्पादन क्षमता प्रभावित होती है।

पारंपरिक विश्लेषण में माना जाता है कि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार पर सन्तुलन में रहती है। इसके विपरीत, केन्सीयन विश्लेषण में यह मान्यता है कि अनैच्छिक बेरोजगारी भी हो सकती है। केन्सीयन दृष्टिकोण के अनुसार, लोक ऋण जब प्रभावोत्पादक माँग को उत्पन्न करता है, तो यह समाज पर कोई भार नहीं डालता क्योंकि यह निजी क्षेत्र की बेकार पड़ी बचत को सक्रिय करता है और आय एवं रोजगार सृजन करता है। इसी विचार को लर्नर ने भी समर्थन किया है, और उन्होंने स्फीति के दौरान ऋण का भुगतान करने की सलाह दी है।

डोमर ने इस विचारधारा को आर्थिक विकास से जोड़ा और बताया कि लोक ऋण तभी भार बन सकता है जब अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर ऋण पर भुगतान किए जाने वाले ब्याज की वृद्धि दर से कम हो।

13.5 लोक ऋणों के भारों के प्रकार (Types of Public Debt)

लोक ऋण का भार इस बात पर निर्भर करता है कि ऋण किस स्रोत से लिया गया है। डाल्टन ने लोक ऋण के भार को दो भागों में विभाजित किया है- 1. आन्तरिक ऋण का भार तथा 2. बाह्य ऋण का भार

13.5.1 आन्तरिक ऋण का भार (Internal Debt Burden)

आन्तरिक ऋण वह ऋण होता है जो एक देश की सीमाओं के भीतर रहने वाले व्यक्तियों या संस्थाओं से घरेलू मुद्रा में लिया जाता है। इसका भुगतान और ब्याज की अदायगी भी घरेलू मुद्रा में ही की जाती है। आन्तरिक ऋण का समाज पर प्रत्यक्ष मौद्रिक भार सामान्यतः नहीं पड़ता क्योंकि ब्याज और ऋण की अदायगी के लिए

लगाए गए कर एक वर्ग के व्यक्तियों से दूसरे वर्ग के व्यक्तियों की ओर क्रय शक्ति का स्थानान्तरण मात्र करते हैं। आन्तरिक ऋण भार को समझने के लिए मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

i. **ऋणदाता और करदाता का मिलान:** यदि ऋणदाता और करदाता एक ही वर्ग से होते हैं, तो समाज पर कोई शुद्ध भार नहीं पड़ता। परंतु यदि ऋणदाता और करदाता विभिन्न आय वर्गों से संबंधित होते हैं, तो आन्तरिक ऋण समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आय के वितरण को प्रभावित करता है।
ii. **धनी और निर्धन वर्ग का प्रभाव:** आन्तरिक ऋण का प्रत्यक्ष वास्तविक भार कम होता है यदि ऋण निर्धन वर्ग से लिया जाता है और इसके भुगतान के लिए सरकार धनी वर्ग पर कर लगाती है।
iii. **मौद्रिक भार का पुनर्वितरण:** आन्तरिक ऋण समाज पर कोई मौद्रिक भार नहीं डालता क्योंकि सरकार जनता से ही ऋण लेती है और जनता पर कर लगाकर प्राप्त आय से ऋणों की अदायगी करती है। इस प्रकार, आन्तरिक ऋण में धन का पुनर्वितरण होता है।
iv. **अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार:** आन्तरिक ऋण अर्थव्यवस्था पर अप्रत्यक्ष मौद्रिक भार उत्पन्न कर सकता है, और यह प्रभाव तब अनुकूल होता है जब ऋण राशि का उपयोग विकासोन्मुख परियोजनाओं में किया जाता है।

13.5.2 बाह्य ऋण का भार (External Debt Burden)

बाह्य ऋण आन्तरिक ऋण से भिन्न होते हैं क्योंकि इनकी अदायगी और ब्याज का भुगतान विदेशी मुद्रा में किया जाता है। बाह्य ऋण देश की सीमाओं के बाहर स्थित व्यक्तियों या संस्थाओं से प्राप्त होते हैं। आन्तरिक ऋण ऐच्छिक या अनिवार्य हो सकता है, जबकि बाह्य ऋण हमेशा ऐच्छिक होते हैं, सिवाय कुछ विशेष परिस्थितियों के जैसे कि सैनिक कार्यवाही द्वारा दूसरे देशों को उधार देने की स्थिति।

आन्तरिक ऋण के विपरीत, बाह्य ऋण के मामले में संपत्ति का हस्तान्तरण देश के बाहर से देश के भीतर होता है। ऋण की अदायगी के समय, मूलधन और ब्याज का भुगतान विदेशी मुद्रा में किया जाता है, जिससे विपरीत दिशा में संपत्ति का स्थानान्तरण होता है। बाह्य ऋण भार से संबंधित मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

आर्थिक कल्याण पर प्रभाव: बाह्य ऋण देश के आर्थिक कल्याण को प्रभावित करता है क्योंकि इसके बदले में देश को विदेशी भुगतान करना पड़ता है। इसके लिए, देश की वस्तुएं और सेवाएं निर्यात की जाती हैं, जिससे घरेलू उपभोग और विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

उत्पादन पर प्रभाव: बाह्य ऋण उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। उत्पादन में कमी के कारण अप्रत्यक्ष मौद्रिक और वास्तविक भार बढ़ जाता है। बाहरी ऋणों के भुगतान के लिए भारी मात्रा में करारोपण किया जाता है, जिससे लोगों की कार्य करने, बचत करने, और विनियोग करने की इच्छा और शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, बाहरी ऋणों की अदायगी के लिए सरकार सार्वजनिक व्यय में कटौती करती है, जिसका उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

13.5.3 लोक ऋण की वृद्धि और इसके प्रभाव (Growth of Public Debt and its Effects)

1950 के दशक से लोक ऋण में वृद्धि को लेकर चिंताएँ बढ़ गई हैं। इसका पहला कारण यह है कि बढ़ते लोक ऋण के परिणामस्वरूप निजी निवेश में कमी देखी जाती है। दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण कारण यह है कि लोक ऋण के माध्यम से किए गए अधिकांश व्यय अनुत्पादक साबित होते हैं। 1987 में, माइकल पोजनर ने इस मुद्दे को स्पष्ट करते हुए बताया कि मंदी के समाधान के लिए केन्स द्वारा सुझाए गए अनुत्पादक पूंजी परियोजनाओं पर असीमित लोक व्यय सहनशील नहीं है। विशेष रूप से, वह भाग जो ब्याज चुकाने के लिए पूरी तरह या अधिकांशतः कर राजस्व पर निर्भर करता है, चिंता का विषय है। प्रोफेसर डान्डेकर ने इस संदर्भ में कहा है कि जब ब्याज का भुगतान उधार लेने की क्षमता से अधिक हो जाता है, तो देश ऋण जाल में फंस जाता है।

प्रोफेसर चेल्याह ने निम्नलिखित परिस्थितियों में लोक ऋण को उचित ठहराया है:

i. **कर दरों में स्थिरता बनाए रखने के लिए:** जब भारी पूंजी निर्माण व्यय की आवश्यकता होती है, तो इसे कर राजस्व के बजाय लोक ऋण के माध्यम से वित्तपोषित करना उचित होता है। इससे कर दर में उतार-चढ़ाव को रोका जा सकता है और परियोजना के जीवनकाल में ऋण का भुगतान करना आदर्श होगा। यदि ऐसा नहीं हो सकता, तो परिसंपत्तियों की पुनः स्थापना के लिए मूल्यह्रास का प्रावधान करना चाहिए।
ii. **आर्थिक स्थिरता के लिए:** औद्योगिक देशों में चक्रीय मंदी या बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए घाटे के वित्तपोषण का उपयोग किया गया है। इसलिए, लोक ऋण के माध्यम से लोक व्यय में वृद्धि करना उचित समझा जा सकता है।
iii. **संकटकालीन व्यय के लिए:** युद्ध या अन्य आपातकालीन परिस्थितियों में लोक ऋण का उपयोग उचित हो सकता है, क्योंकि इसके बिना करों में अत्यधिक वृद्धि करनी पड़ सकती है।
iv. **चालू व्यय के वित्तपोषण के लिए**: जब चालू व्यय मानवीय पूंजी के निर्माण या पूंजी की उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव डालता है, तो लोक ऋण को उचित ठहराया जा सकता है।
v. **लाभकारी पूंजी निर्माण के लिए:** यदि सरकार ऋण लेकर निवेश करती है, तो यह उचित हो सकता है, विशेषकर अल्पविकसित देशों में जहां पूंजी बाजार पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हैं।

प्रोफेसर चेल्याह ने अपनी पुस्तक **'Indian Economy: Problems and Prospects'** में भारत जैसे विकासशील देशों के लिए आदर्श स्थिति की रूपरेखा दी है। इसमें कर और गैर-कर राजस्व से आर्थिक सहायता, अन्य हस्तांतरण व्यय, ऋण का भुगतान और चालू व्यय का वित्तपोषण करना चाहिए, जबकि लोक ऋण का उपयोग अलाभकारी पूंजी निर्माण, सामाजिक पूंजी और उत्पादकता में वृद्धि के लिए किया जाना चाहिए।

रिचर्ड बी. गुडे ने अपनी पुस्तक **'Government Finance in Developing Countries'** में कहा है कि आंतरिक ऋण अक्सर व्यावहारिकता का परिणाम होता है, क्योंकि कर लगाना सुविधाजनक नहीं होता। पारंपरिक

धारणा के अनुसार, निवेश व्यय का वित्तपोषण ऋण से और उपभोग व्यय का नहीं करना चाहिए। हालांकि, **गुडे** का तर्क है कि यह धारणा निजी उद्यम की गलत उपमा पर आधारित है। सरकार को समष्टि आर्थिक आवश्यकता के आधार पर लोक ऋण के औचित्य को तय करना चाहिए, न कि यह मानकर चलना कि हमेशा लोक ऋण बेहतर होता है। सभी पूंजी व्यय आर्थिक विकास को प्रोत्साहित नहीं करते और सभी चालू व्यय अनुत्पादक नहीं होते। इसलिए, लोक ऋण के संबंध में यह कहना उचित होगा कि "सरकार को उपभोग व्यय के लिए ऋण लेने से बचना चाहिए।"

13.6 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. निम्न पर टिप्पणी लिखें।

i. लोक ऋण एवं कार्य करने की योग्यता पर प्रभाव।
ii. लोक ऋण का उपभोग पर प्रभाव।
iii. लोक ऋण भार की अवधारणा।
iv. लोक ऋण भार का भावी पीढ़ी पर स्थानान्तरण।
v. ऋण एवं आर्थिक विकास।

13.7 सारांश (Summary)

लोक ऋण, जिसे सार्वजनिक ऋण भी कहा जाता है, सरकारी वित्तीय प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पहलू है, जो अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव डालता है। यह अध्याय लोक ऋण के प्रभाव और उसके भार की विभिन्न अवधारणाओं की समीक्षा करता है और उनके समाज और अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करता है।

अध्याय में लोक ऋण की वृद्धि के कारण और इसके संभावित नकारात्मक प्रभावों पर भी चर्चा की गई है। विशेष रूप से, यह देखा गया है कि जब लोक ऋण की वृद्धि निजी निवेश को हतोत्साहित करती है और अनुत्पादक परियोजनाओं में प्रयोग होती है, तो यह आर्थिक स्थिरता को खतरे में डाल सकता है।

अंततः, लोक ऋण के प्रभाव और भार के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि लोक ऋण का प्रबंधन सतर्कता और सावधानी से किया जाना चाहिए। इसके प्रभावों को समझना और सही नीतियों का निर्धारण करना आवश्यक है ताकि लोक ऋण का प्रयोग समाज और अर्थव्यवस्था के लिए लाभकारी हो सके।

13.8 शब्दावली (Glossary)

- **सम्पत्ति प्रभाव-** सम्पत्ति प्रभाव वह आर्थिक प्रभाव है जब सम्पत्ति के मूल्य में वृद्धि से व्यक्ति का उपभोग और खर्च बढ़ जाता है, और सम्पत्ति के मूल्य में कमी से उपभोग और खर्च घट जाते हैं।

- **हस्तान्तरण प्रभाव-** हस्तान्तरण प्रभाव वह प्रभाव है जब लोक ऋण के कारण संसाधनों का हस्तान्तरण एक वर्ग से दूसरे वर्ग में होता है, जिससे आय और संसाधनों का वितरण बदलता है।
- **आय प्रभाव-** आय प्रभाव वह प्रभाव है जब लोक ऋण के कारण व्यक्तियों की आय में परिवर्तन होता है, जिससे उनके उपभोग और बचत की प्रवृत्तियों पर असर पड़ता है।
- **व्यय प्रभाव-** व्यय प्रभाव वह प्रभाव है जब लोक ऋण के माध्यम से सरकारी खर्च में वृद्धि होती है, जिससे आर्थिक गतिविधियों और मांग में बदलाव होता है।
- **स्फीति विरोधी-** स्फीति विरोधी वह नीतियाँ या उपाय हैं जो महंगाई की दर को कम करने या नियंत्रण में रखने के लिए अपनाए जाते हैं।
- **नल विस्फोटक क्रिया-** नल विस्फोटक क्रिया वह आर्थिक रणनीति है जिसमें सरकारी खर्चों के माध्यम से मांग को बढ़ाकर मंदी से उबरने का प्रयास किया जाता है।

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Agarwal, R.C. (2007) Public Finance—Theory and Practice, Lakshmi Naraian Agarwal, Agra
- Atkinson, A. B. and J. E. Stiglitz (1980) Lectures on Public Economics, Tata McGraw Hill, New York
- Auerbach, A. J. and M. Feldstern (Eds.) (1985) Handbooks of Public Economics, Vol. 1, NorthHolland, Amsterdam
- Buchanan, J.M. (1970) The Public Finances, Richard D, Irwin, Homewood
- Chaudhury, R.K. (2008) Public Finance and Fiscal Policy, Kalyani Publishers, Ludhiana
- Dalton, H. (2004) Principles of Public Finance, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
- Goode, R. (1986) Government Finance in Developing Countries, Tata McGraw Hill, New Delhi
- Houghton, E. W. (Ed.) (1988) Public Finance, Penguin, Baltimore.
- Jha,R. (1998) Modern Public Economics, Routledge, London
- Mcnutt, P. (2002) The Economics of Public Choice, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.

- Mithani, D.M. (1998) Modern Public Finance, Himalaya Publishing House, Mumbai
- Mueller, D. C. (1979) Public Choice, Cambridge University Press, Cambridge
- Musgrave, R. A. (1959) The Theory of Public Finance, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo
- Sury, M.M. (2010) Finance Commissions and Fiscal Federalism in India, New Century Publications, New Delhi

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- डॉ. एस. के. सिंहः लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी : लोक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र : राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल: लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी

13.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. अर्थव्यवस्था पर लोक ऋण के प्रभावों की विवेचना करें।

2. लोक ऋण के भार से आप क्या समझते है? आन्तरिक ऋण के विभिन्न प्रकार के भार की विवेचना करें।

3. क्या लोक ऋण का भार भावी पीढ़ी पर टाला जाता है? इस सम्बन्ध में विभिन्न विचारों की विवेचना करें।

4. विकासशील देशों में लोक ऋण की भूमिका की विवेचना करें।

5. आन्तरिक लोक ऋण के विभिन्न प्रभावों का परीक्षण करें।

6. लोक ऋण का उत्पादन एवं वितरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट कीजिये।

7. लोक ऋण के आर्थिक प्रभावों पर एक निबन्ध लिखिए।

8. स्फीति विरोधी और नल विस्फोटक क्रिया की विवेचना करें।

इकाई -14 लोक ऋण भुगतान की विधियाँ एवं प्रबन्धन

(Methods of Payment and Management of Public Debt)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

14.2 उद्देश्य (Objectives)

14.3 लोक ऋण भुगतान (Public Debt Payment)

14.3.1 लोक ऋण के भुगतान की विधियाँ (Methods of payment of public debt)

14.3.2 लोक ऋण के स्रोत (Sources of Public Debt)

14.4 लोक ऋण का प्रबन्धन (Public Debt Management)

14.4.1 ऋण प्रबन्धन एवं मौद्रिक नीति (Debt Management and Monetary Policy

14.4.2 ऋण प्रबन्धन की समस्याएं (Debt management problems)

14.5 अभ्यास प्रश्न(Practice Questions)

14.6 सारांश(Summary)

14.7 शब्दावली (Glossary)

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

14.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री(Useful / Helpful text)

14.10 निबंधात्मक प्रश्न(Essay type Questions)

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

लोक ऋण एक महत्वपूर्ण आर्थिक उपकरण है जिसका उपयोग सरकारें विकास परियोजनाओं को वित्त पोषित करने, आपातकालीन आवश्यकताओं को पूरा करने, और आर्थिक स्थिरता बनाए रखने के लिए करती हैं। हालांकि, जैसे-जैसे लोक ऋण का स्तर बढ़ता है, उसके भुगतान और प्रबंधन की चुनौतियाँ भी जटिल होती जाती हैं। लोक ऋण का प्रभावी प्रबंधन न केवल आर्थिक स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण है बल्कि दीर्घकालिक वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए भी आवश्यक है।

यह अध्याय "लोक ऋण भुगतान की विधियाँ एवं प्रबन्धन" पर केंद्रित है, जिसमें विभिन्न भुगतान विधियों का विश्लेषण किया जाएगा, ताकि सरकारें अपने वित्तीय दायित्वों को कुशलतापूर्वक पूरा कर सकें और संभावित वित्तीय संकटों से बच सकें।

इस प्रस्तावना में हम लोक ऋण के भुगतान या शोधन की विधियाँ, ऋण परिशोधन कोष की स्थापना के आधार, लोक ऋण के स्रोत , लोक ऋण का प्रबन्धन एवं मौद्रिक नीति और ऋण प्रबन्धन की समस्याओं की एक संक्षिप्त झलक प्रस्तुत करेंगे।

14.2 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत अध्याय के उपरान्त आप -

- ✓ लोक ऋण के भुगतान या शोधन की विधियों को समझ सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण के स्त्रोतों को जान सकेंगे।
- ✓ विकासशील देशों में बाह्य तथा आन्तरिक ऋण के महत्व को जान सकेंगे।
- ✓ लोक ऋण का प्रबन्धन एवं मौद्रिक नीति को जान सकेंगे।
- ✓ ऋण प्रबन्धन की समस्याओं से अवगत हो सकेंगे।

14.3 लोक ऋण भुगतान (Public Debt Payment)

"लोक ऋण भुगतान" का अर्थ सरकार द्वारा लिए गए ऋणों को उनके परिपक्व होने पर मूलधन और ब्याज सहित चुकाने की प्रक्रिया से है। इसमें विभिन्न विधियों और रणनीतियों का उपयोग किया जाता है ताकि ऋण का बोझ कम हो और आर्थिक संतुलन बना रहे।

14.3.1 लोक ऋण के भुगतान की विधियाँ (Methods of payment of public debt):-

1. **बजट अतिरेक (Budget Surplus):** सरकार अपनी आय के मुकाबले कम व्यय करके बचत को ऋण के भुगतान में उपयोग कर सकती है। बजट अतिरेक उस स्थिति को दर्शाता है जब सरकार की कुल आय उसके कुल व्यय से अधिक होती है। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब सरकार के राजस्व, जैसे कर संग्रह, शुल्क, और अन्य स्रोतों से प्राप्त आय, सरकारी खर्चों से अधिक हो जाती है। बजट अतिरेक का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है, लेकिन प्रमुख रूप से इसे लोक ऋण के भुगतान के लिए सुरक्षित रखा जाता है।

बजट अतिरेक का महत्व:

i. **सरकारी साख में सुधार:** बजट अतिरेक के माध्यम से ऋण का भुगतान करने से सरकार की साख बढ़ती है, जिससे भविष्य में कम ब्याज दरों पर ऋण प्राप्त करना संभव होता है।
ii. **ऋण के ब्याज भार में कमी:** जब सरकार बजट अतिरेक का उपयोग करके ऋण का भुगतान करती है, तो इससे ब्याज भुगतान का भार कम हो जाता है, जिससे सरकार को अधिक वित्तीय स्वतंत्रता मिलती है।
iii. **वित्तीय स्थिरता:** बजट अतिरेक से ऋण का भुगतान करना वित्तीय स्थिरता को बढ़ावा देता है, क्योंकि इससे सरकार की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ होती है और अर्थव्यवस्था में विश्वास बढ़ता है।
iv. **दीर्घकालिक आर्थिक लाभ:** बजट अतिरेक से ऋण का भुगतान करके सरकार अपने वित्तीय संसाधनों को दीर्घकालिक विकास परियोजनाओं में निवेश कर सकती है, जिससे आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है।

2. **निक्षेप निधि या ऋण परिशोधन कोष (Sinking Fund)**: निक्षेप निधि, जिसे ऋण परिशोधन कोष भी कहा जाता है, एक विशेष प्रकार का वित्तीय कोष होता है जो सरकार या किसी अन्य संगठन द्वारा ऋणों के भुगतान के लिए पूर्व निर्धारित योजना के तहत स्थापित किया जाता है। इस कोष का उद्देश्य ऋणों के मुख्यधन (principal) को समय पर चुकाने के लिए आवश्यक धनराशि को नियमित रूप से संचित करना होता है।

कार्यविधि:

i. **कोष का निर्माण:** जब कोई ऋण निर्गमित किया जाता है, तो सरकार एक निक्षेप निधि की स्थापना करती है। यह कोष विशेष रूप से उस ऋण के भुगतान के लिए रखा जाता है। इस कोष में नियमित अंतराल पर धनराशि जमा की जाती है।
ii. **धन की संचित प्रक्रिया:** सरकार अपनी नियमित आय (जैसे, कर राजस्व, व्यय बचत) से एक निर्धारित राशि इस कोष में डालती है। यह राशि विशिष्ट अवधि के दौरान नियमित रूप से जमा की जाती है, जैसे सालाना, त्रैमासिक, या मासिक आधार पर।

iii. **कोष का उपयोग:** जब ऋण की परिपक्वता की तिथि आती है, तो इस कोष में संचित धन का उपयोग करके ऋण का भुगतान किया जाता है। इस तरह, ऋण का भुगतान एकमुश्त करने के बजाय, पहले से संचित धन का उपयोग किया जाता है

3. **नये ऋण का निर्गमन (Refinancing or Roll-Over**- नये ऋण का निर्गमन, जिसे वित्तीय प्रबंधन में 'रिफाइनेंसिंग' या 'रोल-ओवर' कहा जाता है, एक प्रक्रिया है जिसमें किसी पुराने ऋण को चुकाने के लिए नया ऋण लिया जाता है। इसका उद्देश्य पुराने ऋण के भुगतान के लिए आवश्यक धन को जुटाना होता है और साथ ही पुराने ऋण की शर्तों और ब्याज दरों में बदलाव करके वित्तीय बोझ को कम करना होता है।

लाभ:

i. **निम्न ब्याज दर:** यदि नए ऋण की ब्याज दर पुराने ऋण की ब्याज दर से कम होती है, तो रिफाइनेंसिंग से कुल ब्याज भुगतान में कमी आ सकती है।

ii. **लंबी अवधि:** नए ऋण के साथ लंबी अवधि का विकल्प उपलब्ध हो सकता है, जिससे मासिक किस्तें कम होती हैं और वित्तीय बोझ घटता है।

iii. **वित्तीय लचीलापन:** रिफाइनेंसिंग के द्वारा सरकार या संस्था को अपनी वित्तीय स्थिति में सुधार करने और नकदी प्रवाह को बेहतर बनाने का अवसर मिलता है।

iv. **सुविधाजनक शर्तें:** नई ऋण शर्तों के माध्यम से अतिरिक्त लचीलापन प्राप्त किया जा सकता है, जैसे कि भुगतान की तारीखों में बदलाव या ऋण की अन्य शर्तों में संशोधन।

4. **अनिवार्य ऋण (Compulsory Loan**): अनिवार्य ऋण वह ऋण होता है जिसे सरकार या सार्वजनिक संस्थाएँ नागरिकों या व्यवसायों से कानूनी रूप से प्राप्त करती हैं। यह ऋण स्वैच्छिक नहीं होता, बल्कि इसे कानून द्वारा अनिवार्य किया जाता है, जिसका अर्थ है कि नागरिकों को इसे चुकाना पड़ता है चाहे वे इसके लिए सहमत हों या नहीं। अनिवार्य ऋण आमतौर पर सरकारी बजट की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक महत्वपूर्ण वित्तीय साधन के रूप में उपयोग किया जाता है।

प्रकार:

i. **ऋण पत्र (Debt Instruments):** ये विशेष प्रकार के अनिवार्य ऋण होते हैं जो सरकार द्वारा जारी किए जाते हैं और नागरिकों को इनको खरीदने के लिए मजबूर किया जाता है। इसमें बांड्स, ट्रेजरी बिल्स, या अन्य सरकारी ऋण पत्र शामिल हो सकते हैं।

ii. **अनिवार्य बचत योजनाएँ:** सरकार द्वारा संचालित ऐसी योजनाएँ जो नागरिकों को एक निर्धारित प्रतिशत अपनी आय को बचत या निवेश के रूप में रखने के लिए अनिवार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ देशों में पेंशन योजनाओं के तहत अनिवार्य योगदान होता है।

iii. **सामाजिक सुरक्षा योगदान:** यह ऐसे अनिवार्य ऋण होते हैं जो सरकारी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के वित्तपोषण के लिए नागरिकों से लिए जाते हैं, जैसे कि स्वास्थ्य बीमा या पेंशन योजनाएँ।

5. **मुद्रास्फीति (Inflation):** मुद्रा की आपूर्ति बढ़ाकर और मुद्रास्फीति के माध्यम से सरकार ऋण का वास्तविक भार कम कर सकती है, हालांकि यह विधि दीर्घकालिक स्थिरता के लिए हानिकारक हो सकती है।

   मुद्रास्फीति वह आर्थिक स्थिति है जिसमें वस्त्रों और सेवाओं की कीमतें लगातार बढ़ती हैं, जिससे मुद्रा की क्रय शक्ति में कमी होती है। इसे आमतौर पर एक प्रतिशत के रूप में मापा जाता है, जो बताता है कि एक निश्चित अवधि में मूल्य स्तर कितना बढ़ा है।

6. **अचल संपत्ति का विक्रय (Sale of Public Assets)**: सरकार सार्वजनिक संपत्तियों को बेचकर प्राप्त आय से ऋण का भुगतान करती है। अचल संपत्ति का विक्रय एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सरकार अपनी सार्वजनिक संपत्तियों, जैसे कि सरकारी भूमि, भवन, उद्योग, और अन्य संपत्तियों को निजी या अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को बेचती है। यह प्रक्रिया सरकार के लिए एक पूंजी प्राप्ति का साधन होती है, जिसका उपयोग ऋण भुगतान या अन्य वित्तीय उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है।

   लाभ:

   i. **वित्तीय संसाधनों की प्राप्ति:** संपत्तियों की बिक्री से सरकार को तत्काल वित्तीय संसाधन प्राप्त होते हैं, जिन्हें ऋण भुगतान, बजट घाटे की भरपाई, या अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

   ii. **वित्तीय स्थिरता:** लंबे समय में संपत्तियों की बिक्री से सरकार की वित्तीय स्थिति में सुधार हो सकता है, क्योंकि यह सरकारी बजट पर दबाव को कम करता है और दीर्घकालिक वित्तीय स्थिरता को प्रोत्साहित करता है।

   iii. **प्रबंधन और दक्षता में सुधार:** निजी कंपनियों द्वारा संचालित संपत्तियाँ अक्सर अधिक कुशल और व्यावसायिक होती हैं, जिससे सेवा की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है और वित्तीय प्रदर्शन बेहतर हो सकता है।

   iv. **विकास और निवेश:** बेची गई भूमि या संपत्तियाँ विकास और निवेश के लिए उपयोग की जा सकती हैं, जो आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित कर सकती हैं।

7. **नियमित वार्षिक भुगतान (Regular Annual Payment):** ऋण का भुगतान छोटे-छोटे किस्तों में नियमित रूप से किया जाता है, जिससे ऋण धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। नियमित वार्षिक भुगतान से तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है जिसमें ऋण के भुगतान के लिए सरकार हर वर्ष निश्चित राशि का भुगतान करती है। इस भुगतान को आमतौर पर एक निर्धारित समयावधि के लिए नियमित रूप से किया जाता है और यह व्यवस्था ऋण की अवधि के दौरान लगातार चलती रहती है।

   लाभ:

i. **वित्तीय योजना की सरलता:** नियमित वार्षिक भुगतान योजना सरकार को अपने बजट की योजना बनाने में सुविधा प्रदान करती है, क्योंकि वार्षिक भुगतान की राशि पहले से निर्धारित होती है। यह वित्तीय प्रबंधन को अधिक सुसंगठित और पूर्वानुमानित बनाता है।

ii. **ऋण की पूर्णता की सुनिश्चितता:** नियमित वार्षिक भुगतान से ऋण की पूरी अवधि के दौरान भुगतान की सुनिश्चितता बनी रहती है, जिससे ऋण समय पर चुकता होता है और इसके परिणामस्वरूप वित्तीय दायित्वों में कमी आती है।

iii. **ब्याज का कम प्रभाव:** जब सरकार नियमित रूप से भुगतान करती है, तो ब्याज की राशि भी कम हो जाती है, क्योंकि भुगतान की नियमितता से ऋण की अवधि छोटी हो जाती है और ब्याज की राशि कम होती है।

iv. **सार्वजनिक साख का संरक्षण:** नियमित भुगतान से सरकार की साख में सुधार होता है, क्योंकि यह दिखाता है कि सरकार अपने वित्तीय दायित्वों को पूरा करने में सक्षम है। इससे विदेशी और घरेलू निवेशकों के विश्वास में वृद्धि होती है।

14.3.2 लोक ऋण के स्रोत (Sources of Public Debt)

लोक ऋण को स्रोतों के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-(अ) आंतरिक ऋण तथा (ब) बाह्य ऋण।

(अ) आंतरिक ऋण के स्रोत-

i. **व्यक्तिगत निवेशक:** राज्य बांडों और प्रतिभूतियों के माध्यम से व्यक्तियों से ऋण प्राप्त किया जाता है, जिससे निजी बचत सार्वजनिक निवेश में परिवर्तित हो जाती है। व्यक्तियों को ब्याज मिलता है और अर्थव्यवस्था की उत्पादकता बढ़ती है। विकासशील देशों में, जहां बचत अक्सर निष्क्रिय रहती है, सरकार छोटी बचत योजनाओं के माध्यम से इन पूंजी को एकत्रित करती है और निवेश करती है।

ii. **गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं:** बीमा कंपनियां, यूनिट ट्रस्ट, डाकघर जैसी गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाएं भी राज्य को ऋण प्रदान करती हैं। इन संस्थाओं के लिए सरकारी बांड और प्रतिभूतियां अधिक विश्वसनीय होती हैं, भले ही ब्याज दरें अपेक्षाकृत कम होती हैं। सरकारी प्रतिभूतियों की अधिक खरीद इन संस्थाओं की विश्वसनीयता को बढ़ाती है।

iii. **व्यापारिक बैंक:** व्यापारिक बैंकों के माध्यम से भी सरकार को ऋण मिल सकता है। बैंकों के पास नकद कोष होता है, जिसे वे सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में निवेश करते हैं। बैंकों का ऋण प्रदान करने का कार्य साख निर्माण पर आधारित होता है और इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति पर असर पड़ सकता है।

iv. **केन्द्रीय बैंक:** केन्द्रीय बैंक से ऋण प्राप्त करना सरकार के लिए एक प्रमुख स्रोत है। केन्द्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूतियों के आधार पर ऋण प्रदान करता है और इसके माध्यम से अर्थव्यवस्था पर स्फीति का प्रभाव पड़ सकता है। केन्द्रीय बैंक सरकार के खाते में ऋण की राशि जमा करता है।

ऋण के वर्गीकरण:

i. **बाजार ऋण:** ये वे ऋण होते हैं जो जनता से सरकारी प्रतिभूतियों और बिलों के माध्यम से प्राप्त किए जाते हैं। इन्हें मुद्रा और पूंजी बाजार में बेचा जाता है और इनकी बाजार कीमत होती है।

ii. **गैर-बाजार ऋण:** ये ऋण गैर-विनिमय साधनों से प्राप्त होते हैं जिन्हें बाजार में बेचा या खरीदा नहीं जा सकता, जैसे राष्ट्रीय बचत प्रमाण पत्र और डाकघर के बचत खाते में जमा राशि।

iii. **ऋण की अवधि के आधार पर वर्गीकरण:**

iv. **तैरता अथवा अस्थायी ऋण (Floating or Temporary Debt):** यह ऋण 12 महीने के भीतर चुकता किया जाता है। अनधिक ऋण को आमतौर पर तैरता ऋण माना जाता है।

v. **स्थायी अथवा निधिक ऋण (Permanent or Funded Debt):** इस ऋण का भुगतान ऋण जारी होने की तिथि से 12 महीने बाद होता है। यह दो प्रकार का हो सकता है:

vi. **समाप्य निधिक ऋण (Terminable Funded Debt):** निश्चित अवधि के लिए।

vii. **असमाप्य निधिक ऋण (Interminable Funded Debt):** अनिश्चित अवधि के लिए।

ऋण प्राप्ति की तकनीक: विभिन्न देशों में ऋण प्राप्त करने की तकनीकें विभिन्न आर्थिक दशाओं और वित्तीय संस्थाओं के आधार पर भिन्न होती हैं। सामान्यतः वित्तीय संस्थाओं और आम जनता से ऋण प्राप्त किया जाता है, लेकिन विशेष परिस्थितियों में सरकारें अनिवार्य ऋण या बचत योजनाएं भी लागू कर सकती हैं।

(ब) बाह्य या अन्तर्राष्ट्रीय ऋण के स्रोत

आधुनिक आर्थिक विकास की तेज गति और आंतरिक संसाधनों की सीमितता के कारण विकासशील देशों के लिए बाह्य ऋण एक आवश्यक उपाय बन गया है। इन देशों को वांछित विकास की उपलब्धि के लिए बाहरी ऋण के बिना प्रगति संभव नहीं होती। इसलिए, विकासशील देश अपने आंतरिक संसाधनों के साथ-साथ भारी मात्रा में अंतर्राष्ट्रीय स्रोतों से भी ऋण प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।

विकासशील देशों की सरकारें अपने विकास योजनाओं के लिए विकसित देशों से ऋण लेती हैं और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं भी इन देशों को ऋण प्रदान करती हैं। इनमें प्रमुख संस्थाएं हैं: अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF), विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय वित्त निगम (IFC), और अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ (IDA)। इसके अतिरिक्त, विशेष क्षेत्रों के विकास के लिए एशियन डेवलपमेंट बैंक (ADB) जैसे संस्थानों से भी ऋण प्राप्त किया जा सकता है।

14.4 लोक ऋण का प्रबन्धन (Public Debt Management)

वर्तमान में, विकासशील देश तेजी से आर्थिक विकास की दिशा में अग्रसर होने के लिए लोक ऋण के परिमाण और संरचना में निरंतर वृद्धि कर रहे हैं। इन देशों को आर्थिक विकास के साथ-साथ ऋण प्रबंधन की चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है। प्रारंभिक चरणों में, इन देशों ने आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार के

ऋण भारी मात्रा में प्राप्त किए, लेकिन जब ऋण चुकाने का समय आया, तो उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि ऋण प्रबंधन उचित ढंग से नहीं किया गया था।

आर्थिक विकास के लिए प्राप्त ऋणों का उचित प्रबंधन हर देश के लिए आवश्यक होता है। लोक ऋण प्रबंधन से तात्पर्य है कि सरकार द्वारा ऋण प्राप्त करने और चुकाने की नीतियां ऐसी हों कि देश की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और आर्थिक विकास में स्थिरता बनी रहे।

तकनीकी दृष्टिकोण से, लोक ऋण प्रबंधन उन क्रियाओं को संदर्भित करता है जिनके माध्यम से लोक ऋण को बनाए रखा जाता है। ऋण प्रबंधन की समस्याएँ तब भी उत्पन्न हो सकती हैं जब लोक ऋण में कोई शुद्ध वृद्धि नहीं होती। चूंकि ऋण अस्थायी होते हैं और उन्हें चुकाना होता है, इसलिए पुराने ऋण के भुगतान और नए ऋण की प्राप्ति का सवाल उठता है।

वापसी, प्रवर्तन और निवृत्ति के कार्य इस प्रकार किए जाने चाहिए कि अर्थव्यवस्था को अधिकतम लाभ मिले और न्यूनतम हानि हो। यदि ऋण प्रबंधन ठीक से नहीं किया जाता, तो इसके आर्थिक प्रभाव गंभीर हो सकते हैं।

सारांश में, ऋण की प्राप्ति और वापसी को इस तरह से प्रबंधित किया जाना चाहिए कि अर्थव्यवस्था को अधिकतम लाभ मिले और न्यूनतम हानि हो। सार्वजनिक ऋणों की वापसी की प्रक्रिया को सावधानीपूर्वक प्रबंधित करना चाहिए ताकि मुद्रास्फीति और कर का भार न्यूनतम हो और अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े। इसके लिए ऋण की संरचना, परिपक्व ऋणों की भुगतान अवधि, और ब्याज दर आदि पर ध्यान देना आवश्यक है। इस प्रकार, लोक ऋण प्रबंधन विशेष रूप से सार्वजनिक ऋणों की संरचना और विशेषताओं के निर्धारण से संबंधित है।

14.4.1 ऋण प्रबन्धन एवं मौद्रिक नीति (Debt Management and Monetary Policy)

ऋण प्रबंधन और मौद्रिक नीति के बीच समन्वय स्थापित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों जैसे रैचफोर्ड, आल्विन हान्सेन, और मीड ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि बड़े पैमाने पर लोक ऋण के कारण मौद्रिक नीति का प्रभाव कम हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए केंद्रीय बैंक ब्याज दरों को बढ़ाता है, तो इससे बांडों की कीमतें घट सकती हैं। बांड धारक बांडों को बेचकर मुद्रा प्राप्त कर सकते हैं, जिससे दीर्घकालिक बांडों के बाजार पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इस स्थिति से बचने के लिए केंद्रीय बैंक को स्फीतिविरोधी नीति को छोड़ना पड़ सकता है ताकि बांडों की कीमतें स्थिर रहें।

इसके विपरीत, रूसा का तर्क है कि जब लोक ऋण विभिन्न प्रकार के लोगों से लिया जाता है, तो मौद्रिक नीति और लोक ऋण के बीच कोई विरोध नहीं होता। बैंक दरों के बढ़ने पर बांड बेचने का प्रोत्साहन कम होता है, क्योंकि बैंक पूंजी हानि को पसंद नहीं करते और इसके परिणामस्वरूप उपभोग पर अधिक खर्च नहीं होता। इस प्रकार, मौद्रिक नीति का प्रभाव बढ़ सकता है।

मौद्रिक नीति और लोक ऋण प्रबंधन के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए निम्नलिखित तीन नीतियाँ अपनाई जा सकती हैं:

सकारात्मक या धनात्मक प्रबंधन - रेडक्लिफ़ कमेटी और अमेरिकी आयोग ने सुझाव दिया कि जब कंपनियाँ बड़ी मात्रा में बांड खरीदती हैं, तो केंद्रीय बैंक दर के माध्यम से उनके व्यवहार को प्रभावित कर सकता है। इस दृष्टिकोण के तहत, ट्रेजरी स्वीकार करता है कि लोक ऋण प्रबंधन अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकता है और केंद्रीय बैंक की मौद्रिक नीति का समर्थन करता है। इसमें स्फीतिकाल के दौरान अल्पकालिक प्रतिभूतियों को दीर्घकालिक प्रतिभूतियों में बदलने और मंदीकाल में इसके विपरीत परिवर्तन करने की प्रक्रिया शामिल है। हालांकि, यह नीति स्फीतिकाल में ब्याज दरों में वृद्धि का कारण बनती है, जिससे लोक ऋण का भार अधिक हो सकता है।

तटस्थ प्रबंधन- इस नीति के तहत, ट्रेजरी मौद्रिक नीति को ध्यान में रखते हुए लोक ऋण का प्रबंधन नहीं करती है। आर्थिक स्थिरता की जिम्मेदारी केंद्रीय बैंक की होती है, जबकि लोक ऋण प्रबंधन ट्रेजरी के अधीन रहता है। ट्रेजरी अपनी नीतियों को तटस्थ दृष्टिकोण से निर्धारित करती है। वास्तविक तटस्थ नीति का अनुसरण करना कठिन होता है, लेकिन इसका उद्देश्य यह होता है कि लोक ऋण प्रबंधन के कारण मुद्रा और साख बाजार पर स्थिर प्रभाव पड़े। इसके लिए पुराने ऋणों की जगह नए ऋण लेने की व्यवस्था की जाती है और ब्याज दरों की संरचना में न्यूनतम परिवर्तन किया जाता है।

नकारात्मक या ऋणात्मक प्रबंधन- इस नीति के तहत, ट्रेजरी का मुख्य उद्देश्य ब्याज दरों को न्यूनतम रखना होता है ताकि राष्ट्रीय ऋण की लागत कम से कम हो। इसके लिए, जब ब्याज दरें बढ़ती हैं, तो ट्रेजरी दीर्घकालिक ऋण नहीं लेती है, और मंदीकाल में इसके विपरीत नीति अपनाई जाती है। इस नीति की समस्याएँ हैं:

i. केंद्रीय बैंक और ट्रेजरी के दृष्टिकोण विपरीत हो सकते हैं।
ii. न्यूनतम ब्याज लागत पर ध्यान केंद्रित करना ऋण प्रबंधन के लिए सर्वोत्तम तरीका नहीं है, क्योंकि इससे सम्पूर्ण ऋण का मुद्रीकरण हो सकता है, जिससे मुद्रा स्थापित हो सकती है।

14.4.2 ऋण प्रबन्धन की समस्याएं (Debt management problems)

ऋण प्रबन्धन की मुख्य समस्यायें निम्न हैं:

1. दीर्घकालीन बनाम अल्पकालीन ऋण (Long Term vs. Short Term Loan) - दीर्घकालीन ऋण आमतौर पर एक स्थिर ब्याज दर के साथ आते हैं और इन्हें सुविधानुसार चुकाया जाता है। जब ये ऋण परिपक्व हो जाते हैं, तो आमतौर पर इन्हें नए ऋणों से बदल दिया जाता है। इसके विपरीत, अल्पकालीन ऋण को बार-बार रिफंडिंग की आवश्यकता होती है। दीर्घकालीन ऋण की स्फीति पर प्रभाव कम होता है और इनकी बार-बार वापसी की आवश्यकता भी कम होती है।

हालांकि, यह तय नहीं किया जा सकता कि ऋण की वापसी वार्षिक आधार पर की जाए। ऋण की मियाद संरचना (term structure) का चयन करते समय ब्याज दरों को न्यूनतम करने पर ध्यान देना चाहिए। बॉण्ड की ब्याज दर मियाद के आधार पर बदलती है, इसलिए ऐसे बॉण्ड का चयन करना चाहिए जिनकी खरीदारी के लिए निवेशक तत्पर हों।

कभी-कभी अल्पकालीन ब्याज दरें दीर्घकालीन ब्याज दरों से अधिक हो सकती हैं, इसलिए यह आवश्यक नहीं कि दीर्घकालीन ऋण हमेशा सही विकल्प हो। यदि भविष्य में ब्याज दरों के घटने की संभावना हो, तो अल्पकालीन ऋण अधिक उपयुक्त हो सकते हैं। मसग्रेव के अनुसार, ऋण प्रबंधन एक नाजुक कला है जो बाजार की भविष्यवाणियों का समझदारी से मूल्यांकन करने की मांग करती है।

2. तरलता (Liquidity) - तरलता का प्रबंधन सरकार की मुद्रापूर्ति नियंत्रण क्षमता पर निर्भर करता है, जिसके माध्यम से वह ब्याज दरों को नियंत्रित कर सकती है। सरकार लोक ऋण को मुद्रा में बदलने का विकल्प चुन सकती है, जिसे ऋण मुद्रीकरण (debt monetization) कहा जाता है। इसमें सरकार ऋण नोट छाप सकती है या केंद्रीय बैंक से ऋण प्राप्त कर सकती है। यह ऋण का सबसे सस्ता तरीका माना जाता है क्योंकि इसमें ब्याज भुगतान की आवश्यकता नहीं होती।

हालांकि, ऋण मुद्रीकरण के खिलाफ कई तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं:

i. **साधारणता और दुरुपयोग की संभावना:** ऋण मुद्रीकरण आय प्राप्त करने का एक सीधा तरीका है, जिससे इसका दुरुपयोग संभव हो सकता है। इसके कारण ऋण की मात्रा अनियंत्रित रूप से बढ़ सकती है।
ii. **स्फीतिकाल में उपयुक्तता की कमी:** मुद्रीकरण स्फीति के दौरान उपयुक्त नहीं माना जा सकता। जब ऋण की अवधि छोटी होती है, तो इसका प्रसार प्रभाव अधिक होता है। लंबी अवधि वाले ऋणों के मुकाबले, छोटे अवधि वाले ऋण मुद्रीकरण के माध्यम से अधिक प्रभावी स्फीति उत्पन्न कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि ऋण की अवधि जितनी छोटी होती है, ब्याज दर उतनी ही अधिक होती है, जिससे मुद्रीकरण का प्रभाव अधिक होता है।

3. स्थिर क्रय शक्तिवाले बाण्ड (Constant Purchasing Power Bond) - 1950 के कोरिया युद्ध के बाद की स्फीति की स्थिति के समाधान के लिए यह सुझाव दिया गया कि ऐसे बांड जारी किए जाएं जिनके मूल्य स्थिर बने रहें। इन बांडों का भुगतान मूल्य (Redemption value) जीवनस्तर सूचकांक के साथ बदलता रहेगा। इस प्रकार के बांड स्फीति के कारण क्रयशक्ति में कमी से निवेशकों को बचाते हैं, निजी बचत को प्रोत्साहित करते हैं और स्फीति को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। इज़रायल, फ्रांस, ऑस्ट्रिया और फिनलैंड ने इसी सिद्धांत पर आधारित बांड जारी किए हैं।

ब्याज दरों के विवादों के बीच, एक उपयुक्त नीति यह हो सकती है कि मुद्रा प्रसार के समय अल्पकालिक ऋणों पर कम से कम निर्भर रहना चाहिए। मंदी के दौरान, ऋण नीति को इस तरह से तैयार किया जाना चाहिए कि पुनरुद्धार के लिए अपनाई गई आसान साख नीति दीर्घकालिक ब्याज नीति के साथ संघर्ष न करे।

4. ऋण प्रबन्धन की नयी तकनीक (New Technology of Debt (Management)- वर्तमान में स्फीति की स्थिति को नियंत्रित करने के लिए प्रयास किया जाता है कि ऋण की अवधि को बढ़ाया जाए। इसके लिए "अग्रिम वापसी" (advance refunding) की एक नई तकनीक का उपयोग किया जाता है।इसमें पुरानी प्रतिभूतियों के परिपक्व होने से पहले ही उन्हें बदलकर नई प्रतिभूतियां खरीदी जाती हैं। नई प्रतिभूतियां ऐसी होती हैं जो दोनों पक्षों के लिए लाभकारी होती हैं। इसका मुख्य उद्देश्य अल्पकालिक और मध्यकालिक प्रतिभूतियों को दीर्घकालिक में परिवर्तित करना होता है।

ऋण प्रबंधन में एक और नई तकनीक के तहत बांडों पर अधिकतम ब्याज दर निर्धारित की जाती है। हालांकि, यह तकनीक स्थायित्व नीति (stabilization policy) को लागू करने में सीमित कर सकती है, क्योंकि यह नीति की प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकती है।

14.5 अभ्यास प्रश्न (Practice Questions)

1. टिप्पणी लिखें

1. बजट अतिरेक क्या हैं?

2. बजट अतिरेक का महत्व समझाइये।

3. निक्षेप निधि या ऋण परिशोधन कोष क्या हैं?

4. लोक ऋण के स्रोत पर टिप्पणी लिखे।

5. तटस्थ प्रबंधन क्या हैं?

6. आन्तरिक ऋण भार से क्या समझते हैं?

7. सार्वजनिक ऋणों के लाभ बताइए।

8. लोक ऋण का उत्पादन पर प्रभाव।

14.6 सारांश (Summary)

इस इकाई में, लोक ऋण के विभिन्न पहलुओं का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जो पाठकों को इसके गहन अध्ययन में सहायता प्रदान करेगा। प्रस्तावना और उद्देश्यों के साथ, लोक ऋण की अवधारणा, उसकी संरचना, और इसके आर्थिक प्रभावों को समग्रता से समझाया गया है।

इकाई के पहले मुख्य शीर्षक 'लोक ऋण के भुगतान की विधियाँ' में, विभिन्न विधियों का विस्तृत विवरण दिया गया है। इसमें बजट अधिशेष का उपयोग, ऋण परिशोधन कोष की स्थापना, पूंजी कर के माध्यम से संसाधनों का संग्रह, और अवधिक वार्षिकी के जरिए ऋण चुकाने की प्रक्रियाओं पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया है। ये विधियाँ न केवल ऋण भुगतान के प्रबंधन में सहायक होती हैं, बल्कि वित्तीय स्थिरता और राजकोषीय संतुलन बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

इसके अतिरिक्त, लोक ऋण के स्रोतों का भी विस्तृत विश्लेषण किया गया है, जिसमें आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के ऋण शामिल हैं। विकासशील देशों के संदर्भ में, बाह्य और आंतरिक ऋण के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। बाह्य ऋण, जो अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों और विदेशी सरकारों से प्राप्त होता है, विकासशील देशों के लिए आर्थिक विकास को गति देने, अत्याधुनिक तकनीक प्राप्त करने, और विदेशी मुद्रा भंडार को मजबूत करने के लिए आवश्यक होता है। दूसरी ओर, आंतरिक ऋण घरेलू स्रोतों से जुटाया जाता है और इसका उपयोग राष्ट्रीय परियोजनाओं के वित्तपोषण में किया जाता है।

लोक ऋण प्रबंधन और मौद्रिक नीति के संबंध में, इस इकाई में उन प्रमुख मुद्दों और चुनौतियों पर चर्चा की गई है जो ऋण प्रबंधन के दौरान उत्पन्न हो सकती हैं। ऋण के विभिन्न प्रकार, जैसे बाह्य या अंतर्राष्ट्रीय ऋण, के प्रबंधन की जटिलताओं को समझाते हुए, यह इकाई मौद्रिक नीति के साथ इसके तालमेल की आवश्यकता पर भी जोर देती है।

विशेष रूप से, विकासशील देशों में विदेशी ऋण के महत्व पर गहराई से विचार किया गया है। इस संदर्भ में, युद्ध या अन्य संकटों की स्थिति में आर्थिक विकास को बनाए रखने, मंदी जैसी चुनौतियों का सामना करने, पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक संसाधन जुटाने, और विदेशी मुद्रा की कमी को पूरा करने के लिए बाहरी ऋण की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गई है। इसके अलावा, इस इकाई में यह भी बताया गया है कि कैसे बाह्य ऋण के माध्यम से नई तकनीकों और विशेषज्ञता का आयात किया जा सकता है, जो विकासशील देशों की औद्योगिक और आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है।

अंततः, यह इकाई लोक ऋण के प्रबंधन की समस्याओं, उसके समाधान और उससे जुड़ी वित्तीय नीतियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है, जिससे पाठक इस विषय की गहराई को समझ सकें और व्यावहारिक दृष्टिकोण से इसका मूल्यांकन कर सकें।

14.7 शब्दावली (Glossary)

- शोधन- शोधन का अर्थ है ऋण या देय राशि का पूर्ण या आंशिक रूप से भुगतान करना।
- पूँजीकर- पूँजीकर" का अर्थ है एक ऐसा कर जो किसी व्यक्ति या संस्था की संपत्ति, जैसे भूमि, भवन, या निवेश पर लगाया जाता है
- बजट अतिरेक- बजट अतिरेक का अर्थ है जब सरकारी राजस्व, व्यय से अधिक हो, जिससे अधिशेष धनराशि उत्पन्न होती है।
- ऋण परिशोधन - ऋण परिशोधन का अर्थ है ऋण की अदायगी या पुनर्भुगतान की प्रक्रिया।
- पुनः शोधन- पुनः शोधन का अर्थ है किसी मौजूदा ऋण का पुनर्वित्त या पुनर्भुगतान, आमतौर पर बेहतर शर्तों पर।
- तटस्थ प्रबंधन - तटस्थ प्रबंधन का अर्थ है बिना किसी पक्षपात या व्यक्तिगत लाभ के निष्पक्ष और संतुलित तरीके से प्रबंधन करना।

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References/Bibliography)

- Agarwal, R.C. (2007) Public Finance—Theory and Practice, Lakshmi Naraian Agarwal, Agra
- Atkinson, A. B. and J. E. Stiglitz (1980) Lectures on Public Economics, Tata McGraw Hill, New York
- Auerbach, A. J. and M. Feldstern (Eds.) (1985) Handbooks of Public Economics, Vol. 1, NorthHolland, Amsterdam
- Buchanan, J.M. (1970) The Public Finances, Richard D, Irwin, Homewood
- Chaudhury, R.K. (2008) Public Finance and Fiscal Policy, Kalyani Publishers, Ludhiana
- Dalton, H. (2004) Principles of Public Finance, Allied Publishers Private Limited, New Delhi
- Goode, R. (1986) Government Finance in Developing Countries, Tata McGraw Hill, New Delhi
- Houghton, E. W. (Ed.) (1988) Public Finance, Penguin, Baltimore.
- Jha,R. (1998) Modern Public Economics, Routledge, London

- Mcnutt, P. (2002) The Economics of Public Choice, Edward Elgar Publishing Limited, U.K.
- Mithani, D.M. (1998) Modern Public Finance, Himalaya Publishing House, Mumbai
- Mueller, D. C. (1979) Public Choice, Cambridge University Press, Cambridge
- Musgrave, R. A. (1959) The Theory of Public Finance, McGraw Hill, Kogakhusa, Tokyo
- Sury, M.M. (2010) Finance Commissions and Fiscal Federalism in India, New Century Publications, New Delhi

14.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री (Useful/Helpful Text)

- डॉ. एस. के. सिंहः लोक वित्त के सिद्धान्त तथा भारतीय लोक वित्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डॉ. जे.सी. पन्त एवं प्रो. चन्द्रशेखर जोशी : लोक अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायन अग्रवाल, आगरा
- डॉ. एस.के. सिंह एवं डॉ. जे.पी. मिश्र : राजस्व एवं रोजगार के सिद्धान्त, साहित्य भवन आगरा
- प्रो. एस.एन. लाल एवं एस.के. लाल: लोक वित्त, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद
- डॉ. जे.पी. मिश्र : लोक वित्त एवं रोजगार सिद्धान्त विजडम बुक्स, वाराणसी

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक ऋण के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए तथा लोक ऋण के भुगतान के तरीके बताइए।

2. लोक ऋणों के भुगतान की विभिन्न विधियाँ कौन-कौन सी हैं? स्पष्ट कीजिए।

3. लोक ऋण क्या है? लोक ऋण के शोधन की विभिन्न रीतियों को समझाइए।

4. लोक ऋण के स्वरूप कौन-कौन से हैं? इसके भुगतान की विभिन्न विधियों का विवेचन कीजिए।

5. लोक ऋण प्रबंध पर एक लेख लिखिए।

6 . लोक ऋण के प्रबंध से आप क्या समझते हैं? लोक ऋण के प्रबंध के कौन-कौन से सिद्धांत हैं? विकासशील देशों में लोक ऋण प्रबंध की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

7 . एक विकासशील अर्थव्यवस्था में लोक ऋण के महत्व की विवेचना कीजिए। लोक ऋण में लघु बचत के महत्व को बतलाइए।